आसीन्मैथिल ब्राह्मणान्वय कुले भू मण्डले विश्रुतो ॥
विद्वद्वृन्द शिरोमणिः कुलपतिः विद्या विनोदास्पदः ॥
कृत्वा धर्म निबन्धनं बहुतरं कीर्त्या जगद्द्योतयन् ॥
श्री वाचस्पति मिश्र पण्डित वरः पायात्कुलं मे सदा ॥५॥
यस्यात्मजः श्रीरघुनाथ मिश्रो महा महोपाधि कृतः प्रतिष्ठः
तर्कादि विद्यासु विचक्षणोऽभूत् तस्मान्महादेव सुतो बभूव ॥६॥
तस्यात्मजो वेदमधीत्य शिष्या नध्यापयन् शिक्षित वृन्द धन्यः ।
महा महोपाधिवरोऽत्र लोके नाम्ना हरे राम इति प्रसिद्धः ॥
तस्यैव सूनुः खलु शब्दशास्त्र साहित्य संगीत कला प्रवीणः ॥
मनोहरा लोक मनोहरोऽभूत् तस्यात्मजो धर्मपति र्बभूव ॥८॥
यो वेद वेदान्त विचार दक्षो महा महोपाधि युतश्च तस्मात् ॥
श्री रोहिणी मिश्र सुतो बभूव यस्यात्मजौ नैयत्तिरिणि मिश्रौ
श्री विश्वमिश्रा दुखिनाथ मिश्रो बभूव लोकेषु विशुद्ध धीरः ॥
तस्यात्मजो भूवनसुवंश मिश्रः कुटुम्ब वर्गेष्वति माननीयः ॥१०॥
तस्माज्जातः परममुदितः शब्द शास्त्रेषु तीर्थः ।
लब्ध्वा लोके परमचतुरः सन्तलालोऽति धीरः ॥
सन्दाराद्रेः परम रुचिरं वैभवं चाथ विष्णोः
माहात्म्यं सुविरच्य विष्णुचरणाम्भोजाय प्रीत्याऽर्पयत् ॥११॥

मन्दाराधीश—श्रीमान् बाबू शालग्राम प्रसाद सिंह

म॰ सूदन

॥ श्री ॥

मन्दार मधुसूदन माहात्म्यम्

सटीकम्

छपवानेमें प्रधानोत्साही तथा द्रव्यसाहाय्य-कर्त्ता

मन्दाराधीश

मधुसूदन-नगराधिपति

स्वर्गीय बाबू शालग्राम प्रसाद सिंह

विरचितमिदं बीरजग्रामवासिना

पण्डित श्रीसन्तलाल मिश्र

व्याकरणतीर्थेन

सं० १९९३

प्रथम संस्करण १०००

मूल्यम् सपादरूप्यकम् १।)

अस्य सर्वाधिकारः प्रकाशकेन स्वायत्तीकृतः

THE MITHILA PRESS · BHAGALPUR
MTP

प्राक्कथन

यः संसार महीरुहस्य सकलं वीजं परं शाश्वतं ।
श्रीवाणीकर सेवितांघ्रि युगलं दिव्याम्बरं सुन्दरम् ॥
भक्तानामभयप्रदं त्रिजगतां वन्द्यैः सदा वन्दितम् ।
सेव्यं श्री मधुसूदनं प्रभुवरं मन्दार नाथं भजे ॥१॥
मातरं जानकीं देवीं दुःखशोक-प्रणाशिनीम् ।
वासनीं हृदयाम्भोजे प्रणमामि च तां पुनः ॥२॥
शुद्धान्तः करणं देवं पितरं कुल भूषणम् ।
सुवंशं वंश पातारं दातारं शं नमाम्यहम् ॥३॥
पाशाङ्कुशाब्जाक्षमालाम् पीनोन्नत पयोधराम् ॥
प्रसन्नवदनां शान्तां वाग्देवीं प्रणमाम्यहम् ॥४॥
संसार घोर तिमरावृत मोहजाले-
बंधोऽस्म्यहं गुरुवरस्य पदारविन्दम् ॥
ध्यात्वा पुनस्तदुदितं वचनामृतन्तत् ।
पीत्वाश्नोमि रचनां मधुसूदनस्य ॥५॥

मैं भागलपुर मण्डलान्तर्गत पञ्चवारा नगर के जौर्ज संस्कृत
स्कूल में मिति २८ –४ –१९१२ ईस्वी से मिति ३१—१०—

१९२३ ईस्वी तक प्रधानाध्यापक के पद पर सुयश के साथ एकोपक्रम से कार्य सम्पादन कर मिति ६–११–१९२३ ईस्वी में मन्दाराधीश श्रीमान् बाबू शालग्राम प्रसाद सिंह जी की आज्ञा से बालिशा नगर (बौंसी) आया और श्रीमान् बाबू साहेब जी के प्रचुर द्रव्य साहाय्य से तथा परमोत्साह से स्थानीय पण्डागण के बालवृन्दोपकारार्थ मिति ६–११ १९२३ ईस्वी कार्तिक कृष्ण सप्तमी बृहस्पति में "श्रीमधुसूदन संस्कृत टोल" संस्थापित किया गया जिसमें सर्वाध्यक्ष श्री मधुसूदन देव जी हुए और विद्यालयाध्यक्ष श्रीमान् बाबू शालग्राम प्रसाद सिंह जी हुये और प्रधानाध्यापक के पद पर मैं नियुक्त किया गया।

कतिपय दिन व्यतीत होने पर श्रीमान् बाबू साहबजी की आज्ञा हुई कि मन्दार-मधुसूदन-माहात्म्य प्रणयन होना परमावश्यक है। इसका पूरा भार मेरे ऊपर निर्भर रहा। परम विष्णु भक्त विद्वद्विशारद परमोदार श्रीमान् बाबू शालग्रामप्रसाद सिंह जी की आज्ञा पाकर मैं माहात्म्य की ओर सयत्न हुआ। तब कतिपय स्थानीय पण्डागण की सम्मति हुई जो पहले मन्दार प्रदर्शन कर तब माहात्म्य प्रणयन होना चाहिये। तब मैं पण्डाओंके साथ मन्दार गया। वहाँ पर जानेसे मन्दार की अलौकिक शोभा देखने में आयी। शोभासे मुझे ऐसा बोध हुआ कि देवता लोग इस परम पवित्र मन्दारक्षेत्र में श्रीमधुसूदन भगवान के प्रसन्नार्थ अपना अपना वेष बदल कर लता-वृक्षादि रूपमें

परिणत हो भगवान की सेवा कर रहे हैं। कहीं पर पक्षिगण मनोहर शब्दसे भगवानकी स्तुति कर रहे हैं। कहीं पर देवता गण भ्रमरके वेष में पुष्प के गुच्छों पर मधुर शब्द से भगवान का गुण गान कर रहे हैं। कहीं पर प्रभात कालिक मलयानिल से प्रेरित वाललतायेँ भगवान के निमित्त दिशा दिशा में पुष्प वृष्टि कर रही हैं।

कहीं-कहीं पर वृक्षगण विविध प्रकार के पुष्प तथा फलों के भारसे विनम्र होकर श्रीमधुसूदन भगवान को उपहार देने के लिये प्रस्तुत हो रहे हैं। कहीं पर योगिगण स्वच्छ जलादि तथा मनोहर कमल आदि से युक्त विविध कुण्डों पर स्नान तथा नित्य नैमित्तिक क्रिया सम्पादन कर रहे हैं। कहीं पर देव-देवियों के पूजनार्थ विप्रगण विविध पुष्पादि उपहारों से सुसज्जित हो रहे हैं। इत्यादि पर्वतराज श्री मन्दारकी अलौकिक शोभा तथा पूर्ण महत्त्व देख मैं आनन्दार्णव में निमग्न हुआ।

स्थान का परिचय लेने लगा कि यह मन्दार कौन है। इस प्रकार परिचय के लिये अनेक ग्रन्थादि का अवलोकन करने लगा एक दिन अकस्मात् योगिनी तन्त्र के उत्तर खण्ड चतुर्थ पटल में स्थान का परिचय मिल गया—श्रीशङ्कर भगवान श्री पार्वती जीसे परम पावन भारत भू मण्डल में एक सौ आठ सिद्धि क्षेत्र है। ऐसा कह कर किस स्थान में कौन रूपसे कौन देवता हैं ऐसा कहते कहते अन्त में कहते हैं—

गोकर्णे च विकर्णाख्योमन्दारे मधुसूदनः ॥
अष्टोत्तरशतं स्थानं मयाते परिकीर्तितम् ॥२०॥
एतेषामपि यस्त्वेक पश्येद्भक्तिमान्नरः ॥
स्थानं विरजसं लब्ध्वा मोदते शाश्वतीः समाः ॥२३॥
यानि कानिच सर्वाणि यस्त्वमांश्चिन्तयते नरः ॥
मोक्षभागी भवति च यत्राह तत्र संस्थितः ॥२४॥

इत्यादि श्लोकों से ज्ञातहुआ कि यहपरम पवित्र भारत वर्ष में अलौकिकैश्वर्य सम्पन्न परमपवित्र स्वतन्त्र मन्दार क्षेत्र है फिर योगिनीहृदय तन्त्र में उत्तरखण्ड में नौवाँ पटल में लिखा है कि—

अष्टषष्ठीषु शैलेषु मध्ये ह्यत्युन्नतो गिरिः ॥
मन्दाराख्यंतु तं शैलं गत्वा तत्र समाहितः ॥८३॥
पूर्वभागे च शैलस्य स्थितं मधुरिपु हरिः ॥
दर्शनात्तस्य देवस्य कुलानां तारयेच्छतम् ॥८४॥

इत्यादि यहाँपर भी अड़सठ पर्वतों में मेरु मन्दर इत्यादि गिनते गिनते अन्त में मन्दार भी स्पष्ट रूपसे लिखा है ॥ एवं गणेशपुराण के उत्तरखण्ड के ३९ अध्याय में त्रिपुरासुर श्री शंकर भगवान से वर मांगा है कि

यदि प्रसन्नोभगवान् देहि कैलाशमय मे ॥
गच्छ मन्दार शिखरं यावन्मम मनोरथम् ॥२॥

एवंबृहद्विष्णु पुराण में भी लिखा है—

क्षीरस्यान्दनयो मध्ये मन्दारोनामपर्वतः ॥
तस्यारोहण मात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥१॥

मन्दारशिखरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा वा मधुसूदनम् ॥
काम धेनुमुखं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥२॥

इत्यादि प्रमाणों से भी ज्ञात हुआ कि यह परम पवित्र स्वतन्त्र मन्दार क्षेत्र है। तब मैं परमोल्लास से मन्दार का माहात्म्य अन्वेषण करने लगा एकदिन स्थानीय पण्डा कुल भूषण पण्डित श्री शीतवर्ण झा जी के घर में स्कन्दपुराण का अत्यन्तजीर्ण अवस्था में लगभग डेढ़सौ वर्ष का लेख सूतशौनक संवादात्मक एकअध्याय मिला ॥

तब मुझे अकिञ्चन व्यक्ति को निधि प्राप्त होने से जैसा आनन्द होता है वैसाही आनन्द प्राप्त हुआ। माहात्म्य का अवलोकन से ज्ञात हुआ कि यह वही मन्दार क्षेत्र है जहाँ पर प्रलयावसान में सृष्टि से पहले योगनिद्रा से चैतन्य प्राप्तकरने पर शेषशायी भगवान मधुकैटभ को मारकर श्री ब्रह्माजी को आश्वासन देकर दैत्योंके ऊपर पर्वतराज कीलित कर दिया था और उसी दैत्यकी मज्जा से पृथ्वी का निर्माण किया गया और उसी दिन से भगवान का नाम मधुसूदन भी पड़ा यह संसार विख्यात है। जिस का परिचय आजकल भी आकाशगङ्गा के समीप पूर्वदिशा में मधुदैत्य का मस्तक दे रहा है। तब मैं परमानन्द के साथ मधुसूदन भगवान को हृदयरूपी कमल में मानसिक प्राण प्रतिष्ठादिकर मानसोपचार से पूजनकर श्री मान् बाबू शालग्राम

प्रसाद सिंह जी के लाईब्रेरी में अष्टादश महापुराण तथा उप-पुराण तथा महाभारतादिक इतिहास और तन्त्रादिक अवलोकन कर माहात्म्य रचना करने लगा।

अनन्तर श्री मधुसूदन भगवान की कृपा से माहात्म्य ४२ अध्याय में परिणत हुआ। तब मैं सम्वत् १९८८ कार्त्तिकशुक्ला एकादशी शुक्रवार को श्री मधुसूदन भगवान को माहात्म्य समर्पणकर श्री मान् बाबू शालग्राम प्रसाद सिंह जी के कर कलम में छपवाने के लिये समर्पण किया।

प्रिय सज्जन धार्मिक भातृगण महोदय! इस परम पवित्र भारत भूमण्डल में भागलपुर मण्डलान्तर्गत भागीरथी गङ्गा के दक्षिण अङ्गदेश में परम पवित्र स्वतन्त्र मन्दार क्षेत्र है। यहाँ पर ब्रह्माजी मधुकैटभ वधानन्तर श्री मधुसूदन भगवान की मनोहर मूर्त्ति की कल्पना कर वेद विधि से प्राण प्रतिष्ठा देकर प्रणवादि मन्त्रों के द्वारा चिरकाल पर्य्यन्त तपस्या कर श्री मधुसूदनभगवानकी कृपा से सृष्टि सामर्थ्य लाभ किया था। यह माहात्म्य अवलोकन कर पाठकजन ज्ञात करेंगे।

जहाँ पर एकबार भी भक्तिभाव से श्रीमधुसूदन भगवान की पूजा करने से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, चारो पदार्थ प्राणी गण प्राप्त कर सकते हैं। जिनका गुण गान शेष शारदा भी पूर्ण रूपसे नहीं कर सकते। उन्हीं आदि देव श्रीमधुसूदन भगवानका प्राचीन निवासस्थान मन्दार क्षेत्र है जहाँ पर आजकल भी निशीथ रात्रि में कभी कभी अनेक

घड़ी-घन्टे की आवाज सुनने में आती है। तथा कभी कभी अलौकिक फकीरों से भी दर्शन हो जाता है और कठिन से कठिन भी रोगाक्रान्त मनुष्य केवल मन्दार पर्वत की जलवायु सेवन कर अचिर काल ही में स्वस्थ होकर अपने अपने निश्चित स्थान को जाता है और कठिन से कठिन भी कार्य्य श्री मधुसूदन भगवान पर विश्वास कर भक्तिभाव से पूजा करने से निश्चय मनोरथ पूर्ण कर अपने स्थान को कृतार्थ होकर जाते हैं। वही भगवान मन्दारादि निकट दक्षिण दिशा में पवित्र वालिशाक्षेत्र में प्राणी गणोंपकारार्थ विराजमान है।

जिनकी अगाध प्रेरणा से यह ग्रन्थ निर्माण किया गया आज वे इस धराधाम में नहीं रहे, यह मेरे लिये एक हृदय-विदारक घटना है। जो हो स्वर्गीय श्रीमान् बाबू शालग्राम प्रसाद सिंह जी, निश्चय ही एक रत्न थे, उनकी निधनतासे इस प्रान्तको एक महती क्षति हुई। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दें और उनके परिवारको दें धैर्य, धर्म, धन और सम्मान।

इस समय स्वर्गीय बाबू साहबके चार पुत्र रत्न वर्तमान हैं, जो अपने गुणोंसे पिता की तरह ही विख्यात हो रहे हैं। धार्मिक कार्य की ओर इन लोगों की प्रवृत्ति भी प्रचुर रूप में है। अपने दिवंगत पिता की यशो माधुरी को अक्षुण्ण बनाये रखने की अभिरुचि इन लोगों में काफी तादाद में है। बाबू साहबकी निधनता से मैं तो हतोत्साह हो गया था; किन्तु श्रीमान् बाबू

मन्दारेश्वर प्रसाद सिंह तथा श्रीमान् बाबू श्यामा प्रसाद सिं
जी के विशेष आग्रह और मुस्तैदीसे यह पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशि
हो गयी, जिस से स्वर्गीय बाबू साहबके सङ्कल्पमें तनिक भी
बाधा नहीं आसकी इस पवित्र और पुण्य कार्य को
संपादित कर निश्चय ही चारो भाई सुयश के पात्र हुए हैं भगवान्
मधुसूदन इन चारो भाइयोंको इसी प्रकार धर्मकी ओर प्रवृत्त
रखें एवम् इनकी कीर्त्ति वैजयन्ती को सदा फहराते रहनेका
अवसर दें ।

अन्तमें मैं श्रीमान् प० गौरीनाथ झा जी (प्राईवेट सेक्रेटरी
कुमार कृष्णानन्दसिंह, बनैलीनरेश) को भी धन्यवाद दिये बिना
नहीं रह सकता, जिनकी कृपासे इस ग्रन्थके प्रकाशन में अनेक
लाभ हुए हैं ।

इस माहात्म्यमें अप्रासङ्गिक तथा रचनाजन्य वो भ्रमवशात्
लेख प्रयुक्त त्रुटि हुई होगी उसको धार्म्मिक प्रिय सज्जन महो
दयगण कृपा दृष्टीसे देखकर हमें कृपया सूचित करेंगे जिनको
दूसरे संस्करण में मैं सुधार करूंगा ॥

विज्ञप्तिरियम् मिथिलादेशस्थ दरभङ्गा मण्डलान्तर्गत बोरज ग्राम
वासिनः पण्डित श्रीसन्तलालमिश्र व्याकरणतीर्थस्य

प० श्रीसरलाल मिश्रो व्याकरणतीर्थः
प्रधानाध्यापक—श्रीमधुसूदन संस्कृत विद्यालय, बाँसो ।

श्रीगणेशाय नमः

प्रणम्य गणनाथञ्च भास्करञ्च ततः परम् ॥
ततो दुर्गाञ्च वह्निञ्च माधवं मधुसूदनम् ॥१॥
ध्यात्वा साम्बं शिवं ब्रह्म गुरोः पादाब्जमेवच ॥
नत्वा विष्णोश्चरित्रञ्च विलिखामि प्रयत्नतः ॥२॥
अथ मन्दारमाहात्म्यं पृथिव्याश्चातिपावनम् ॥
सज्जनानाम्विनोदाय भक्तिसम्वर्द्धनायच ॥३॥
पुराणादौ यथादृष्टं चरित्रम्परमात्मनः ॥
मधुसूदन देवस्य मन्दराधिपतेर्विभोः ॥४॥
तथैवानुविधास्यामि ध्यात्वा तम्पुरुषोत्तमम् ॥
मधुसूदनदेवञ्च भुक्ति-मुक्ति-प्रदायकम् ॥५॥

वन्दौं प्रथम गणेश ऋद्धि सिद्धि मङ्गल सदन ॥
दायक बुद्धि विशेष विमलगिरा श्रुति गम्य पुनि ॥१॥
मधुसूदन पदनेह जन्म-जन्म यह विनय मम ॥
देहि सदा परमेश शेष शारदा ईश पुनि ॥२॥

सम्प्रति गणेश आदि पञ्च देवों को नमस्कार कर तथा माधव श्री मधुसूदन भगवान् का ध्यान कर और साम्बशिव को तथा गुरुजी का पादपद्मको ध्यान पूर्वक नमस्कार कर श्री विष्णु भगवान्का चरित्र है जिसमें ऐसा जो पृथिवीमें अत्यन्त पवित्र मन्दारमधुसूदन माहात्म्य सो सज्जनों के विनोदार्थ तथा भक्ति बढ़ानेके लिये मैं यत्न पूर्वक लिखता हूँ ॥ पुराणादिक में परमात्मा श्री मधुसूदन भगवान्का जैसा मैं चरित्र देखा हूँ वैसा ही भोग मोक्ष को देने वाला पुरुषोत्तम श्री मधुसूदन भगवान् का ध्यान कर लिखता हूँ ॥

एकदा नैमिषारण्ये शौनको मुनिसत्तमः ॥
पप्रच्छ प्रणतो भूत्वा सूतं शास्त्रार्थ-पारगम् ॥६॥

॥ शौनक उवाच ॥

सूत सूत महाभाग सर्व-शास्त्र-विशारद ॥
श्रुतञ्च त्वन्मुखाम्भोजात्माहात्म्यम्पावनम्महत् ॥७
रावणेश्वरमाहात्म्यं तथा नागेश्वरस्य च ॥
त्रिकोणक्षेत्रमाहात्म्यं त्वया च कथितम्मुने ॥८॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मन्दारस्य द्विजोत्तम ॥
मधुसूदनदेवस्य माहात्म्यञ्चातिपावनम् ॥९॥

एक समय नैमिषारण्य क्षेत्रमें शौनक मुनि ने सूतजी से

प्रणाम कर पूछा ॥६॥ शौनक जी बोले—हे सर्वशास्त्र विशारद महाभाग सूत जी, आपके मुख से विविध प्रकार के परम पावन माहात्म्य सुने ॥७॥ रावणेश्वर श्री वैद्यनाथ जी का तथा नागनाथ जी का तथा त्रिकोण क्षेत्र का माहात्म्य मैं आपके मुख से सुने ॥८॥ सम्प्रति श्री मन्दार मधुसूदन जी का परम पवित्र माहात्म्य हमें कहिये ॥९॥

॥ सूत उवाच ॥

साधुपृष्टन्त्वया साधो माहात्म्यञ्चाति पावनम् ॥
मन्दारस्यादिदेवस्य मधुसूदनकस्य च ॥१०॥

सूत जी बोले—हे साधो शौनक जी आपने अत्यन्त पवित्र मन्दा का आदिदेव श्रीमधुसूदन देव जी का माहात्म्य पूछा ॥१०॥

तीर्थानां यन्महातीर्थम्पावनानाञ्च पावनम् ॥
मन्दारं भूधरं क्षेत्रं सर्वप्राणिसुखावहम् ॥११॥
अत्र ते कथयिष्यामि सेतिहासं पुरातनम् ॥
शङ्करेण च संवादं कार्त्तिकेयस्य धीमतः ॥१२॥

॥ स्कन्द उवाच ॥

भगवन् सर्वमाख्यातम्भवता परमेश्वर ॥
कोलक्षेत्रस्य माहात्म्यं पुस्करस्य तथैवच ॥१३॥

गयातीर्थस्य माहात्म्यं प्रयागस्य तथैव च ॥
वाराणस्यास्तथा ख्यातं माहात्म्यं यत्तवप्रियम् ॥१४॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मन्दारस्य मुखात्तव ॥
विस्तरेण सुरश्रेष्ठ तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१५॥

॥ महादेव उवाच ॥

साधुसाधु त्वया वत्स स्मारितोऽस्मिन् मनोहर ।
तीर्थानां यन्महातीर्थं मन्दारः पृथिवीतटे ॥१६॥

तीर्थों में महा तीर्थ पवित्रों में परम पवित्र सब प्राणी का सुखदायक मन्दार क्षेत्र है ॥११॥ इस विषय में इतिहास पूर्वक मैं कहता हूं जो कि श्रीशङ्कर भगवान् से कार्त्तिकेय जी पूछा था । ॥१२॥ कार्त्तिकेय जी बोले - हे भगवन् आप के मुख से कोलक्षेत्र का तथा पुष्कर क्षेत्रका तथा गयाक्षेत्र का तथा प्रयाग का तथा वाराणसी का माहात्म्य जो कि आप का परम प्रिय है उसका माहात्म्य मैंने सुना ॥१३,१४॥ सम्प्रति श्री मन्दार मधुसूदन जी का माहात्म्य सविस्तर आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ । सो हे महादेवजी कृपा कर कहिये ॥१५॥ श्री महादेवजी बोले—हे वत्स कार्त्तिकेय जी आप बहुत पवित्र तीर्थों में महा तीर्थ श्रीमन्दार मधुसूदन जी का क्षेत्र स्मरण कराये ।

तत्र स्वयं वसति सिद्धगणेनजुष्टो
लक्ष्मीयुतः कमलपत्रमनोहराक्षः ॥

मध्वन्तको निखिलवेदपुराणगीतं तस्मान्नतीर्थ
मधिकं किल वत्सनान्यत् ॥१७॥
मन्दारचारुकुसुमैर्विबुधाः सदैव
यत्रार्चयन्ति चरणम्परमेश्वरस्य ॥
यत्र स्वयं कमलयोनिरहं हरिश्च
यत्राम्बिका कमलकोशनिवासिनी च ॥१८॥
अत्रैव यस्त्वयमसौ कपिलो महात्मा
माहात्म्यमस्य निजगाद परीक्षिताय ॥
पृष्टस्तदत्र शृणु वत्स समस्तवन्द्यं
संकीर्त्तनं भवति यत्र हरेर्म्मनोज्ञम् ॥१९॥
एकदा तीर्थयात्रायाम्पर्य्यटन् कपिलो मुनिः ॥
हस्तिनापुरमागत्य परीक्षितमगात्पुनः ॥२०॥
दृष्ट्वा तम्मुनिशार्दूलंप्रज्ज्वलज्ज्ञञ्च तेजसा ॥
सम्भ्रमादुत्थितो राजा परीक्षित नृपोत्तमः ॥२१॥
पूजयामास विधिवत्कपिलंपुनिपुङ्गवम् ॥
भक्त्या तम्प्रणिपत्याह राजर्षिरमितद्युतिः ॥२२॥

यहाँ पर सिद्धगणों से सेवित लक्ष्मीयुत मनोहर कमल नयन मधुकैटभ को मारने वाले श्रीमधुसूदन भगवान् स्वयं निवास करते हैं ॥ जो कि समस्त वेद पुराण में प्रसिद्ध हैं ॥ तस्मात् मन्दार से बढ़कर दूसरा तीर्थ नहीं है ॥१७॥ यहाँ पर मन्दार पुष्प से देवता लोगों ने श्रीमधुसूदन भगवान् का चरणों की पूजा सदैव किया करते हैं। यहाँ पर ब्रह्माजी श्रीविष्णुभगवान् तथा कमल के कोश में निवास करने वाली श्रीलक्ष्मीजी स्वयं निवास करते हैं।१८॥ यहाँ पर महात्मा श्रीकपिलदेवजी ने इसी मन्दार क्षेत्र का माहात्म्य राजा परीक्षित से कहा था। यहाँ पर श्रीविष्णुभगवान् का मनोहर संकीर्तन होता है। यहाँ पर राजा परीक्षित कपिलदेवजी से पूछा, जो कि मैं कहता हूँ, सो हे वत्स सुनो ॥१९॥ एक समय महात्मा कपिल मुनि तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में पर्य्यटन करते हुए हस्तिनापुर आकर राजा परीक्षित के यहाँ गये ॥२०॥ तेजसे देदीप्यमान मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीकपिलदेवजी को देख कर ससम्भ्रम राजा उठकर परम पवित्र श्रीकपिलदेवजी की पूजा तथा प्रणामादिक कर तेजस्वी राजा भक्ति पूर्वक मुनिपुङ्गव कपिलदेवजी से कुशलादि पूछने लगे ।२१, २२।

अद्य धन्य तरोऽहन्ते दर्शनान्मुनिपुङ्गव ॥
संसारिणां महायोगिन् दृशात्वनाम्महात्मनाम् २३
दर्शनं दुर्ल्लभं लोके जायते मुनिसत्तम ॥
नह्यपुण्यवतां साधो दर्शनं जायते भुवि ॥२४॥

इदानीन्दिशमेतात यदर्थन्त्वमिहागतः ॥
साधयिष्यामि विप्रर्षे ह्याज्ञान्तवद्विजोत्तम ॥२५॥

॥ कपिलदेव उवाच ॥

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यदर्थमिहमागतः ॥
वृत्तान्तन्ते नृपश्रेष्ठ सावधानमना भव ॥२६॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भ्रान्तन्देशमनेकसम ॥
यशस्ते बहुधा लोके श्रुतम्बै ब्राह्मणोमुखात् ॥२७॥
तदारभ्य च राजर्षे परङ्कौतूहलम्मम ॥
दर्शनार्थमिहायातो नान्यत्किञ्चित्प्रयोजनम् ।२८।

हे मुनियों में श्रेष्ठ आज मैं आप के दर्शन से धन्य हूँ। हे महायोगिन संसारियों के लिये आप के ऐसा मुनियों का दर्शन दुर्ल्लभ है। हे साधो बिना पुण्य का आपलगों का दर्शन संसार में असम्भव है ॥२३, २४॥ हे मुने सम्प्रति जिस कार्य्य के लिये आप आये हैं, सो हमें कृपा कर कहिये जो मैं आज्ञापालन करूँ ॥२५॥

श्रीकपिलदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित जिस कार्य्य के लिये मैं आया हूँ सो वृत्तान्त मैं आप से कहता हूँ। सावधान मन से सुनें।२६॥ मैं तीर्थ यात्राके प्रसङ्ग में बहुत देश भ्रमण किया।

ब्रह्मणादिक के मुख से आप का बहुत बार यश सुना ॥२७॥ हे राजर्षि तव से आप का दर्शन की अभिलाषा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। इसीलिये मैं आप का दर्शनार्थ यहाँ आया हूँ और कोई प्रयोजन नहीं है ॥२८॥ अनन्तर प्रसन्न होकर राजा बारम्बार प्रणाम कर अतिथि सत्कार से तथा मधुर भाषण से कपिल मुनि को प्रसन्न किये ॥२९॥

ततः प्रीततरो राजा प्रणनाम पुनः पुनः ॥
आतिथ्येभ्मधुरालापैस्तुतोष कपिलम्मुनिम् ॥२९॥
एवं बहुविधालापैर्म्मुनि राजर्षयोर्युह ॥
गते बहुतरे काले अन्योऽन्यैर्भाषणैस्ततः ॥३०॥
एकदा सुखमासीनं कपिलं सिद्धवन्दितम् ॥
भक्त्या परीक्षितः प्राह बद्धाञ्जलि पुरस्सरम् ।३१।

॥ परीक्षित उवाच ॥

भगवन् शासिता पृथ्वी मयेयम्पालिताद्विज ।
निहत्यारि कुलं सर्वं साब्धिद्वीपा सपर्वता ॥३२॥
भोग्यं भुक्तं मयादेव देवानामपि दुर्ल्लभम् ॥
वाप्यादिभिर्द्धरिचिता कीर्त्तिर्ल्लब्धासुनिर्म्मला ।३३।
महाबलपरीवारा महायोद्धा समन्विताः ॥

अरयो घातिता सर्वे शासिता धरणी तथा ॥३४॥
इदानीम्वार्द्धकन्तात सिद्धार्चित पदाम्बुज ॥
दिने दिने प्राणहानिर्विपरीतञ्च दृश्यते ॥३५॥

हे कार्तिकेय इस प्रकार से कपिलदेवजी को राजा परीक्षित ने वार्तालाप करते करते बहुत दिन व्यतीत हो गया है। एक दिन सिद्धगणों से सेवित सुख पूर्वक बैठे हुऐ कपिल मुनि से राजा परीक्षित भक्तिभाव से अञ्जलिबद्ध होकर पूछे ॥३१॥ राजा परीक्षित बोले—हे भगवन् कपिलदेवजी मैंने निःशेष शत्रु कुलोंको नाशकर आसमुद्रान्त पृथ्वी शासन कर राज किया ॥३२॥ और जो देवताओं को भी दुर्लभ है वैसा अनेक प्रकार का भोग भी किया, बापी आदि अनेक प्रकार की तड़ागादिक देश में रच कर निर्म्मल कीर्त्ति भी लाभ किया ॥३३॥ और महा महा बली परिवारों से युक्त होकर महा योद्धाओं के साथ समस्त शत्रुवर्ग को मार कर आसमुद्रान्त पृथिवी शासन किया ॥३४॥ हे सिद्ध गणोंसे सेवित पादपद्म सम्प्रति वार्द्धक्य अवस्थाके कारण दिनानुदिन प्राणोंके हानि तथा विपरीत दिखाई पड़ता है ॥३५॥

पश्यामि तादृङ् न शृणोमितादृङ्
न बुद्धि-शुद्धि-प्रतिभा-समूहः ॥
जरापिशाची सकलम्ममाङ्गं

सशोणितस्माङ्कवली करोति ॥३६॥
काशप्रसूत सदृशाश्च बभुवुरीश
केशाश्चनेत्र युगलञ्चन साच तुल्यम् ॥
कम्पप्रतान निचितश्च बभूव देहो
मां भक्षयत्यहरहश्च जरापिशाची ॥३७॥
एषा जरा प्रतिदिनं मम गात्र हन्ति
इतो यमस्यच सदा प्रतिलोकयन्ति ॥
आसन्न मृत्युरहसीशतथाप्याहं
मेमे ममेति ममता वितनोति भावम् ॥३८॥
तस्माद्भवच्चरण पङ्कज भक्तिरत्र
माप्रेरयत्वखिलदुष्ट विनाशमार्गे ॥
ब्रूहिद्धि नोत्तम मनोहर तीर्थमेकं
शेषाणि यत्रदिवसानिनयामि योगात् ॥३९॥

सुतउवाच

इति राजवचः श्रुत्वा महात्मा कपिलो मुनिः ॥
प्रसन्नः कथयामास राजानम्परमादरात् ॥४०॥

न तो पहले के ऐसा देखता हूँ, न सुनता हूँ, न तो बुद्धि की प्रतिभा समूह पहले को ऐसा प्रतीत होती है॥ वृद्धावस्था रूपी पिशाचनी समस्त मेरे अङ्ग को शोणित सहित ग्रस को प्राप्त कर रही है ॥३६॥ हे ईश काश पुष्पके ऐसा केश हो गये, अन्धकार से ढका हुआ मेघ के ऐसा नेत्र प्रतीत हो रहे है। देह काँप रहे हैं तथा जरारूपिणी पिशाचनी इधर शरीर नष्ट कर रही है ॥३७॥ यह जरारूपिणी पिशाचिनी शरीर नाश करती है। उधर यमराजका दूत भी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मृत्यु भी समीप आ रही है। हे ईश तो भी मेरी ममता उत्तरोत्तर बढ़ रही है। ॥३८॥ इस हेतु आपका चरण रूपी कमल में जो मेरी भक्ति है सो कभी भी हमें दुष्ट मार्ग में प्रेरणा न करे और हे द्विजोत्तम एक ऐसा मनोहर तीर्थ कहिये जहाँ जाकर मैं शेष भाग बिताऊँ ॥३९॥ सूतजी बोले—हे शौनक इस प्रकार राजा परीक्षित का प्रश्न करने पर महात्मा कपिलदेवजी करुणा से पूर्ण प्रसन्न होकर उत्तर देने लगे ॥४०॥

इति श्रीस्कन्दादिमहापुराणे सूतशौनक सम्वादे मन्दारमधुसूदन माहात्म्ये श्रीकपिलदेवम्प्रति राजपरीक्षितस्य प्रश्नकरणं नाम प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ श्रीकपिलदेव उवाच ॥

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि तीर्थसंख्यानमेव च ।
यद्दत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्म-संसारबन्धनात् ॥१॥
तीर्थानां यत्परं तीर्थं बद्रिकाश्रममुत्तमम् ॥
द्वारिकाञ्च जगन्नाथं मन्दारं भुविगोपितम् ॥२॥
मन्दारसदृशं तीर्थं पृथिव्यां नास्ति शौनक ॥
यत्र सन्निहितो देवो भगवान् मधुसूदनः ॥३॥
मधवाख्यमसुरं हत्वा भगवान् मधुसूदनः ॥
तयोरुपरि संन्यस्य मन्दारं पर्वतोत्तमम् ॥४॥
निवासाय स्वयं यत्र स्थानम्परमशोभनम् ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां स्थापयामास कौशलात् ॥५॥
यत्रब्रह्मादयोदेवा नारदाद्या महर्षयः ॥
साध्याश्च गुह्यकाः सिद्धाः ऋषयश्च तपोधनाः ॥६॥
मधुसूदन देवस्य पूजनार्थमतन्द्रिताः
समागच्छन्ति मन्दारे द्वादश्याम्प्रतिवासरे ॥७॥

श्री कपिलदेवजी बोले—मैं तीर्थों की संख्या कहता हूँ जहाँ पर जाने से प्राणीगण जन्म मरण रूपी बन्धन से छुट जाते है सो आप सुनिये ॥१॥ तीर्थों में महा तीर्थ बद्रिकाश्रम तथा द्वारिका, जगन्नाथ तथा संसार में गुप्त मन्दार महा तीर्थ है ॥२॥ सूतजी कहते हैं हे शौनक पृथिवीमण्डल में मन्दार सदृश दूसरा तीर्थ नहीं है जहाँ पर नित्य समीपवर्त्ती श्री मधुसूदन भगवान रहते हैं ॥३॥ मधुकैटभ को मारकर उसके ऊपर श्री मधुसूदन देव मन्दार पर्वत को न्यस्त कर ॥४॥ प्राणीगण को भोग तथा मोक्ष को देने के लिये अपना निवासार्थ कला कौशल से परम मनोहर स्थान बनाये ॥५॥ यहाँ पर ब्रह्मादिक देवगण तथा नारदादि महर्षिगण साध्यगण गुह्यक गण सिद्धगण तपोधन ऋषिगण ॥६॥ प्रति द्वादशी में छिप कर आलस्य रहित होकर श्री मधुसूदन देव जी का पूजनार्थ मन्दारमें आया करते हैं ॥७॥

प्रच्छन्नभावमाश्रित्य पूजयन्ति जनार्दनम् ॥
तत्र याहि महाराज मन्दारे पर्वतोत्तमे ॥८॥
शेषश्च तत्रदिवसशयं यत्र स्थितो हरिः ॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥९॥
मन्दारम्भूधरम्प्राप्य सर्वे पुण्या भवन्ति वै ॥
न मन्दारसमं तीर्थं न हि गङ्गासमा नदी ॥१०॥

नहि विष्णुः परोदेवो न मन्त्रः प्रणवात्परः ॥
प्रयान्ति ये नरा राजन् मन्दारं श्रद्धयान्विताः ॥११
तेऽतीत्यभवपाथोधिं सुखिनोऽनुग्रहाद्धरेः ॥
जम्बूद्वीपे समस्तानि तीर्थानि भगवान् प्रभुः ।१२
त्यजति प्रत्यहं राजन् लब्ध्वैतानि श्रिया युतः ॥
कोलक्षेत्रं प्रभासञ्च जगन्नाथञ्च गोमतीम् ।१३।
द्वारकाञ्च प्रयागञ्च मन्दारम्भुविगोपितम् ॥
यत्रात्मनैव भगवान् पुराणपुरुषोत्तमः ॥१४॥

यहाँ पर प्रच्छन्न भाव से श्रीमधुसूदन देवजी की पूजा करते हैं, वहाँ पर हे महाराज आप जाइये ॥८॥ शेष समय वहाँ पर व्यतीत कीजिये जहाँ पर श्री मधुसूदन देवजी वर्त्तमान हैं॥ महापाप से युक्त अथवा सर्व पाप से युक्त क्यों न हो; पर मन्दार पर्वतों का परिदर्शन से पुण्यवान हो जाता है ॥९॥ मन्दार से बढ़ कर दूसरा तीर्थ नहीं है, गङ्गासे बढ़ कर दूसरी नदी नहीं हैं। विष्णु से बढ़ कर दूसरा देव नहीं हैं। ॐकार से बढ़ कर दूसरा मन्त्र नहीं है ॥१०॥हे राजा परीक्षित जो कोई श्रद्धापूर्वक मन्दार जाता है वह श्री मधुसूदन देव जी की कृपासे सुखपूर्वक संसार रूपी समुद्र से पार होकर वैकुण्ठ धाम को जाता है ॥११॥ हे राजा परी-

क्षित जम्बूद्वीप में जितने तीर्थ हैं, उन सब को छोड़ कर श्रीमधुसूदनदेव मन्दार को पाकर लक्ष्मी जी के साथ वहीं पर आनन्द करते हैं ॥१२॥ कोलक्षेत्र प्रभासक्षेत्र जगन्नाथ गोमती द्वारिका प्रयागक्षेत्र इन सब तीर्थों में मन्दार एक विलक्षण तथा गोपनीय मन्दार क्षेत्र है। यहाँ पर स्वयं भगवान, पुराण पुरुषोत्तम विराजमान हैं।

नित्यमावसथं कृत्वा विरराम रमायुतः ॥
तत्र याहि महाराज नात्र कार्य्या विचारणा ॥१५॥

॥ परीक्षित उवाच ॥

धन्योऽसि त्वं महाभाग भक्तानां भक्तवत्सल ॥
साश्चर्य्यमिदमाख्यातं पवित्रं पापनाशनम् ॥१६॥
कस्मिन्देशे मुनिश्रेष्ठ मन्दारः पर्वतोत्तमः
तन्मे कथय विप्रर्षे परं कौतूहलम्मम ॥१७॥

॥ श्रीकपिलदेव उवाच ॥

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत्रास्तेऽसौ महागिरिः ॥
मन्दारो राजशार्दूल यत्र सन्निहितो हरिः ॥१८॥
भागीरथ्याः परेपारे दक्षिणस्यां महामते ॥
अङ्गदेशे सुविख्यातो मन्दारः पर्वतोत्तमः ॥१९॥

यत्राप्ते करुणासिन्धुर्भगवान् मधुसूदनः ॥
तत्र का दुर्ल्लभा मुक्तिर्ज्जायते पाण्डुनन्दन ॥२०॥
अहोऽस्ति भारते वर्षे तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥
मन्दाराख्यं महाक्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदंनृणाम्॥२१॥

और नित्य वास करते हुए श्रीलक्ष्मी जीके साथ विहार कर
हैं। वहाँ पर हे महाराज परीक्षित आप जाइये इसमें विचार
करनेका काम नहीं है ॥ १५ ॥ राजा परीक्षित बोले—हे महाभाग
हे भक्तवत्सल आप धन्य हैं ॥ यह परम आश्चर्य जनक पवित्र
तथा समस्त पाप नाशक माहात्म्य आप सुनाया ॥ १६
हे मुनि-श्रेष्ठ किस देशमें पर्वतोंमें श्रेष्ठ मन्दार
पर्वत है। हे विप्रर्षि सो कृपा पूर्वक हमें कहिये
सुनने की परम उत्कण्ठा है ॥ १७ ॥ श्री कपिलमुनि बोले— हे
राजा शार्दूल यहाँ पर नित्य समीपवर्ती श्रीमधुसूदन भगवान् हैं
ऐसा जो मन्दार क्षेत्र सो यहाँ पर है वह मैं कहता हूँ हे राजा
परीक्षित आप सुनिये ॥ १८ ॥ भागीरथी गङ्गाके दक्षिण दिशा में
अङ्ग देश में सुन्दर सुनिख्यात पर्वतों में श्रेष्ठ मन्दार पर्वत है
॥ १९ ॥ जहाँ पर करुणासिन्धु श्रीमधुसूदन भगवान् हैं तहाँ पर
मुक्ति क्या दुर्लभ हो सकती है हे पण्डुनन्दन ॥ २० ॥ अहा परम
पावन भारतवर्ष में भोगमोक्षको देने वाला मन्दार क्षेत्र तीर्थों में
महा तीर्थ है ॥ २१ ॥

सर्वा पाप प्रशमनं सर्वाभीष्ट प्रदायकम् ॥
तत्रयाहि महाराज भक्ति भाव समन्वितः ॥ २२ ॥
यत्र ब्रह्मादयो देवा कलौ प्रच्छन्नरूपिणः ॥
विचरिष्यन्ति मन्दारे तत्र याहि महामते ॥ २३ ॥
परीक्षित उवाच
भगवन् यत्त्वयाख्यातं माहात्म्यं पाप नाशनम् ॥
मन्दारस्यत्र विप्रर्षे तत्रैकः संशयो महान् ॥ २४ ॥
कथमस्या भवत्नाम मन्दारो भूधरस्य च ॥
तन्ममाचक्ष्व विप्रर्षे विस्तरेणानु कम्पया ॥ २५ ॥
सूत उवाच
इत्थं राजवचः श्रुत्वा महात्मा कपिलो मुनिः ॥
प्रत्युवाचाथराजानं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ २६ ॥

टीका:—हे महाराज परीक्षित! समस्त पापोंको नाश करने
वाले तथा मनोवाञ्छित फलको देनेवाले मन्दार क्षेत्र भक्ति भाव
से आप जाइये ॥ २२ ॥ जहाँ पर ब्रह्मादिक देव छिप कर
कलियुगमें विचरण करेंगे ऐसा जो मन्दार क्षेत्र वहाँ आप
जाइये ॥ २३ ॥ राजापरीक्षित बोले ॥ हे भगवान्! परम
पवित्र तथा समस्त पाप नाशक जो मन्दार क्षेत्र का
माहात्म्य आपने सुनाया उसमें एक संशय हमें
उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ हे विप्रर्षि! उसका कैसे मन्दार नाम
पड़ा सो सविस्तर कृपा कर हमें कहिये ॥ २५ ॥ सूत जी बोले
हे शौनक! इस प्रकार राजाका वचन श्रीकपिल मुनिने सुन

॥ श्रीकपिलउवाच ॥

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि मन्दारोऽस्य यथा भवत् ।
भूधरस्य महाबाहो नाम विख्यात भूतले ॥ १ ॥
अत्र वोदाहरिष्यामः सेतिहासम्पुरातनम् ।
भृगुणासह सम्वादं सोमकान्त नृपस्य च ॥ २ ॥
आसीद्गणेश्वरे कल्पे विदर्भाविषये महान् ॥
सोमकान्त इतिख्यातो राजा परम धार्मिकः ॥ ३ ॥
सोऽकदा सुखमासीनं भृगुञ्च मुनिपुङ्गवम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ ४ ॥

॥ सोमकान्त उवाच ॥

सिद्धिक्षेत्रस्य माहात्म्यं त्वयाऽकथितम्मुने ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मन्दारस्य द्विजोत्तम ॥ ५ ॥

कर वाक्योंमें विशारद वह मुनि प्रसन्न होकर राजा परीक्षित से कहने लगे ॥ २६ ॥

इति श्री मन्दारमधुसूदनमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥

टीका:—श्रीकपिलमुनि बोले ॥ हे राजा परिक्षित, जिस प्रकार इस पर्वत का नाम मन्दार पड़ा सो मैं कहता हूं । हे महाबाहो आप सुनिये ॥१॥ इसी के विषय में मैं एक पुराना इतिहास कहता हूं जो कि सोमकान्त राजा से भृगुमुनिने कहा था ॥२॥ गणपतिकल्प में विदर्भ देशमें परम धार्मिक सोमकान्त नामका राजा था ॥३॥ उस राजाने एक समय सुखपूर्वक बैठे हुए भृगुमुनि से हाथ जोड़कर पूछा ॥४॥ सोमकान्त बोले ॥ हे मुनि ! आप सिद्धक्षेत्रका माहात्म्य कहा, सम्प्रति

कथमस्याभवन्नाम मन्दारो भूधरस्य च ॥
तन्मे कथय विप्रर्षे परङ्कौतूहलं मम ॥ ६ ॥

॥ भृगुरुवाच ॥

साधु साधु महाबाहो पुण्यवानसि साम्प्रतम् ॥
नहापुण्यवतां राजन् कथायां श्रवणे रतिः ॥ ७ ॥
अतस्ते कथयिष्यामि कथामेकाम्पुरातनीम् ॥
यस्याः श्रवण मात्रेण सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥
आसीत्पुरा महाराज औरवो मुनिसत्तमः ॥
वेद वेदाङ्गवित्साक्षात् भानुस्तस्विना यथा ॥ ९ ॥
शक्तो यो मनसा स्रष्टुं पातुं हन्तुं चराचरम् ॥
धर्मपत्नीरतो नित्यं समलोष्टाश्मकाञ्चनम् ॥ १० ॥

मन्दार का माहात्म्य कहिये हमें सुन ने की इच्छा है ॥५॥ हे विप्रर्षि, किस प्रकार इस पर्वत का नाम मन्दार पड़ा सो कृपाकर हमें कहिये मेरी सुननेकी परम उत्कण्ठा है ॥६॥

टीका:—भृगु मुनि बोले । हे राजा सोमकान्त आपने बहुत पवित्र बात पूछी सम्प्रति आपके ऐसा दूसरा कोई पवित्र नहीं है । बिना पुण्य के भगवत् कथा में प्रीति नहीं होती है ॥७॥ इस विषयमें मैं आपको एक पुरानी कथा कहता हूं जिसके श्रवण से प्राणीगण समस्त पापसे छूट जाते हैं ॥८॥ हे महाराज पूर्व समय में वेदवेदाङ्गपारग साक्षात् सूर्य के ऐसा तेजस्वी औरव नामके मुनि थे ॥९॥ जो मनोव्यापार ही से चराचर जीवोंका परिपालन तथा संहार कर सकते थे ॥ अपनी धर्मपत्नीमें

मेधावी तपसा श्रेष्ठो जातवेदा इवापरः ॥
सुमेधानामतस्यासीत्पत्नीपरमधार्म्मिका ॥ ११ ॥
लावण्यलहरीकान्ता नानालङ्कारशोभना ॥
रूपेण निर्जित रतिर्धिक्कृताप्सरसोगणा ॥ १२ ॥
पतिशुश्रूषणरता लालिता परमादरात् ॥
तयोः समभवत्कन्या लक्ष्मीरूपा परन्तप ॥ १३ ॥
ताभ्यां सुलालिता बाला तयोरानन्द वर्द्धिनी ॥
नामास्याश्चक्रतुरुभौ शमीके तिनिजेच्छया ॥ १४ ॥
यद्यत्प्रार्थयते साध्वी सुदुर्लभमपीहयत् ॥
तत्सर्वं नृपशार्दूल ददाति च पिता विभुः ॥ १५ ॥

प्रीति करनेवाले तथा सोना और लोहाको समान भावसे देख
वाले थे ॥१०॥ अत्यन्त बुद्धिमान तपस्यामें श्रेष्ठ साक्षात्अग्नि
समान थे। उनको सुमेधा नामकी परम धार्म्मिक स्त्री थी ॥११
अत्यन्त सुन्दरी अनेक अलङ्कारोंसे युक्त अपने सौन्दर्य
से कामदेवकी स्त्री रतीदेवी तथा अप्सरागणोंको उसने जी
लिया था ॥१२॥ वह पतिकी सेवामें रत तथा पतिकी प्राण
प्यारी थी। अनन्तर इन दोनोंके प्रेम बढ़ानेवाली साक्षा
लक्ष्मीस्वरूपा एक कन्या ने जन्म ली ॥१३॥

टीका:—उनदोनोंसे पालिता तथा उनदोनोंका आनन्
बढ़ानेवाली कन्याका शमीका नाम पड़ा ॥१४॥ जो कुछ व
माँगती थी वह संसारमें दुर्लभ होने पर भी मुनिश्रे

सा तु कन्या रूपवती सञ्जाता सप्तवार्षिकी ॥
तदर्थं चिन्तयामास वरार्थं मौरवोगतः ॥ १६ ॥
धौम्यपुत्रं स शुश्राव वेदवेदाङ्ग पारगम् ॥
शौनकस्य मुनेः शिष्यं तेजोराशिम्परम्मुनिम् ॥ १७ ॥
गुरु वाक्य रतं दान्तं गुरुशुश्रूषणं परम् ॥
मन्दारनामकन्त्वासीत् समाहूयशुभेदिने ॥ १८ ॥
तान्ददौगृह्यविधिना पारिबर्हं ददौ बहु ॥
जाते विवाहे मन्दारो ययौस्वस्या श्रमम्प्रति ॥ १९ ॥
यौवनस्थान्तु तान्दृष्ट्वा शमीकाम्पुनराययौ ॥
मन्दारोमानितः सम्यग् और्वेणसुपूजितः ॥ २० ॥

उसको देते थे ॥१५॥ वह अत्यन्त सुन्दरी शमीका जब कि
सात वर्ष की हुई तब उसका वर खोजने के लिये वह और्व मुनि
निकले ॥१६॥ अनन्तर वेदवेदाङ्गपारग अत्यन्त तेजस्वी शौनक
मुनिके शिष्य धौम्यमुनी के पुत्र गुरुवाक्यमें रत वो सुन्दर और
चरित्रवान मन्दारनाम वो लड़का का जब नाम सुनने में आया
तब उनको बुलाकर शुभ दिन में गृह्यसूत्र के अनुसार अपने
लड़की के साथ उसका विवाह करा उसे बहुतसा धन देकर
उनको बिदा किया। मन्दार ने भी विवाहके बाद अपने आश्रम
को प्रस्थान किया ॥१७।१८।१९॥ अनन्तर कतिपय दिन व्यतीत
होने पर अपनी स्त्री शमीका को युवती देख कर फिर और्व-
मुनि के आश्रम में आये और और्व मुनि से अत्यन्त सत्कृत
हुए। अनन्तर अच्छे मुहूर्त्त में भोजनादिक करा वस्त्र तथा

सम्भोज्य सुमुहूर्त्ते च दत्वा वस्त्रादि काञ्चनम् ॥
प्रस्थाप्य तु भो विप्रो जामातरमथाब्रवीत् ॥ २१ ॥
इयं सुता मम ब्रह्मन् दत्ता तुभ्यं विधानतः ॥
पालयस्व बहुस्नेहा द्वयया त्वं मया यथा ॥ २२ ॥
ओमित्युक्त्वाथ स्वसुरं प्रणिपात पुरस्सरम् ॥
मन्दारो नृपशार्दूल ययौ स्वस्याश्रमम्प्रति ॥ २३ ॥
स्वस्याश्रमपदं कुर्वन् चिक्रीडन् निजभार्यया ॥
प्रौढ़ हास्यकथालापं बहु दूरङ्गतो नृप ॥ २४ ॥
नानापक्षिगणैर्युक्तं फलपुष्प समन्वितम् ॥
लताविटपसन्नद्धं भ्रमरालिकुलैर्युतम् ॥ २५ ॥
वनं चोपवनं राजन् शोभनं सर्वतोमुखम् ॥
तत्राश्रमकमकल्प्याथ चिक्रीड निजभार्यया ॥ २६ ॥

सोना इत्यादि के अलङ्करण से भूषित कर शमीका को प्रस्थान कराया और जामाता से यह बोले, हे ब्रह्मण यह कन्या मैं गृह्यविधि के अनुकूल आपको दान दिया। वा बाल्य अवस्था से आजतक मैंने जैसा पालन किया वैसाही आप इसको स्नेहपूर्वक पालन करेंगे ॥२०।२१।२२॥ हे नृपशार्दूल! और्व मुनि के ऐसा कहनेपर ओम् ऐसा कहकर और उनको प्रणामपूर्वक मन्दार अपने आश्रम की ओर गये। अनन्तर प्रौढ़ हास्यादिक तथा अपने स्त्रीके साथ विहार करते हुये अपना आश्रम को जाते हुए जब दूर गये तब हे राजा! अनेक पक्षियों से युक्त और फलपुष्प से भरे हुए वो भ्रमरादिक से सेवित लता वृक्षादिक संकुल

न्यवसत्तत्र कतिचित्कालं मन्दारो नृपसत्तम ॥
कदाचिद्दैवयोगेनासौ भ्रूशुण्डी तस्य चाश्रमम् ॥ २७ ॥
मन्दारस्य समायातो हिरदानन भक्तिमान् ॥
रुष्टोऽसावनलः साक्षात् तुष्टश्चेदीश्वरोपमः ॥ २८ ॥
तपसा निर्गता शुण्डा भ्रूशुण्डीति ततोऽभवत् ॥
स्थूलोदरो बृहत्कायो नानालङ्कारमण्डितः ॥ २९ ॥
ददर्शतु तमौ दान्तौ मन्दारः शमिका तथा ॥
विरूपमिव तं दृष्ट्वा मुदा जहसतुस्तदा ॥ ३० ॥
सोऽपमान भयाक्रान्त श्चुकोप भृशदुःखितः ॥
उवाच तं मन्दमते न जानासि मदोद्धतः ॥ ३१ ॥

चतुर्दिश अत्यन्त शोभायमान वन तथा उपवन को देख मार्ग में अपनी कुटी बना अपने स्त्रीके साथ क्रीड़ा करते हुए कितने कालतक वहां पर रहे। अनन्तर मुनियोंमें श्रेष्ठ भ्रूशुण्डी मुनि अकस्मात् मन्दार के आश्रममें आये ॥२३,२४, २५,२६,२७ ॥

टीकाः—जिन्होंका रोष करने से साक्षात् अग्नि सदृश दिखलाई पड़ता है। प्रसन्न होने से साक्षात् ईश्वर सदृश हो जाते हैं ॥ २८ ॥ श्री गणेश भगवान् की तपस्या से शुण्ड निकलने के कारण भुशुण्डी नामका बहुत मोटा विशाल शरीर अनेक अलङ्कारों से शोभित ॥ २९ ॥ इनका ऐसा रूप देख मन्दार तथा शमीका दोनों आनन्द से हंसने लगे ॥ ३० ॥ मुनि ने भी अपने अपमान से त्रस्त हो बारम्बार दुःखी होकर क्रोध किया। तथा इनके उपर क्रोध कर बोले अरे

अहसौ द्विजेन्द्र तैः पश्यासद्यतस्तुमाम् ॥
अतो जातं वृक्षयोनौ सर्वप्राणि विवर्जितौ ॥ ३२ ॥
शापं श्रुत्वाति कठिनं संत्रस्तौ भृशदुःखितौ ॥
प्रणम्य प्रोचतुर्विप्र मुच्छापङ्कर्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥
ततउवाच शुण्डीस जानन् करुणया युतः ॥
शुण्डान् दृष्ट्वा कृतं हास्यं युवाभ्यां मूढभावतः ॥ ३४ ॥
शुण्डावान् देव देवोऽसौ सुप्रसन्नो यदा भवेत् ॥
तदा युवां निजं रूपं प्राप्स्यथैनात्र संशयः ॥ ३५ ॥
एवमुक्त्वा गतो यावन्मुनिराश्रममण्डलम् ॥
तावत्तौ वृक्षतांप्राप्तौ त्यक्त्वा देहौतुमानुषौ ॥ ३६ ॥

मन्द मति ! अपना तू युवावस्था के गौरव से हम को नहीं जानता है ॥ ३१ ॥ और दांत खिसोड़कर दोनों स्त्री पुरुष मेरा विरूप के देख कर हँसा है इसलिये सर्वप्राणी से रहित होकर वृक्ष हो जाओ ॥ ३२ ॥ ऐसा कठिन शाप सुनकर संत्रस्त होकर बारम्बार दुःखी हो फिर भुशुण्डीमुनि को प्रणाम कर बोले हे मुनी इस शापका उद्धार कृपा कर बतलाइये ॥ ३३ ॥ अनन्तर इनका विनय देख अत्यन्त करुणा से युक्त भुशुण्डी मुनी बोले आप दोनों प्राणी मेरा शुण्ड देख कर हँसे इसलिये शुण्डवान श्रीगणेश भगवान जब प्रसन्न होंगे तब आपलोग इस शापसे मुक्त होकर

टीकाः—फिर आपलोग अपने रूपको प्राप्त करेंगे इसमें संशय नहीं ॥ ३४, ३५ ॥ ऐसा कह कर जब तक वे मुनि आश्रम मण्डल को गये तब तक ही वे दोनों भी वृक्षको प्राप्त कर गये।

मन्दार ताश्च मन्दारो ब्राह्मणः प्राप्तलक्षणात् ॥
शामिका शमितांप्राप्ता सर्वतः कण्टकैर्वृता ॥ ३७ ॥
उभौ वृक्षौ प्राणि मात्र वर्जितौ मुनि वाक्यतः ॥
अनायातौ युवौ दृष्ट्वा शौनक श्चिन्तयान्वितः ॥ ३८ ॥
मासमात्रं गते नैवा याति कस्मान्महाबलः ॥
मन्दारो यामितान्द्रष्टुं शिष्या यान्तु तयासहः ॥ ३९ ॥
शीघ्रमौर्वमागत्य पप्रच्छ शनकैरिदम् ॥
आनेतुंशमिकाम्प्राप्तो मन्दारः क्वास्तितद्वद ॥ ४० ॥

और्व उवाच ॥

मयाप्रेषित देवांशुर्दत्वा कन्यान्तु तत्समौ ॥
नागतश्चे स्वाश्रमंस नजाने कगतौ द्वावौ ॥ ४१ ॥

नुष्य योनी को छोड़ शमी शमी वृक्ष हुए, मन्दार मन्दार वृक्ष गये ॥ ३६ ॥ शमी कण्टक से आवृत मुनिके वाक्य से दोनों प्राणी से रहित हो गये ॥ ३७ ॥ इन दोनों का नहीं आना शौनक मुनि चिन्ता युक्त हुये ॥ ३८ ॥ एक मास हो या। महाबली मन्दार अबतक नहीं आया है। उनको देखने के ये जाता हूँ जिसमें सखीके साथ वे आवे ॥ ३९ ॥ ऐसा चार कर शीघ्र और्व मुनीके पास आकर बोले शमीको लेने लिये मन्दार आया है सो कहाँ है आप कहिये ॥ ४० ॥ और्व नी बोले, हे शौनक मैंने शमीके साथ मन्दार को पठाया है ब तक अपने आश्रम में वे दोनों नहीं आये इस का कारण नहीं जानता हूं कि वे दोनों कहाँ गये ॥

चिन्तयामासुरथते औरवः शौनकादयः ।
किमुभौ भक्षितौ मार्गे वृकव्याघ्रतरक्षुभिः ॥ ४२ ॥
अथवा निहतौ चौरैर्दष्टौ वाथो विषणसह ।
ततस्ते त्वरिता जग्मु स्तद्वृत्तान्तबुभुत्सया ॥ ४३ ॥
क्वचित्क्वचिद्विज्ञजनात्तु मांसमात्रमितोगतौ ।
एवं बहुतरं देशे भ्रममाण मुभावपि ॥ ४४ ॥
मुद्गलस्याश्रमाद्दूरे प्राच्यामङ्गाधिपेभुवि ।
भूधरं निकटे रम्ये स्त्रीपुंसौ स्थाणु-रूपिणौ ॥ ४५ ॥
अनुपेतैतयोर्ज्ञात्वा स्नात्वा ध्यात्वा विलोकयन् ।
ज्ञात्वा भृशुण्डिना शप्ता बुधहास रुषावशात् ॥ ४६ ॥

टीका:—अनन्तर औरव मुनि और शौनक मुनि चि
करने लगे । क्या इन दोनोंको रास्तेमें व्याघ्रादि खा गये
क्या चोर द्वारा से मारे गये या सर्प से दंश किये गये ? यह वृ
जानने के लिये शीघ्र वे दोनों चले । ४२, ४३ । किसी कि
आदमी के द्वारा ज्ञात हुआ कि यहां से एक
हुआ कि वे दोनों गये हैं । इस प्रकार से अनेक देश भ्रमण
हुए वे दोनों मुद्गल मुनि के आश्रम (मुंगेर) आये । हे
वहां से (पूर्व दिशा) अंग देश फिर आये । वहाँ पर पर्व
समीप रमणीय वृक्ष रूपमें परिणत मन्दार और शमी को
जान कर मनोहर कुण्ड (पापहरणी) में स्नान कर और
करके जाना कि भुशुण्डी मुनि के शाप से यह वृक्षत्व को
किये हैं । पञ्चांगना से रहित मन्दार ने वृक्ष को मन्दार

वृक्षतां गमितौ सर्वं पश्चि कीट विवर्जितौ ।
मन्दारस्तान्तु मन्दारः शमिका शमिता मपि ॥ ४७ ॥
शोचन्ति तावुभौविप्रौ औरवः शौनकोऽपि च ।
धौम्य पुत्रः स्वाध्याय मध्येतुं समुपागतः ॥ ४८ ॥
अधीतविद्यः स कथं गमितो द्रुमतामखलान् ।
पिता श्रुत्वात्यजेत्प्राणान् पृष्टः किम्वा वदामितन् ॥ ४९ ॥
औरवोऽपिशुशोचैनां शमिकां निजकन्यकाम् ।
तावुभौ परिचिन्त्यैवं नैभेदो भक्त देवयोः ॥ ५० ॥
गणेशं परिराध्यैव मोचयाव इमावधात् ।

॥ सूत उवाच ॥

एवं तौनिश्चयं कृत्वा तपसे कृतमानसौ ।
तस्थिवांसौ चलनैव यत्र तौ वृक्षतां गतौ ॥ ५१ ॥

किया है और शमी के वृक्ष को शमी ने प्राप्त किया ये हैं । ४४, ४५, ४६, ४७ । औरव मुनी और शौनक मुनी सोचने लगे कि धौम्य मुनि के पुत्र पढ़ने के लिये आये थे और समस्त विद्या को अध्ययन करने पर भी किस प्रकार से वृक्षत्व योनि को प्राप्त किये और उनके पिता सुनेंगे तो इस शाप से प्राण वियोग कर देंगे या मुझे पूछेंगे तो मैं क्या कहूंगा ? । ४८, ४९ । औरव मुनि भी अपनी कन्या शमीके लिये चिन्ता कर दोनों ने विचार किया कि गणेश भगवान् की आराधना कर इन दोनों को इस शापसे मुक्त करूंगा; क्योंकि भक्त और देव में कोई भेद नहीं है । ५० । सूत जी बोले कि हे मुनी

भृगुरुवाच ।

ततः कतिपयैवर्षै भूधरे निकटे नृप ।
जितेन्द्रियावूर्द्ध्वदृष्टी निराहारौ दृढव्रतौ ॥१॥
एकाङ्गुष्ठस्थितौ कुर्व्या तोषयामासतुर्मुदा ।
ततस्तौ कृपयाविष्टौ ते पाते परमं तपः ॥२॥
षडक्षरेण मन्त्रेण देवदेवं विनायकम् ।
एवं द्वादश वर्षाणि चेरतुस्तप उत्तमम् ॥३॥
औरवः कन्यकार्थञ्च शिष्यार्थं शौनकोऽपि च ।
ततस्तुष्टः पाशपाणिदृष्ट्वा क्लेशंतथातयोः ॥४॥
आविरासीन्महातेजा दशबाहुर्विनायकः ।
प्रसन्नस्ता बुवाचेदं वरदो गणनायकः ॥५॥

इस प्रकार से दोनों विचार कर जहां मन्दार और शमी ने वृक्षत्व को प्राप्त किया था वहींपर तपस्या करने के लिये निश्चय किया ॥२६ । इति श्रीस्कन्दादि महापुराणे गणपति कल्पे सूतशौनकसम्वादे मन्दारमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ।

टीका:—भृगुजी बोले, हे राजन् बहुत वर्षोंतक उस पर्वत केनिकट जितेन्द्रिय वो ऊर्ध्व दृष्टि हो तथा निराहार व्रत में नि एक अंगुठपर खड़ा होकर तपस्यासे गणेशजी को प्रसन्न किया अनन्तर षडक्षर मन्त्र से देवताओं के देवता श्रीगणेशजी का पूजन किया । इस प्रकार से औरव मुनी अपनी लड़की के लिये और शौनक मुनी अपने शिष्य के लिये बारह व तक कठिन तपस्या किया ॥ १,२,३॥ उसके बाद पाशा हाथ लिये दश हाथ वाले अत्यन्त तेजस्वी गणेश भगवान् आये औ

॥ गणेशउवाच ॥

तुष्टोऽहंपरया भक्त्या तपसा परमेणच ।
अनया परया भक्त्या ब्राह्मणौ वृणुतम्वरम् ॥६॥

॥ तावुचतुः ॥

विश्वस्य बीजं परमस्य पाता नानाविधानन्दकरः स्वकानाम्
निजार्चने नाट्टतचोतसात्वं विघ्नप्रहर्त्ता गुरुकार्य्यकर्त्ता ॥७॥
परात्परस्त्वं परमार्थभूतो वेदान्तवेद्यो हृदयातिगोपी ॥
सर्वश्रुतीनांनवगोचरोऽसि नमाव इत्थं निजदैवतं त्वाम् ॥८॥
नपद्मयोनिर्नहरोहरिश्च रहिः षडास्योनसहस्त्रमूर्द्धा ॥
मायाविनस्तेनगिदुस्वरूपं कथंनुशक्यंपरिविच्छिन्नतन् ॥९॥

इन दोनों की कठिन तपस्या देख प्रसन्न होकर वर को देने वाले गणेशजी यह बात बोले ॥४,५॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ आप लोगों की यह परम कठिन तपस्या देख मैं प्रसन्न हूं और आप दोनों जो वर चाहते हैं सो मांगिये ॥६॥ अनन्तर वे दोनों बोले, विश्व के बीज, जगत् के पालन करने वाले, अपने भक्त को आनन्द देनेवाले, पूजन करने से प्रसन्न हो अनेकों प्रकार के विघ्नों को हरण करने वाले, कठिन कार्य्य करने वाले, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ परमार्थ करने वाले, सम्यग् वेदान्त को जानने वाले, संसार के रक्षक और श्रुतियों से भी अगोचर ऐसे इष्ट देवस्वरूप आप को हम दोनों नमस्कार करते हैं ॥७,८॥ हे भगवन् न तो ब्रह्माजी न शङ्करजी न विष्णु भगवान् न छ मुख वाले कार्त्तिकेयजी और न हजार मुखवाले

तवानुकम्पामहतोथदास्यात्रिभुञ्जतः कर्मशुभाशुभं स्वम् ।

कायेन वाचा मनसाप्रणम्य त्वां जीवन्मुक्तोनरउच्यतेसः ॥१०॥

त्वंभावतुष्टोविविधानिकामान्ददासि भक्ताय तथाखिलानाम् ।

संसृत्यकूपादविमुक्तिहेतुं गतोविभुंत्वांशरणं प्रपद्ये ॥११॥

॥ गणेशउवाच ॥

प्रसन्नोऽहं महाभाग युवयोर्भक्ति भावतः ।

वरं वृणुतमखिलं दास्येऽहंनात्र संशयः ॥१२॥

शेषजी भी अन्यत्र मायावी आपको और आपके स्वरूप को नहीं जान सकते हैं तब हम लोग ऐसे दुर्गम्य आप को कैसे पहचान सकते हैं ॥९॥ तब आप ही की बड़ी कृपा हो तो आप को जान सकता हैं क्योंकि आप व्यापक हैं और कर्म के शुभाशुभ स्वरूप हैं और ऐसे आपको शरीर, वचन, मन से प्रणाम करता हैं जो आप को प्रणाम करता है इस भाव से वह संसार में जीवन मुक्त कहलाता है ।१०। जिसके ऊपर आप प्रसन्न होते हैं उसको संसार में अनेक प्रकारकी कामना को देते हैं । जो आप का आश्रय लेता है उसको आप सांसारिक कार्य्य करते हुए संसार से मुक्त कर देते हैं । ऐसे मुक्त के हेतु व्यापक स्वरूप आप के शरणागत हुये हैं ।११। इस प्रकार स्तुति करने पर गणेशजी प्रसन्न होकर बोले, हे महाभाग आप दोनों के भक्ति भाव से मैं प्रसन्न हूं वर मांगिये । समस्त कामना को

कुजन्म नाशक मिदं ममस्तोत्रं पठेत्तु यः ।

त्रिसन्ध्यं च त्रिवारं च सर्वान् कामान वाप्नुयात् ॥१३॥

षण्मासात् जायते विद्या लक्ष्मीर्नित्य जपादपि ।

पञ्चवारं जपान्मर्त्यो ह्यायुरारोग्यमाप्नुयात् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा गणेश वाक्यन्ता वूचतुः परमा द्रुतौ ॥

तावूचतुः

और्वस्य सुतादेव शमिकानामतः शुभा ॥१५॥

मन्दाराय सुता दत्ता वेदशास्त्रार्थदर्शिने ।

शौनकस्य च शिष्याय धौम्यपुत्राय धीमते ॥१६॥

मैं दूंगा इसमें कोई संशय नहीं ।१२॥ और जो यह कुजन्म नाशक मेरा स्तोत्र तीनों सन्ध्या में तीन तीन बार कर पाठ करेगा वह समस्त कामना को लाभ करेगा ।१३। इसका छ महीना पाठ करने से विद्या लाभ होगा और रोज पढ़ने से लक्ष्मी प्राप्त होगी वा पांच बार पढ़ने से आरोग्य पूर्वक दीर्घायु होगा ।

टीका:—ब्रह्माजी व्यासजीसे कहते हैं, हे व्यासजी श्रीगणेशजी का वाक्य सुनकर वे दोनों परमानन्दित होकर बोलने लगे । मुनी बोले, हे देव और्व मुनिकी परमपवित्रा शमिका नाम-की कन्या वेदशास्त्रार्थपारग धौम्य मुनि के पुत्र शौनक मुनि के

उभौ प्रहसितौ देव दृष्ट्वा मार्गे भ्रुशुण्डिनम् ॥
स च मत्वा निजावज्ञां शशाप परया रुषा ॥१७॥
तच्छापा द्वृक्षौ तौ जातौ मन्दार शमिकाऽपिसा ॥
तयोश्च मातापितरौ शोचतोभृशदुःखितौ ॥१८॥
आवां च क्लेशितौ देव सर्वेषां नःप्रियं कुरु ॥
एतयोः कुजतां दूरीकुरु शीघ्रं गजानन ॥१९॥

श्रीगणेशउवाच ।

असम्भाव्य वरन्दास्ये कथञ्चिदपि कथंवृथा ॥
करिष्ये भक्तवचनं तस्मात्तुष्टो ब्रुवे वरम् ॥२०॥

शिष्य मन्दरनामको दिया गया ॥१५, १६॥ ये दोनों मार्गमें भ्रुशु ण्डी मुनिको देखकर हंसने लगे। मुनी भी अपना अपमानके कारणका रोषसे शाप दिया है ॥१७॥ उनका शापसे मन्दार मन्दा वृक्ष हो गया, शमी शमीवृक्ष हो गया। उन दोनोंके मातापिता अत्यन्त दुःखी हो शोच कर रहे हैं ॥१८॥ हम दोनों भी इन्हीं दोनों के लिये क्लेशित हैं। अतएव हे देव हम सबका क्लेश दूरकर इन दोनोंका भी शीघ्र कुजोनित्व दूर कीजिये ॥१९॥ श्रीगणेशजी बोले, हे ब्राह्मणों भक्तका वचन मैं कदापि व्यर्थ नहीं कर सकता। इसलिये प्रसन्न होकर असम्भव वर भी देता हूं ॥२०॥

यतोमन्दार वृक्षेण सेवितोऽयं नगोत्तमः ॥
अतोनामास्य मन्दारो भूधरस्य भविष्यति ॥२१॥
अद्य प्रभृति मन्दार मूलेस्थास्यामि निश्चले ॥
मृत्युलोके स्वर्गलोके मान्योऽयञ्च भविष्यति ॥२२॥
मन्दारमूले मन्मूर्तिं कृत्वा यः पूजयेन्नरः ॥
नालक्ष्मी नैव विघ्नानि नापमृत्युश्च जायते ॥२३॥

भृगुरुवाच

इत्युक्त्वा च गणाधीश स्तत्रैवान्तरधीयते ॥
तावुभौ कृतकार्य्यौच जग्मतुः स्वालयम्प्रति ॥२४॥
तदारभ्यैव तन्नाम मन्दारश्च महीपते ॥
नामविख्यात संसारे मान्योऽयं पर्वतोत्तमः ॥२५॥
यत्र योगेश्वरः साक्षाद्भगवान् मधुसूदनः ॥

टीका:—मन्दारवृक्षसे यह पर्वतश्रेष्ठ सेवित होने के कारण इसका नाम मन्दार होगा ॥२१॥ आजसे इस मन्दार पर्वतके निकट वास करूंगा और मृत्युलोक तथा स्वर्गलोकमें यह पर्वत माननीय होगा ॥२२॥ मन्दारपर्वतके निकटमें मेरी मुर्त्ति स्थापित कर जो कोई पूजन करेंगे उनको न दारिद्र्य, न किसी प्रकारका विघ्न न बाधा, और न अपमृत्यु होगी ॥२३॥ भृगु-मुनी बोले ॥ हे राजा सोमकान्त ऐसा श्रीगणेशजी कहकर वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गये। औरव तथा शौनक भी कृतकृत्य हो अपने आश्रमको गये ॥२४॥ हे राजा उसी दिनसे इसपर्वतका संसारमें मन्दार नाम पड़ा और उसका नाम

निवासाय स्वयंस्थानं कृतवान् सात्वतांपतिः ॥२६॥
अहोऽति भारतेवर्षे क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ॥
मन्दार भुवि विख्यातं यत्र सन्निहितो हरिः ॥२७॥
यद्गत्वा पूजनाद्विष्णोः सिद्धिं समधि गच्छति ॥
तत्र कादुलभा मुक्तिं विद्यमाने जनार्दने ॥२८॥
इत्येतत्कथितं राजन् मन्दारोऽस्य यथा भवत् ॥
नाम विख्यात संसारे भूधरस्य नृपोत्तम ॥२९॥
य इदं श्रूयतेऽध्यायं श्रावयेद्वापि भक्तितः ॥
सर्वान् कामान् वाप्नोति चान्ते गाणपतं व्रजेत् ॥३०॥

संसार भरमें विख्यात हुआ ॥२५॥ यहांपर योगेश्वर श्रीमधुसूदन भगवान् ने निवासके लिये स्वयंस्थान बनाया है ॥२६॥ अहो अन्य यह भारतवर्ष है जहां पर क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र संसारविख्यात श्री मन्दार क्षेत्र है यहां पर श्रीमधुसूदन भगवान नित्य वास करते हैं ॥२७॥ जहां जाकर विष्णु की पूजा द्वारा मनुष्य सिद्धिको प्राप्त करता है वहां जनार्दन के रहते मुक्ति होना कोई दुर्लभ नहीं है ॥२८॥ हे राजा जिस प्रकार मन्दार नाम का पर्वत संसार में विख्यात हुआ सो कहें ॥२९॥ इसअध्याय को जो सुनेगा अथवा सुनावेगा वह सब कामना को प्राप्त करेगा और गणेश लोक जायगा ॥३०॥

इतिश्रीमन्दार माहात्म्ये सोम कान्त भृगु सम्वादे चतुर्थोऽध्यायः ।

परीक्षित उवाच ।

धन्योऽसि मुनिशार्दूल भक्तानां भक्तवत्सल ।
साश्चर्यमिदं माख्यातं चरित्रम् परमाद्भुतम् ॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि चरित्रम् परमात्मनः ।
मधुसूदनदेवस्य विस्तरेण मुखात्तव ॥२॥

कपिलदेव उवाच ।

साधु साधु महाराज यस्यते बुद्धि रीदृशी ।
कथयामि समासेन सेतिहासं पुरातनम् ॥३॥
ब्रह्मणा सह सम्वादं बादरायणि कस्य च ।
एकदा सुखमासीनं पद्मयोनिं प्रजापतिं ॥४॥
पप्रच्छ प्रणतोभूत्वा व्यासः सत्य वती सुत ।

व्यास उवाच ।

भगवन् सर्व तत्वज्ञ सृष्टि चक्र प्रवर्त्तकः ॥५॥

परीक्षित बोले । हे भक्तों के भक्त वत्सल ! हे मुनियों में श्रेष्ठ कहने के लिये, आप को धन्यवाद है । ऐसा आश्चर्य जनक और परम अद्भुत चरित्र ॥१॥ अब परमात्मा श्री मधुसूदन भगवान् का चरित्र विस्तार पूर्वक आपके मुँह से सुनना चाहता हूं सो कहिये ॥२॥ कपिलदेव जी बोले । हे महाराज धन्य है आपकी बुद्धि जो आपने ऐसा प्रश्न किया इस विषयमें मैं एक पुराना इतिहास विस्तार पूर्वक कहता हूं ॥३॥ जो ब्रह्मा जी ने व्यास से कहा था । एक समय ब्रह्मा जी सुख पूर्वक बैठे थे उस समय सत्यवती के पुत्र व्यास जी ने नम्र हो

श्रुतञ्च त्वन्मुखाम्भोजा न्माहात्म्यं विविधं महत् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं परमात्मनः ॥६॥
मधुसूदन देवस्य भुक्ति मुक्ति फल प्रदम् ।
कथं चात्रा गतः श्रीमान् भगवान् मधुसूदनः ॥७॥
किं कार्यं कृत वां श्चात्र देवदेवो रमा पतिः ।
कथं वा वालिशा क्षेत्रं सुप्रसिद्धं धरातले ॥८॥
भुक्ति-मुक्ति-प्रदानार्थं यत्र सन्निहितो हरिः ।
तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन् कथय स्वानु कम्पया ॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि कथा मेकाम्पुरातनीम् ।
यस्याः श्रवणमात्रेण नरः प्राप्नोति गौरवम् ॥१०॥

कर उनसे पूछा । व्यास जी बोले, हे भगवन् सब तत्व को जाननेवाले और सृष्टिचक्र के प्रवर्तक आप के मुख से मैंने अनेकों माहात्म्य सुने अब परम पवित्र और मुक्ति को देनेवाला श्री मधुसूदन भगवान् के माहात्म्य को सुनने की इच्छा करता हूं । कैसे मधुसूदन भगवान् यहां आये और कौन काम किये और किस प्रकार से वालिशा (बौंसा) क्षेत्र जिसके निकट मुक्ति मुक्ति को देनेवाले श्री भगवान हैं संसार में प्रसिद्ध हुआ सो सब विस्तार पूर्वक कृपया कहिये ॥४,५,६,७,८,९॥ ब्रह्मा जी बोले, हे व्यास, सुनिये इस के विषय में मैं एक पुराना इतिहास कहता हूं जिसके सुनने से मनुष्य श्रेष्ठता

मधवाख्यमसुरं हत्वा कैटभं च ततः परम् ।
तयोरुपरि संस्थाप्य पर्वतं सुमनोहरम् ॥११॥
मधोः शिरसि मन्दारो ज्येष्ठो गौरश्च कैटभे ।
स्थापयित्वा महाधीमन् स्वस्थो गात्कमला पतिः ॥१२॥

व्यास उवाच

कदा तौ च समुत्पन्नौ बलवन्तौ महासुरौ ।
मधुकैटभ नामानौ विख्यातौ भुवनत्रये ॥१३॥
कथन्तौ निहतौ वृत्यौ हरिणा कमलोद्भवः ।
तन्ममाचक्ष्व भगवन् विस्तरेणानुकम्पया ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

शृणुव्यास प्रवक्ष्यामि चरित्रम् परमात्मनः ।
मधुसूदन देवस्य भुक्ति मुक्ति प्रदायकम् ॥१५॥

को प्राप्त करता है ॥ १० ॥ मधु नाम के राक्षस को मार कर उसके बाद कैटभको मारा । उसके बाद सुन्दर और मनोहर मन्दार नामका पर्वत मधुके उपर और कैटभके उपर श्रेष्ठ गौर (जेठौर) पर्वत को रख कर हे धीमन् मधुसूदन भगवान् स्वस्थ हुये ॥१२॥ व्यास जी बोले । कब वे दोनों उत्पन्न हुए और तिनों लोक में विख्यात हुए ॥१३॥ और भगवान् के कमल से उत्पन्न वे दोनों राक्षस कैसे मारे गए यहसब विस्तार पूर्वक कृपा कर मुझे कहिये ॥१४॥ ब्रह्मा जी बोले, हे व्यास ! भोग और मुक्ति के देनेवाले श्री मधुसूदन भगवान् चरित्र मैं कहता हूं आप सुनिये ।

कदाचिद्दैव योगेन प्रलये समुपस्थिते ।
वायुभिः पर्वता भिन्नाः पतिताः परितोदिशम् ॥१६॥
तपन्ति द्वादशादित्याः शोषयित्वा जलं महत् ।
ज्वाला मालां महावह्नि रखिलं ज्वलयत्यपि ॥१७॥
संवर्तका महामेघा वर्षन्ति परितोदिशम् ।
हस्ति हस्तोपमाभिस्तु धाराभिर्द्विजसत्तम ॥१८॥
उल्लङ्घयन्ति मर्य्यादां सागराः सरितोऽपि च ।
एवं सर्वं विनश्यन्ति आब्रह्मस्थावरादयः ॥१९॥
तदाजल मये सर्वं तमसा वेष्टितं जगत् ।
न चराचर जीवाश्च तिष्ठन्तितस्म कर्वाचिज्जले ॥२०॥
न दिवा नच वैरात्रि र्न दिशाश्च प्रकाशते ।
न सूर्य्यो भासते व्योम्नि नशशाङ्कः प्रकाशते ॥२१॥

किसी समय दैवयोग से प्रलय जब उपस्थित होता
तब वायु से सभी पर्वत भिन्न होकर चारों तरफ गिरने लगते
हैं ॥१५।१६॥ और बारहों कलासे सूर्य्य महान् जलाशय को
सोख कर अपनी किरनरूपी अग्निसे संसारको जलाने लगते
॥१७॥ तब संवर्तक नाम का मेघ चारों ओर हाथी के सुण्ड
नाई बरसने लगता है और समुद्र भी अपनी मर्य्यादा को
छोड़कर संसारको डूबाडालता है इसी प्रकार से संसारमें प्रल
हो जाता है। ॥१८॥१९॥ तब जब संसार जल से वेष्टित हो
जाता है, उस समय जितने चरा चर जीव हैं कोई भी जल
नहीं रह सकते हैं और न दिन में सूर्य्य न रात में चन्द्रमा दिख

शेषशय्यां समाश्रित्य योगमाया समा वृतः ॥
प्रस्वापनीत्व जगन्नाथो लीलया मधुसूदनः ॥२२॥
एवं बहुतरे काले निद्रिते कमलापतौ ।
नाभे स्तस्य समुद्भूतं पङ्कजं सुमनो हरम् ॥२३॥
शतयोजन विस्तीर्णं तरुणार्क शिशुप्रभम् ॥
सहस्र दल सम्पन्नं तत्राद्भुत मनो हरम् ॥२४॥
डिण्डिमं चाभवत्तत्र भासयानं चतुर्दिशम् ॥
तस्मा ज्जातोऽस्म्यहं वत्स ! चतुर्मुख समन्वितः ॥२५॥
कोटि कन्दर्प लावण्यं कोटिचन्द्र समप्रभम् ॥
एक नेत्रश्च एकास्यो भासयञ्जगतीतले ॥२६॥

पड़ते हैं। न दिन रहता है और न रात रहती है ॥२०॥२१॥
शेषशय्या पर योगमाया से युक्त लीला पूर्वक जगत्का
स्वामी श्री मधुसूदन् देव शयन कर गये ॥२२॥ इस प्रकार
श्री मधुसूदनदेव जी के शयन करने के बाद बहुत समय बीत
जाने पर श्रीभगवान के नाभी से एक मनोहर कमल
उत्पन्न हुआ ॥२३॥ हजार दलवाला उदय कालिक हजार
सूर्य्य सदृश कान्तिमान कमलमें चारोंदिशा को प्रकाश
करता हुआ एक डिण्डिम उत्पन्न हुआ ॥ उससे चार मुख
से युक्त कोटि कन्दर्प सदृश सौन्दर्य कोटिचन्द्र सदृश
प्रकाशमान एक नेत्र तथा एकमुख द्वारा तीनों लोक को प्रकाश
करता हुआ मेरा जन्म हुआ ॥ २४॥२५॥ तब मैं जगतको
जलमय देख चिन्ता से व्याकुल हो कौन मेरा उत्पन्न करने

कोऽहं चिन्तातुरो भूत्वा दृष्ट्वा जलमयञ्जगत् ॥
पश्याम्यहं मृणालञ्च कोऽस्मानुत्पादको विभुः ॥२७॥
कोऽहं कुत इतिध्यायन् अदृष्ट्वा तत्कजाश्रयम् ॥
नालप्रविश्याधोभागं तन्मूलञ्च विचिन्वतः ॥२८॥
सम्वत्सरशतं जातं तस्य नान्तं लभामहे ॥
ऊर्ध्वं पुनरुपेत्याथ श्रान्तोऽहं निषसाद च ॥२९॥
अदृश्य मूर्तिर्भगवानूचे तप तपेति च ॥
तच्छ्रुत्वा तत्प्रकारं मदृष्ट्वा तत्कलेवरम् ॥३०॥
गुरूपदिष्टं तप्तोयं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे धीमन् यज्जातञ्च महामते ॥३१॥

वाला है ऐसा विचार कर कमल की डण्डी देखी ॥२६,२७॥ मैं कौन हूं और कहां से आया हूं ऐसा ध्यान करते २ नालके नीचे उस को, ढूंढ़ता हुआ गया ॥२८॥ इस प्रकार ढूंढ़ते २ सौ वर्ष बीत गये पर नाल का अन्त न पाया फिरव फिर ऊपर आकर श्रान्त हो कर बैठगया ॥२९॥ अनन्तर अव्यक्तरूपी भगवान बोले, तपस्या करो २ ऐसा शब्द सुनकर और उन को अव्यक्त देख गुरु का उपदेश मान उस शब्द को तपस्या करने लगा ॥३०॥ ऐसा करते करते हजार वर्ष जब बीत गये ॥ तब हे धीमन्! इसके बीचमें जो आश्चर्यजनक घटना भई सो मैं आप से कहता हूं, आप सुनिये ॥३१॥ जब भगवान अनन्त नाग पर शयन कर

तच्छृणुष्व महाबाहो महदाश्चर्यकारकम् ॥
शेषेऽनन्ताशने विष्णुः शयमाने जगत्त्रये ॥३२॥
कर्णाभ्यां निस्सृतन् तस्य मलपुञ्जं सुविस्तरम् ॥
तस्माज्जातौ महादैत्यौ पर्वताकाररूपिणौ ॥३३॥
मधुकैटभनामानौ प्राणिनां भयवर्द्धनौ ॥
रक्तास्यौ रक्तनेत्रौ च रक्तस्मश्रु कलेवरौ ॥३४॥
तत्र दृष्ट्वा तपस्यन्तं स्वर्णसिंहासनेस्थितम् ॥
मां समीक्ष्य महाबाहो साश्चर्यौ दैत्यपुङ्गवौ ॥३५॥
पृच्छन्तौ महादैत्यौ को भवान् तपसि स्थितः ॥
कस्मात्समागतश्चात्र पङ्कजे सुमनोहरे ॥३६॥
किङ्कार्यं वर्त्तते चात्र कथञ्च तपसिस्थितः ॥
सर्वं कथय मे ब्रह्मन् न विलम्बेन मानद ॥३७॥

...री, जगत् सुप्त प्राय हो गया तब श्रीविष्णु भगवान् के दोनों ...नोंसे बड़ा विस्तार मल का पुञ्ज निकला। इससे पर्वताकार ...दैत्य मधुकैटभ नामके उत्पन्न हुए ॥३२॥३३॥ ये प्राणी को ... देनेवाले रक्तमुख, लाल आँखें लाल शरीरवाले ...॥३४॥ हे महाबाहो! तब सोने के कमल पर तपस्या ...ते हुए हमको देख के मधुकैटभ नाम के दैत्य का राजा ...आश्चर्यान्वित हो गया ॥३५॥ और पूछने लगे तपस्यामें स्थित ...आप कौन हैं और कहांसे सुन्दर कमलमें उत्पन्न हुये। ...॥३६॥ और किस कारण तपस्यामें स्थित हैं सो सब शीघ्र हमें ...कहिये ॥३७॥

तौ दृष्ट्वा अथ मामन्न तप्यमानस्तपस्यथा ॥
भयोद्विग्नमनाश्चैवं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३८ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

न जानामि महाराज कोऽहं कस्मात्समागतः ॥
तमेवध्याय मानोऽहं किं कृत्यं वर्त्तते मया ॥ ३९ ॥
तच्छ्रुत्वा क्रोधमापन्नौ मां हन्तुं समुपस्थितौ ॥
कराल विकरौ दैत्यौ रक्तास्यौ रक्तलोचनौ ॥ ४० ॥
तौ तथा विकरालास्यौ दृष्ट्वा त्रस्तोऽस्मि धीमते ॥
प्रतिकारमपश्यन्तु तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥ ४१ ॥

इन दोनों को देख तपस्या से खिन्न गात्र भयसे व्याकुल ह
उत्तर देने लगे ॥३८॥ ब्रह्मा बोले। हे महाराज
मैं कौन हूँ और कहांसे आया हूं इसका ध्यान क
रहा हूं मेरा क्या कर्त्तव्य है सो कहिये ॥ ३९ ऐसा सुनकर क्रो
से युक्त होकर विकराल मुख तथा नेत्र कर हम को मारने के लि
उपस्थित हो गया ॥४०॥ हे धीमन्? इनको अत्यन्त भयङ्कर दे
उपाय शून्य भयभीत होकर जगदम्बा की स्तुति करने लगे ॥४
इति श्रीस्कन्दादिमहापुराणान्तर्गत सूत शौनक सम्वादात्म
मन्दार मधुसूदन महात्म्यका पञ्चम अध्यायसमाप्त हुआ ॥५

ब्रह्मोवाच

जयदेवि महामाये जय भक्तार्त्ति नाशिनि ॥
जयविष्णु प्रियेदेवि योगमाये नमोऽस्तुते ॥ १ ॥
जय विश्व समुत्पत्तौ बीजभूते सनातनी ॥
पालिनी सर्व देवानां नाशिनी देव विद्विषाम् ॥ २ ॥
स्वाहा स्वधारूप धरासुधात्व मार्द्धमात्रा स्वर रूपिणीच ॥
कर्त्रीच हर्त्री जननीजनस्य सतोऽसतः शक्तिरसित्वमेव ॥३॥
श्रुतिः स्वरा कालरात्रि रनादि निधन प्रभा ॥
जगन्माता जगद्धात्री सृष्टिस्थित्यन्त कारिणी ॥ ४ ॥
सावित्री च तथासन्ध्या महामाया नृपा क्षुधा ॥
सर्वेषां वस्तुजातानां शक्तिस्त्वमसि पार्वती ॥ ५ ॥

ब्रह्माजीबोले हे देवि हे महामाये हे भक्तोंके दुःख नाश करनेवाली
विष्णु प्रिये हे योगमाये आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १॥
हे संसार की उत्पत्ति करने वाली सनातन बीजस्वरूप देवतालोगों
को पालन करनेवाली तथा देवशत्रु को नाश करने वाली आपकी
जय हो ॥२॥ आपही यज्ञादिकमें स्वहा रूप धारण करती हैं।
तथा पितृकार्य्यमें स्वधा रूप धारण करती हैं आपही अमृत
रूपा हो मात्रा अर्द्धमात्रा स्वरूपा आपही हो आपही प्राणीगण
की उत्पत्ति तथा नाश करनेवाली हैं तथा शक्तिस्वरूपा
हैं आपही सत् तथा असत्स्वरूपा हो ॥३॥ श्रुतिस्वरूपा
कालरात्रि अनादि निधन अन्धकाररूपा जगतकी माता तथा
धात्री सृष्टि स्थिति तथा अन्तकरनेवाली आपही हैं ॥ ४ ॥

त्रैलोक्य कर्त्ताप्यनाथो दैत्य दानव सूदनः ॥
निद्रया व्याप्तचित्तोऽसौ ज्ञान विज्ञानवान् हरिः ॥६॥
जगदुत्पाद्यते येन पाल्यते ह्रियतेऽपि च ॥
सोऽपित्वया वशान्नीतः कस्त्वांस्तोतु मिहेश्वरः ॥७॥
दुष्टात्मानौमोह यैतौ त्वं दैत्यौ मधुकैटभौ ॥
हन्तुमेतौ दुराधर्षौ ज्ञनमस्य प्रदीयताम् ॥८॥
बहमाराधितस्ताभ्यां पूर्वजन्मन्यतन्द्रितः ॥
वरान् बहुविधान्प्राप्ता मवध्यौ मम तावुभौ ॥९॥
तयोरुक्त्वा वचान् शब्दानतोऽहमसहन् बहु ॥
मामेव हन्तुकामौतौ स्तुतौ नानाविधैस्तवैः ॥१०॥

सावित्री तथा सन्ध्या महामाया तृषा क्षुधा तथा संसारमें जितने पदार्थ हैं उनमें शक्तिरूपा आपही हैं ॥५॥ जो जगत्की उत्पत्ति तथा पालन और नाश भी करा सकते हैं वह भी आपके वशीभूत हैं ऐसे आपकी स्तुति करनेमें कौनसमर्थ हो सकता है ॥७॥ यह दुष्टात्मा दुराधर्ष मधुकैटभ नाम दैत्योंको मोहन द्वारा उसके नाशार्थ भगवान को चैतन्य कराइये ॥८॥ पूर्वकल्पमें ये दोनों दैत्योंने मेरा बहुत आराधना की थी तथा मैंने भी उनदोनोंको बहुतप्रकारके वर प्रदान किये थे इसी कारणसे ये दोनों हमसे अवध्य हैं ॥९॥ इसी कारणसे हम इनदोनोंकी बहुत प्रकारकी दुःख द बातें सहन करता हूं तथा अनेकप्रकारकी स्तुति करनेपर भी ये दोनों मुझे ही मारना चाहते हैं ॥१०॥

तथापि मद्वधायैव न निवृत्तो दुरभावतः ॥
अतस्त्वां प्रार्थये देवि विष्णु बोधन हेतवे ॥ ११ ॥
॥ सूतउवाच ॥
इति स्तुत्वा तथा देवी वैष्णवी भक्तवत्सला ॥
प्रसन्नस्तमुवाचेदं ब्रह्माणं जगदम्बिका ॥ १२॥
देव्युवाच
प्रसन्नाहं महाभाग स्तुत्या ते कमलोद्भव ॥
वरंब्रूहि भद्रन्ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ १३ ॥
ये स्तुवन्ति त्वयोक्तश्च स्तोत्रम्परम दुर्लभम् ॥
तेभ्यश्चामुष्मिकं सर्वं कामं दास्यामि सुव्रत ॥ १४ ॥
नैव संकष्ट माप्नोति संसारेऽस्मिन्महार्णवे ॥
अन्ते मुक्तिम्प्रदास्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥

हे देवि इसीलिये विष्णुभगवान् का चैतन्य करानेके लिये आप की स्तुति करता हूं ॥११॥ सूतजी बोले इस प्रकार ब्रह्माजीकी स्तुति सुनकर महामाया प्रसन्न हो कर ब्रह्माजीके प्रति बोले ॥१२॥

टीकाः—देवी बोले हे महाभाग आप की स्तुति से मैं प्रसन्न हूं मन वाञ्छित फल आप मांगिये ॥१३॥ और आप से कि हुइ जो स्तुति उसको जो नित्य पाठ करेंगे उस का सांसारिक समस्त कामना पूर्त्ति करूंगी ॥१४॥ और वह संसार रूपी समुद्र मैं कदापि संकष्ट को नहीं प्राप्त करेगा ॥ अन्त में मुक्ति भी दूंगा इस में विचारने का काम नहीं है ॥१५॥

किमुक्तेन बहुनोक्तेन स्तोत्रेणानेन पद्मज ॥
यं यं कामयते कामं तत्सर्वं प्रददाम्यहम् ॥ १६ ॥

सूत उवाच

एवं ब्रह्माण माश्वास्य पुनरुवाच सुरेश्वरी ॥
बोधयामि जगन्नाथं न चिन्ताकुरु महर्षि ॥ १७ ॥
इत्युक्त्वा च जगद्धात्री पद्मनाभं सुरेश्वरम् ॥
बोधयामास विप्रर्षे जगत्त्रय हितैषिणी ॥ १८ ॥
नेत्रास्य नासिका बाहु हृदयेभ्यस्तथोरसः ॥
निर्गत्य च महामाया विष्णु बोधन हेतवे ॥ १९ ॥

योगनिद्रोवाच

उत्तिष्ठ जगन्नाधार रक्ष ब्रह्माणमव्यय ॥
तेनाहं बोधितापूर्वं मया त्वमपि बोधितः ॥ २० ॥

विशेष मैं क्या कहूं जिस २ कामना की इच्छा करेगा तो सब इस स्तोत्र से प्राप्त होगा ॥१६॥ सूतजी बोले हे शौनक इस प्रकार जगदम्बा ब्रह्माजी का आश्वासन कर फीर बोली मैं जन्नाथ को चैतन्य कराती हुँ आप चिन्ता न करें ॥१७॥ हे विप्रर्षे शौनक इस प्रकार जगद्धात्री कहकर तीनों लोक का हित करणे वाली योग निद्रा पद्मनाभ श्री विष्णु भगवान को चैतन्य कराई ॥१८॥ नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय, जङ्घा इत्यादि से श्रीविष्णु भगवान को जगाने के लिये अलग हो गई ॥१९॥
योग निद्राबोली हे जगत् के आधार हे विकार रहित

उत्तस्थौ च महाविष्णुस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥
एकार्णवेहि शयनात् ततस्तौ ददृशे विभुः ॥ २१ ॥
मधुकैटभौ दुरात्मानौ हन्तुमब्रह्माण मुद्यतौ ॥
उत्थाय च ततो विष्णुस्ताभ्यां युद्धं चकारह ॥ २२ ॥
निहत्य च दुरात्मानौ ब्रह्मणोऽभयमन्वदौ ॥

परीक्षित उवाच

भगवन् ? त्वया ख्यातं चरित्रम्परमात्मनः ॥
भगवत्या महाविष्णु र्यथा चैतन्यमाप्नुयात् ॥ २३ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि सिद्धार्चित पदाम्बुज ॥
मधुसूदन देवस्य चरित्र मविशेषतः ॥ २४ ॥

आप उठिये औ ब्रह्म देव की रक्षा कीजिये उन से मैं चैतन्य कराई गई और हम से आप पिछे जगाये गये हैं ॥२०॥ अनन्तर जगदम्बासे चैतन्य प्राप्त करनेपर श्रीविष्णु भगवान् सज्जासे उठे और जल मय संसार में मधुकैटभ नाम का दैत्यको ब्रह्माजी को मारणे में उद्यत देखा ॥२१॥ अनन्तर श्रीविष्णुभगवान सज्जासे उठकर मधुकैटभ के साथ युद्ध कर उन दोनों को मार श्री ब्रह्माजी को अभय दान दीये ॥२२॥

राजापरीक्षित बोले हे भगवन् आपने जो परमात्मा श्रीविष्णु भगवान् का चरित्र कहा तथा जगदम्बाजी से श्री विष्णु भगवान् चैतन्य प्राप्त कीये सो सब मैं सुना ॥२३॥ हे सिद्ध गणोंसे सेवित पादपद्म वाले सम्प्रति श्रीमधुसूदनदेवजी का विशेष रुपसे चरित्र सुनने की इच्छा करता हुं ॥२४॥

यावदुत्तिष्ठते देवो भगवान् कमला पतिः ।
तावत्ताभ्यां कृतंयच्च चरित्रं तन्मया मुने ॥२५॥
कथयस्व कृपासिन्धो परङ्कौतूहलम्मम ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युप पद्यते ॥२६॥

सूत उवाच

इतिराज्ञोवचः श्रुत्वा महात्मा कपिलोमुनिः ।
सानन्दः कथयामास नृपं भागवतोत्तमम् ॥२७॥

श्रीकपिलदेव उवाच ॥

साधु साधु महाबाहो नृप चूड़ामणि भवान् ।
नास्ति त्वत्सदृशो लोके भगवद्भक्तिरुत्तमा ॥२८॥
इदमेव पुरा पृष्टं व्यासेन कमलोद्भवम् ।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु पाण्डव नन्दन ॥२९॥

जब तक लक्ष्मीपति श्रीविष्णु भगवान् उठे तब तक मैं वे दोनों जो किया सो सब कहिये हमें सुनने की परम उत्कन्ठा है आप से बढ़ कर संशय छेदन करने वाला दूसरा नहीं है ॥२५॥२६॥ सूतजी बोले हे शौनक इस प्रकार राजा परीक्षित का वचन सुन कर महात्मा कपिल देव जी भगवद् भक्त श्रीपरीक्षित से आनन्द पूर्वक कहने लगे ॥२७॥ कपिल मुनि बोले हे महाबाहो हे राजाओं के चूड़ामणि आप धन्य हैं आपकी भक्ति सर्व-श्रेष्ठ है ॥२८॥ हे पाण्डुनन्दन यही बात पहिले श्रीवेदव्यास जी ने ब्रह्मा जी से पूछी थी वह मैं आप से कहता हूं ॥२९॥

वेदव्यास उवाच

त्वया च कथितं ब्रह्मन् चोद्भवं दैत्यराजयोः ।
भगवत्या यथाविष्णु श्चैतन्यं लब्धवान् पुनः ॥३०॥
यावदुत्तिष्ठते देवो भगवान् गरुडध्वजः ।
ताव त्ताभ्यां कृतञ्च तन्ममाचक्ष्व साम्प्रतम् ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि चरित्रं दैत्यराजयोः ।
कृतञ्चच्च महा बाहो सावधान मनाभव ॥३२॥
यावदुत्तिष्ठते देवो भगवान् मधुसूदनः ॥
ताव त्ताभ्यां वशीभूतं त्रिविष्टप मकल्मषम् ॥३३॥
आक्रान्त मिन्द्र सदनं याम्यं कौबेर मेवच ॥
तौदृष्ट्वा सर्व तो देवाः पलायन पराङ्मुः ॥३४॥

वेदव्यासजी बोले ॥ हे ब्रह्माजी आपने दैत्य राज श्रीमधुकैटभ की उत्पत्ति कही और भगवती श्री योगमाया जी से जिस प्रकार श्री विष्णु भगवान्ने चैतन्य पाया सो भी आपने कहा ॥३०॥ सम्प्रति वह वृतान्त कहिये जबतक भगवान् उठे तबतक उन दोनों ने क्या किया ॥३१॥ ब्रह्माजी बोले हे व्यासजी जबतकमे श्रीविष्णु भगवान् उठे तबतक उन दोनों विशुद्ध स्वर्गको वशीभूत करलिया ॥३२॥३३॥ इन्द्रकी अमरावती यमराजकी संयमनी कुबेरकी अलकापुरी इत्यादि समस्तदेवगणोंका स्थान आक्रमण करलिया। उनदोनोंको देख

निपेतु र्गमसु: केचिन्मुमुक्षुश्च इस्ततः परे ॥
ततोऽद्यैव विनिर्मुक्तौ निद्रया हरिरीश्वरः ॥३५॥
आश्वास्य सर्वदेवांश्च ताभ्यांयुद्धं चकारह ॥
आक्रमं सर्वदेवानां कृतं ताभ्यां निवारितम् ॥३६॥
इति संक्षेपतो व्यास चरित्रन् दैत्यराजयोः ॥
कथितन्ते मया साधो किमन्यच्छ्रोतु मिच्छसि ॥३७॥

देवतालोक इधर उधर भागनेलगे ॥३४॥ कोई इधर गिरनेलगे कोई भयसे घूमने लगे कितने मूर्च्छित होनेलगे अनन्तर देवोंसे श्रीविष्णु भगवान् चैतन्य प्राप्तकरनेपर। समस्तदेवगणोंको आश्वास न देकर उनदोनोंके साथ युद्धकिया। उन दोनोंके आक्रान्त देवगणोंका स्थान छोड़ाया ॥३६॥ ब्रह्माजी वेद व्यासजीको कहने लगे हे वेदव्यास यह मै संक्षेप रूपसे दैत्यराजोंका चरित्र कहा सम्प्रति क्या सुनने की इच्छा करते हैं ॥३५॥३६॥३७॥ इतिश्रीमन्दारमधुसूदन माहात्म्य का छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥६॥

व्यास उवाच

कथयत्व पुनर्ब्रह्मन् यथा ताभ्यां महाप्रभुः ॥
युद्धञ्च कृतवान् विष्णु स्तत्सर्वं चाविशेषतः ॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि यथा ताभ्यां महाप्रभुः ॥
युद्धञ्च कृतवान् साधो महदाश्चर्य्य कारकम् ॥२॥
यदा देव्या च चैतन्यं लब्धवान् परमेश्वरः ॥
तदा जलमयं सर्वं दृष्टवान् कमलापतिः ॥३॥
ततो घोरतरौ दैत्यौ कर्त्तुं खादितु मुत्सुकौ ॥
मधुकैटभ नामानौ प्राणिनाशभय वर्द्धनौ ॥४॥
दृष्ट्वा विष्णुस्ततो व्यास युद्धाय कृत निश्चयः ॥
बध्वा परिकरं साधो भगवान् भक्तवत्सलः ॥५॥

व्यासजी बोले ॥ ब्रह्मन् जिस प्रकार मधुकैटभके साथ श्रीविष्णु भगवान् युद्ध किया सो सविस्तर फिरसे कहिये ॥१॥ ब्रह्माजी बोले हे व्यासजी जिसप्रकार मधुकैटभके साथ श्रीविष्णु भगवान् युद्ध किया सो सविस्तर तथा महाश्चर्य्यजनक कथा मैं कहता हूं आप सुनिये ॥२॥ जब योगमायासे कमलापति श्रीविष्णु भगवान्ने चैतन्यको प्राप्तकिया तब संसार को जलमय देखा ॥३॥ अनन्तर महाभयङ्कर ब्रह्माजीको मारनेकेलिये उद्यत मधुकैटभ नामका दैत्यको देखा ॥४॥ हे व्यासजी उन दोनों को देख परिकर बान्धकर युद्ध करनेके लिये उन दोनों के साथ निश्चय किया ॥५॥ चिकनाके फूलके ऐसा कान्ति

अतसी पुष्पसंकाशः शंख चक्र गदाधरः ॥
किरीट कुण्डलधरो नीलमेघ घनच्छविः ॥६॥
कौस्तुभोद्भासितं चारुवनमाला विभूषितम् ॥
श्रीवत्सपद वक्षस्थं पीताम्बरधरंशुभम् ॥७॥
ततः स भगवान् शंखं प्रवद्मौ भृशदुःखितः ॥
तेन शब्देन महता क्षोभयामास रोदसी ॥८॥
पाञ्चजन्य स्वनं श्रुत्वा विभेद हृदयन्तयोः ॥
ततस्तौ भयमापन्नौ परस्परमथोचतुः ॥९॥
भू मण्डलञ्च पातालं स्वर्गाणा मेकविंशतिः ॥
आक्रान्ता सम्यगावाभ्यां तदार्यं न श्रुतः स्वनः ॥१०॥
वज्रसारमयं येन चकम्पे हृदयन्तयोः ॥
तस्मादनेनयोद्धव्यं पुरुषेण बलीयसा ॥११॥

मान्, शंख चक्र गदा पद्मको धारण किये हुये, तथा किरीट कुण्डलधारी मेघके ऐसा श्यामवर्ण दिखलाई पड़ने लगे ॥६॥ कौस्तुभमणिसे शोभित समस्तशरीर वनमालासे भूषित वक्षस्थलमें श्रीवत्सपदसे शोभित सुन्दर पीताम्बरधारणकिये हुये ॥७॥ अनन्तर श्रीविष्णुभगवान ने बारम्बार शंखको बजाया शंखका महान् शब्द से आकाश ढक गया ॥८॥ पाञ्चजन्य शंखका शब्द सुनकर मधुकैटभ का हृदय फटगया। अनन्तर भयभीत होकर परस्पर बोलने लगा ॥९॥ भूमण्डल, पाताल, इक्कीस स्वर्गका हमदोनों आक्रमण किया परऐसा शब्द तो कभी न सुना ॥१०॥ वज्रसा ऐसा शब्द जिसने हम दोनों का

रण कण्डुति शान्त्यर्थं विजयायेतरस्य च ॥
रिपुमेनं हनिष्यावो गच्छावोवा पुनर्भवम् ॥१२॥
एवं तौ निश्चयं कृत्वा युयुत्सु हरि मूचतुः ॥
रण कण्डूति शान्त्यर्थं दृष्टोऽसि पुरुषोत्तमः ॥१३॥
कथमुत्तम तां यासि आवयो र्दृष्टि गोचरे ॥
आवाभ्यां सह युद्धञ्च क्रियतां यदि रोचते ॥१४॥
नोचेत् स्थलान्तरं गच्छ ह्यावयो र्दृष्टि गोचरात् ॥

मुनिरुवाच

इति वाक्यं तयोः श्रुत्वा जगाद विष्वरश्रवा ॥१५॥

हृदयको कम्पायमान कर दिया ऐसा बली पुरुषके साथ अवश्य युद्ध करना चाहिये ॥११॥ युद्धसंघर्षण शान्त्यर्थ और शत्रु विजयार्थ इसशत्रुको हमदोनों मारेंगे अथवा फिर संसारमें जन्म लेंगे ॥१२॥ इसप्रकार वे दोनों निश्चयकर युद्धकी इच्छासे श्रीविष्णु भगवान्के प्रतिबोले हे पुरुषोतम संग्रामकण्डुति शान्तिकेलिये आप हम लोगोंसे देखे गये ॥१३॥ क्यों ऐसा सुन्दर होकर हम लोगों के समक्ष दृष्टि गोचर हुए यदि आप की इच्छा हो ? तो हम दोनों के साथ युद्ध किजीये ॥१४॥ नहीं तो हम लोगोंके दृष्टिगोचर से इस स्थान को छोड़ कर दूसरे जगह जाइये ॥ भृगु मुनि बोले ॥ हे सोमकान्त इस प्रकार उन दैत्यों का वाक्य सुन कर श्रीविष्णु भगवान् बोले ॥१५॥ हे दैत्यों आप दोनों अच्छा कहा। जितनी

हरिरुवाच ॥

सम्यगुक्तं महादैत्यौ यथेष्टं युध्य तन्मया ॥
नहि कामयते कश्चिन् मरणं स्वयमात्मनः ॥१६॥

तावूचतुः

चतुर्भुजोऽसि देवेश बाहुयुद्धं ददस्वनौ ॥

मुनिरुवाच ॥

एवमुक्तो हरिस्ताभ्यां तथेत्याह मुदान्वितः ॥१७॥
त्यक्त्वा युधानि युयुधे ताभ्यामेक श्चतुर्भुजः ॥
जघ्नतुस्तौ शिरोमूर्ध्नी जङ्घाभिरथ जङ्घयोः ॥१८॥
कूर्परैः कूर्परैः स्वांसौ बाहुभिश्चैव बाहुभिः ॥
गुल्फौ गुल्फैः कटी ताभ्यां नासिकाभ्यां च नासिकाम् ॥१९॥
मुष्टिभ्यां मुष्टिदेशश्च पृष्ठाभ्यां पृष्ठमेव च ॥
आस्फोटन विकर्षाभ्यां बाहुभि र्मण्डलैरपि ॥२०॥

शक्ति आप दोनों में है उतना ही मेरे साथ युद्ध करो। कोई भी प्राणी अपने से मरने की इच्छा नहीं करती है ॥ १६॥ वे दोनों बोले हे देवेश आप चतुर्भुज हैं हम दोनों के साथ बाहु युद्ध कीजिये ॥ मुनि बोले इस प्रकार उन दोनों से कहे जानेपर भगवान प्रसन्न होकर 'तथास्तु' ऐसा कहा ॥१७॥ समस्त अस्त्र शस्त्र को छोड़ कर अकेला ही उन दोनों के साथ युद्ध करने लगे ॥ वे दोनों शिर से शिर में जङ्घा से जङ्घा में पहुंचासे पहुंचों में बाहुसे-बाहुमे गुल्फसे गुल्फमें कटिसे कटिमें नासिका से नासिका में ॥१८ १९॥ मुष्टी से मुष्टीमें पृष्ठ से आघात

एवं बहु विधं युद्धं प्रावर्त्तत चिरन्तदा ॥
सहस्रं पञ्च वर्षाणि मति कान्तं महामुनेः ॥२१॥
वर्षाणां नतु तौ जेतुं शशाक हरिरीश्वरः ॥
ततो दधार रूपं स गान्धर्वं गीत कोविदम् ॥२२॥
गत्वा वनान्तरं चारु वीणा गानं चकार सः ॥
हरिणा श्वापदा लोका देवगन्धर्व राक्षसाः ॥२३॥
स्व स्व व्यापार रहिता सर्वे तत्पर तां ययुः ॥
आलापन्तस्य गिरिशः कैलाशे श्रुतवान् मुहुः ॥२४॥
निकुम्भ पुष्पदन्तौ च जगाद भगनेत्रहा ॥

शङ्कर उवाच

एतमानयतां शीघ्रं योऽसौ गायति कानने ॥२५॥

करने लगे आस्फोटन से तथा पैतरासे मण्डल करण युद्ध करने लगे ॥२०॥ इस तरह से बहुत प्रकार का युद्ध पांच हजार वर्ष तक होता रहा ॥२१॥ हे शौनक तब भगवान शान्त होकर गन्धर्व का रूप धारण कर निपुण गायक हो गये ॥२२॥ अनन्तर उस स्थान को छोड़ कर दूसरे जगह जा वीणा बजाने लगे तथा गाने लगे। तब श्री विष्णुभगवान् का परदल देख जितने देवगण, गन्धर्वगण, तथा राक्षस गणादिक ॥२३॥ अपना २ व्यापार छोड़ कर इन्हीं की ओर देखने लगे। तथा बलवान हुये। श्री विष्णुभगवान् के गीत का आलाप कैलाश में बारम्बार सुनने लगे ॥२४॥ निकुम्भ तथा पुष्प-

यस्य गीत ध्वनिं श्रुत्वा मुग्धोऽहं नात्र संशयः ॥

सूत उवाच

इति शम्भुमुखोद्‌ गीतं श्रुत्वा गन्धर्व नायकः ॥२६॥
प्रणम्य शङ्करमभक्त्या गत्वा यत्र स्थितो हरिः ॥
जगाद परम प्रीतो वाक्यं वाक्य विशारदः ॥२७॥
पुष्पदन्तो महाराज गन्धर्वो जगदीश्वरम् ॥

पुष्पदन्त उवाच

वन्देऽहं त्वां जगद्वन्द्य ? प्रेषितोऽस्मि शिवेनेह ॥२८॥
त्वद्गाने च महाराज परकौतूहलेन च ॥

दन्त को भगनेत्र को हनन करने वाले श्री शङ्करजी बोले, हे निकुम्भ तथा पुष्पदन्त इस वन में जो गाता है, जिस का गीत सुनकर मैं मुग्ध हूं उसे निश्चय शीघ्र बुलाओ ॥२५॥ सूतजी बोले हे शौनक श्री शङ्करजी का इस प्रकार आज्ञा पाकर श्री शङ्करजी को प्रणाम कर यहाँ पर गन्धर्व वेष-धारी श्री विष्णुभगवान् थे वहां जाकर परम प्रसन्न हो वाक्यों में विशारद श्री पुष्पदन्त नाम का गन्धर्व श्री विष्णु भगवान् के प्रति बोले ॥२६, २७॥ पुष्पदन्त बोले, हे गन्धर्वों नायक आप को मैं प्रणाम करता हूं आपके पास जगद्-वन्दनीय श्रीशङ्करजी से मैं पठाया हुआ हूं ॥ आप के गान से शङ्करजी बहुत प्रसन्न हैं ॥२८॥

तव गीतध्वनिं श्रुत्वा शंकरो हर्ष निर्भरः ॥२९॥
त्वां समाहूयते देवो गानं श्रोतु मिहागतः ॥
आवाभ्यां सह याहि त्वं शीघ्रं याम तदन्तिकम् ॥३०॥
तयो र्वाक्यमिति श्रुत्वा गन्धर्वो हरिभक्तिमान् ॥
ताभ्यां सह ययौ तत्र यत्र देवो महेश्वरः ॥३१॥
ददर्श पार्वतीकान्तं चन्द्रार्द्ध कृत शेखरम् ॥
गजचर्म्म परीधानं रुण्डमाला विभूषितम् ॥३२॥
राजत् पिङ्ग जटाभारं सर्प यज्ञोपवीतिनम् ॥
ननाम भुवि विश्वेशं प्रणतार्त्ति विनाशनम् ॥३३॥
उत्थाप्य गिरिशः स्वेन पाणिना तमधोक्षजम् ॥
आसनञ्च ददौ तस्मै पूजयामासशंकरः ॥३४॥
कुशलं पृष्टवान् साधो माधवं पार्वतीपतिः ॥

आपका गीतध्वनि सुनकर श्री शंङ्करभगवान हर्षसे निर्भर ... गीत सुनने के लिये आपको बुलाये हैं ॥२९॥ ॥ हम लोगों के साथ उन के पास आप शीघ्र चलिये ॥३०॥ उन दोनोंका वाक्य सुनकर भक्तमान् गन्धर्व रूपधारी श्रीविष्णुभगवान् उन दोनों के साथ वहाँ पर गये जहां श्री शङ्करभगवान् थे ॥३१॥ वहाँ पर गजचर्मको पहने हुए रुण्डमाला से भूषित अर्द्धच-न्द्रको मस्तकालङ्कार बनाये हुए पार्वतीकान्त श्री शङ्करजी को देखे ।३२॥ पीले जटा को धारण किये हुए सर्प का यज्ञोपवीत बनाये हुए प्रणतजन का क्लेशहरने वाले विश्व का मालिक श्री शङ्करजी को श्री विष्णुभगवान् प्रणाम किये ।३३। श्री शङ्कर-

ततो जगाद संहरि ह्य मे सफलं जनुः ॥३५॥
यतोऽद्य दर्शनं तेऽभूद्धर्म कामार्थ मोक्षदम् ॥
तोषयामास तं देवं गन्धर्वो गानतत्परम् ॥३६॥
वीणारवैः कलकलैरा लापै र्विविधैरपि ॥
स्कन्दं गणेश्वरं देवीं पार्वतीं च सुरानृषीन् ॥३७॥
मोहयामास गन्धर्वो भगवान् भक्तवत्सलः ॥
ततो महेश्वरः प्रीत्या ह्यालिङ्ग्य प्रकटं हरिम् ॥३८॥

जी भी दोनों हाथों से श्री विष्णुभगवान् को उठाकर हृद
यमें लगा, उनके लिये आसन दे पूजन किये ॥३४॥ अनन्त
माधव श्री विष्णुभगवान् को पार्वतीपति श्री शङ्करजी कुशल
पूछने लगे अनन्तर श्री विष्णु भगवान् शङ्करजीसे बोले
हे शङ्करजी आज मेरा जीवन सफल हुआ । अर्थ
धर्म, काम और मोक्षको देनेवाले आपके दर्शन हुआ ॥ मेरा
कहकर अपना गान में तत्पर हो गन्धर्व वेषधारी श्री
विष्णु भगवान् श्री शङ्करजी को प्रसन्न किये ॥ ३६
वीणा के शब्दसे तथा अनेक प्रकारका अपने आलाप
से कार्तिकेय, गणेश, पार्वतीदेवी जितने देवता
लोग और ऋषिगण थे उन सबको गन्धर्ववेषधारी श्री
विष्णुभगवान् ने मोह लिये ॥३७॥ अनन्तर श्री शङ्करजी प्रसन्न
होकर प्रेमसे श्री विष्णु भगवान् के साथ हृदयसे आलिङ्गनकर
बोले, हे हरे ! क्या कामना आपकी है, सब हमसे कहिये

उवाच च हरे भक्तो वृणु कामानशेषतः ॥
दास्यामि तव गानेन परां मुद मुपागतः ॥३९॥

मुनिरुवाच ॥

इति शम्भुमुखाद्वाक्यं श्रुत्वा च कलापतिः ॥
कथयामास वृत्तान्तं सर्वं दैत्य कृतञ्च यत् ॥४०॥
मयि क्षिराब्धि शयने निद्रिते मधुकैटभौ ॥
उत्पन्नौ कर्ण मलतो ब्रह्माणं भक्षितुं गतौ ॥१॥
तेन निद्रास्तुता भर्ग तयोऽहम् प्रतिबोधितः ॥
युद्धञ्च कृतवां स्ताभ्यां मल्ललीला मुपागतः ॥२॥
नाऽस्मि शक्तो विजेतुं तौ तव एतत्समागतः ॥
इदानीं तद्वधोपायं वदस्व करुणानिधे ॥३॥

अवश्य दूंगा और आप के गान से मैं परम प्रसन्न हुआ
॥३९॥ मुनि बोले हे चन्द्रकान्त राजा इस प्रकार शङ्करजी के
मुखसे वाक्य सुनकर कमलापति श्री विष्णु भगवान् से दैत्योंने
जैसा किया था वे सब वृत्तान्त श्री शङ्करजीसे कहे ॥४०॥ इति
श्री मन्दारमधुसूदनमाहात्म्ये चन्द्रकान्तभृगुसम्वादे सप्तमोऽ-
ध्यायः ॥७॥

श्रीभगवान बोले जब क्षीरसमुद्र में मैं शयन करता था तब मेरे
कानोंके मलपुञ्जसे मधुकैटभ नामका बली दैत्य उत्पन्न होकर
ब्रह्मा जी को खाने के लिये दौड़ा ॥१॥ तब ब्रह्माजी ने श्रीयोग-
निद्राकी स्तुति की । हे भर्ग ! अनन्तर श्रीयोगनिद्रा से मैं चेतनता
पाकर मधुकैटभों के साथ मैंने मल्लयुद्ध किया ॥२॥ जब युद्धमें

भर्ग उवाच ॥

विनायक मनर्च्यैव गतोऽसि रण भूमिकाम् ॥

शक्तिहीनस्त्व तेनासि सुभृशं क्लेशवानसि ॥४॥

गणेशं पूजयित्वैव व्रज युद्धाय मारिष ॥

सच तौ मायया मोह्य वशताम् प्रापयिष्यति ॥५॥

तत्प्रसादेन दुष्टौ तौ वधिष्यसि नसंशयः ॥

हरि उवाच ॥

कथं विनायकं देव मुपास्से भर्ग तद्वद ॥६॥

श्रीमहादेव उवाच

उक्ता गणेश्वरस्यैव मन्त्राणां सतकोटयः ॥

तत्रापि च महामन्त्रो स्त्वेष्वप्ये काक्षरो महान् ॥७॥

उनको पराजय नहीं कर सका तब श्रान्त होकर आपकी शरण
आया हूं हे करुणा के समुद्र सम्प्रति उन दोनोंके वधोंका उपाय
कहिये ॥३॥ श्रीशंकरजी बोले। श्रीगणेशजीकी पूजा नहीं करके आ
रणभूमि में गये इस लिये शक्तिहीन हो गये हैं ॥४॥ हे मारि
पहिले श्रीगणेशजी की पूजाकर तब युद्धक्षेत्रमें आप जाइये वह
गणेशजी उन दोनों को अपनी मायासे मुग्ध करके तब आ
उनको वशीभूत कर लेंगे ॥५॥ श्रीगणेशजी की कृपासे वे दोनों
आपके हाथसे स्वयं वध होंगे। हरिबोले हे भर्ग किस प्रकार से
श्रीगणेश जीकी उपासना करूं इसका उपाय कहिये ॥६॥

श्रीशंकरजी बोले, हे विष्णु श्रीगणेशजी का शतकोटि
मन्त्र है। उसमें भी एकाक्षर महामन्त्र है ॥७॥ उन मन्त्रों मे

षड़क्षरश्च भगवं स्तयोरेक म्वदाम्यहम् ॥

तत्र एकाक्षरन्त्यक्त्वा सिद्धारि चक्रयोगतः ॥८॥

ऋणं धनं शोधयित्वा त जगाद षड़क्षरम् ॥

महामन्त्रं गणेशस्य सर्वसिद्धि प्रदं शुभम् ॥९॥

अस्यानुष्ठान मात्रेण कार्य्यन्ते सिद्धिमेष्यति ॥

ततो जगाम सहरि रनुष्ठानाय सत्वरम् ॥१०॥

ध्यायन् विनायकं देवं षड़क्षर विधानतः ॥

आराधयामास तदा पूजयित्वा प्रयत्नतः ॥११॥

द्रव्यै र्नानाविधैश्चैव षोड़शै श्चोप चारतः ॥

जजाप परमं मन्त्रं विष्णु र्योगेश्वरेश्वरः ॥१२॥

षड़क्षर एक मन्त्र मैं आपको कहता हूँ। अनन्तर एकाक्षर
... को छोड़ कर सिद्ध अरि आदि चक्र से शोधित कर
...॥ ऋण धनको शोधित कर भगवान को षड़क्षर मन्त्र
...। यह महामन्त्र श्रीगणेशजी का समस्त सिद्धिको देने वाला
... पवित्र है ॥९॥ इसके अनुष्ठानमात्र ही से आपकाकार्य
... होगा। अनन्तर भगवान श्रीगणेशजीके अनुष्ठानार्थ
...ताके साथ गये ॥१०॥ श्रीगणेशजीका ध्यान करते हुये
...क्षर मन्त्रके द्वारा प्रयत्न पूर्वक पूजन करके आराधना की
...११॥ अनेक प्रकारके द्रव्यों से षोड़सोपचार पूजन कर योगि
...के ईश्वर श्रीविष्णुभगवान परम यो षड़क्षर मन्त्र उसका जाप
... लगे ॥१२॥ इस प्रकार जप करते २ सौवर्ष बीत गये

गते वर्षशते काले परमात्मा गणाधिपः ॥
प्रत्यक्षतां ययौ तस्य कोटि सूर्याग्नि सन्निभः ॥१३॥
अति प्रसन्न हृदयो बभाषे गरुडध्वजम् ॥

श्रीगणेश उवाच

प्रसन्नोऽहं महाविष्णो तपसा ते रमापते ॥
याचस्व त्वं वरान् मत्तो यांस्त्वं कामयसे हरे ॥१४॥
ददामि तानहं सर्वां स्तपसा तेन तोषितः ॥
पूर्व मेवार्चितः स्याश्चेत् विजयस्ते ध्रुवं भवेत् ॥१५॥

॥ श्री हरिरुवाच ॥

ब्रह्मे शाना विन्द्र मुख्याश्चदेवा यन्त्वान्द्रष्टुम् नैव शक्ता स्तपां
त त्वां नाना रूप मेकं स्वरूपं पश्ये व्यक्ताव्यक्त रूपं गणेशम् ॥

अनन्तर परमात्मा श्रीगणेशजीने कोटि सूर्य्य तथा के अग्निसदृश तेजको धारणकर श्रीविष्णुभगवान को प्रत्यक्ष दिया ॥१३॥ और अति प्रसन्न हृदय से गरुडध्वज श्री वि भगवानके प्रति बोले। श्री गणेश जी बोले हे महाविष्णु रमापते आप की तपस्या से मैं महा प्रसन्न हूं ॥ जिस का के लिये आप ने तपस्या की है उस को हम से या कीजिये ॥१४॥ मैं समस्त कामनायें देने के लिये आप समक्ष प्रस्तुत हूँ। पहिले ही आप मेरी अर्चना कि रहते तो आपकी निश्चय विजय होती ॥१५॥ वि भगवान् बोले ॥ हे गणेशजी ब्रह्मा-ईशान और इन्द्रादि

त्वं योऽणुभ्योऽणुस्वरूपो महद्भ्यो व्योमादिभ्यस्त्वं महान्सत्स्वरूपः॥
सृष्टिं चान्तं पालनं त्वं करोषि चराचराणां प्राणिनां देव योगात् १७
सर्वस्यात्मा सर्वगः सर्वशक्तिः सर्वव्यापी सर्व कर्त्ता परेशः ॥
सर्वद्रष्टा सर्वसंहार कर्त्ता पाताधाता विश्वनेता पिताऽसि ॥१८

एता दृशस्य ते देव दर्शनान्मम सिद्धिदम् ॥
सम्भविष्यति सर्वत्र तथाप्येकं वदामि ते ॥१९॥
ममैव योगनिद्रान्ते श्रुतेर्मल समुद्भवौ ॥
मधुकैटभौ महासत्वौ कर्त्तौ खादितु मुद्यतौ ॥२०॥

जितने मुख्य देवगण हैं वे सब भी बहु तेरे तपस्या करने पर भी आपका दर्शन नहीं पाते ऐसे नाना रूपधारी अव्यक्त रूप एक रूपमें मैंने देखा ॥१६॥ आप अणु से भी अणुस्वरूप महानसे भी महान् आकाशादिक से भी महान् सत्य स्वरूप हैं ॥ और देव योगसे प्राणी गण की सृष्टि पालन तथा नाशभी बार-म्बार आप ही किया करते हैं ॥१७॥ समस्त प्राणी का आत्म स्वरूप सब जगह जानेवाले-सर्व शक्तिमान् सर्वव्यापी समस्त प्राणी के कर्त्ता सर्वश्रेष्ठ समस्त पदार्थ को देखनेवाले सम-स्तको संहार कर्त्ता तथा पालन कर्त्ता विश्व नेता तथा पिता आप ही हैं ॥१८॥ हे देव इस प्रकार के आप के रूप का दर्शन मेरी समस्त कामना की सिद्धि देनेवाला है तो भी मैं एक बात आप से कहता हूँ ॥१९॥

मेरे ही योगनिद्रा द्वारा मेरे कान के मल पुञ्ज से बहुत बलिष्ठ मधुकैटभ नामका दैत्य उत्पन्न हुआ जो ब्रह्मा जी को

ताभ्यामहं ततो युद्धं कृतवान् बहुवत्सरम् ॥
ततः क्षीण बलस्त्वाहं शरणं समुपागतः ॥२१॥
अतो यथा तयो र्मत्तो वधःस्यात्तद्विचार्यताम् ॥
अन्येषा मपिदैत्यानां जयेन यशउत्तमम् ॥२२॥
देहिमे परमेशान भक्तिन्ते ह्यन पायिनीम् ॥
ययामे कीर्त्ति रतुला त्रैलोक्यं पावयिष्यति ॥२३॥

श्री गणेश उवाच

यद्यत्तं प्रार्थितंविष्णो तत्तत्ते भविता ध्रुवम् ॥
यशोबलं परा कीर्त्तिर विग्रश्च भविष्यति ॥२४॥
यइदं पठति स्तोत्रं त्वयोक्तं ममसन्निधौ ॥
सर्वान् कामान् प्रयच्छामि तस्मै नास्त्यत्र संशयः ॥२५॥

खाने के लिये दौड़ा ॥२०॥ उस के साथ बहुत वर्षों तक युद्ध किया अनन्तर क्षीण बल हो कर आपकी शरण आया हूँ ॥२१॥ हे गणपति जिसमें मेरे ही द्वारा उन दोनों की मृत्यु हो ऐसा विचार कीजिये और अन्यान्य दैत्योंको भी जीत कर संसार में उत्तम यश लाभ करें ॥२२॥ हे परमेश जिसमें आप की अनपायिनी भक्ति लाभ हो और जिस से अतुल कीर्त्ति लाभ हो इस प्रकार तीनोंलोकों को पवित्र करें ॥२३॥ श्री गणेश जी बोले ॥ हे विष्णु जिस २ विषय की आप की प्रार्थना है सो सब आप को निश्चय लाभ होगा ॥ और यश बल; अतुल कीर्त्ति और अनेक प्रकार के मङ्गल भी प्राप्त होंगे ॥२४॥ जो यह आप से किया हुआ स्तोत्र मेरे

॥मुनिरुवाच॥

एव मुक्त्वा महाविष्णुं तत्रैवान्तर्द्धे विभुः ॥
तत आनन्द निर्मग्नश्च मेने तावसुरौ जितौ ॥२६॥

समीप जो पाठ करेगा उसको मैं समस्त कामना की पूर्त्ति करूँगा ॥२५॥ भृगु मुनि बोले, हे सोमकान्त राजा-इस प्रकार श्री विष्णु भगवान को कह कर श्री गणेश जी अन्तर्ध्यान हो गये ॥ और श्री विष्णु भगवान भी माना कि मैं अवश्य शत्रु को जीतूंगा ॥२६॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे गणपतिकल्पे सोमकान्त भृगु-सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये गणेशाल्लब्ध विष्णोर्वर-प्रदानं नामाष्टमोऽध्यायः ॥अ०॥श्लो०॥२६॥

॥सूत उवाच॥

ततो जगाम सहरि र्यत्रास्तौ मधुकैटभौ ॥
दृष्ट्वातौ हरिमायान्तं जहसतु र्निनिन्दतुः ॥१॥
मेघश्यामं मुखान्तेऽद्य दर्शितं नीकृतः पुनः ॥
आवान्तुमे महामुक्तिन् दश्यावोऽतः पुनः किल ॥२॥

॥हरिरुवाच॥

सहसा दहते सर्वं लघुरेव हुताशनः ॥
लघुदीपो यथागत्वा यथा संहरते तमः ॥३॥
युवां तथाहमत्रैव शक्तोनाशाय दुर्म्मदौ ॥

॥मुनिरुवाच॥

इतितस्य वचः श्रुत्वा क्रुद्धौ च मधुकैटभौ ॥४॥

सूतजीबोले हे शौनक श्रीगणेशजीका बलपाकर श्रीविष्णु भगवान् वहाँ गये जहाँ मधुकैटभनामका दैत्य था। भगवान को आताहुआ देख वेदोनों हँसने लगे तथा निन्दाकरने लगे ॥१॥ यह श्यामवर्ण मेघके समान मुखवालें हमलोगोंको आज दर्शन कहाँसे दिया। हम दोनों आपको निश्चय मुक्ति देंगे ॥२॥ श्री भगवानबोले हे राक्षसों छोटा साअग्निकण समस्तपदार्थको दग्ध करदेता है एवं छोटासा भी दीप महाअन्धकारको नष्टकरदेता है उसीप्रकार तु दोनोंका मैं नाश करूंगा ॥३॥ मुनीबोले हे राजो इसप्रकार भगवानका वाक्य सुनकर वे दोनों मधुकैटभ क्रोध कर ॥४॥ हट

सहसा जघ्नतु र्विष्णुं मुष्टिभ्यां हृदये भृशम् ॥
ततः पुनर्भमेल युद्धं तयोस्तस्य व्यवर्द्धत ॥५॥
युद्धो बहुदिनन्ताभ्यां वरन्दातुं समुत्सुकः ॥
उवाचश्लक्षणया वाचा हरिस्तौ मधुकैटभौ ॥६॥

॥हरिरुवाच॥

ममप्रहारान् हि युवां सहाथे बहुलाः समा ॥
युवयोः पुरुषार्थेन प्रीतोऽहं दैत्यपुङ्गवौ ॥७॥

॥तावूचतुः॥

अस्मत्तस्त्वं वरम्ब्रुहि दास्यावस्तंहरेऽधुना ॥
आवांहि तव युद्धेन सन्तुष्टौष भृशन्त्वयि ॥८॥

॥मुनिरुवाच॥

तयो र्वचन माकर्ण्य माया मोहितयो र्हरिः ॥
श्रुत्वा बभाण दैत्यौ मे वरान्दातुं समुत्सुकौ ॥९॥

श्रीविष्णुभगवानके हृदय पर मुष्टिप्रहारकरने लगे। अनन्तर उन दोनों के साथ फिर श्री विष्णुभगवानका मल्लयुद्ध बढ़ गया ॥५॥ बहुत दिनोंतक उन दोनों के साथ युद्ध होता रहा। तब श्रीभगवान उन दोनों को मधुर वाणीसे कहने लगे ॥६॥ हे दैत्यपुङ्गव मेराप्रहार बहुतदीनतक आप दोनों सहा वर लीजिये आप दोनों के पुरुषार्थ से मैं बहुत प्रसन्न हूं ॥७॥ दोनों बोले हम ही दोनो से आप वर मांगिये निश्चय हम दोनों आपको वर देंगे क्योंकि हम दोनो आपके युध्यसे बहुत सन्तुष्ट हैं ॥८॥ भृगुमुनि बोले हे राजा सोम कान्त देवी माया से

तदा मे वध्यतां यातं वरप्रवृतो मया ॥
तदा सर्वं जलमयं दृष्ट्वा तौ मधुकैटभौ ॥१०॥
ऊचतुः पश्यप्रीतौ तव हस्तान्मृतिः शुभा ॥
अन्ते च चिन्तनात्सद्यो मुक्तिर्य्याँति सनातनी ॥११॥
यत्रोर्वी जलमयी तत्र नौ जहि माधव ॥
सर्वंत्यजावो नौ सत्यं सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१२॥
त्वमपि श्रध्दया तत्र यत्र नौ च कलेवरम् ॥
तिष्ठ तावन्महाबाहो यावदाभूत सम्प्लवम् ॥१३॥

॥ मुनिरुवाच ॥

तथेत्याह महाविष्णु र्जघने तौ दधारह ॥
चक्रे ण क्षुरधारेण चिच्छेद शिरसीतयोः ॥१४॥

मोहित उन दोनोंके वचनको सुनकर श्रीविष्णुभगवान् बोले
दैत्य राज यदि आप दोनों हम को वर देना चाहते हैं तो
यह दें कि मेरा हाथ से आप दोनो को मृत्यु हो मैं यही
माङ्गता हूं ॥१०॥ श्रीविष्णुभगवान् के वाक्यको सुनकर वे दोनों
हे विष्णु अन्त में जिस की चिन्तना मात्र से साक्षात् प्रा
गण मोक्ष को पाते हैं ऐसे आपके हाथ से हम दोनों की मृ
श्लाघनीय है पर जहाँ पर पृथ्वी जलमयी न हो तहाँ पर
दोनों को मारिये ॥११॥१२॥ समस्त पदार्थ को छोड़ गा
सत्य कदापि त्याग नहीं कर सकता क्योंकि जगत्में सम
पदार्थ सत्य ही में प्रतिष्ठित है ॥१३॥ आप भी
पर श्रद्धा पूर्वक आ कल्पान्त वास करें यहाँ पर
दूनका कलेवर अर्थात शरिर हो वे ॥१४॥ मुनि

ततो देवा मुमुदिरे ववर्षुः कुसुमानिच ॥
गन्धर्वा ननृतुः सर्वौ जगुरप्सरसांगणाः ॥१५॥
ततस्तु विष्णु रभ्येत्य ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥
कथयामास वृत्तान्तं सर्वं हर्ष विनिर्भरः ॥१६॥

महाविष्णु रुवाच

मया च निहतौ दैत्यौ दुर्मदौ मधुकैटभौ ॥
मज्जायाश्च तयो ब्रह्मन् मेदिनी स्थापयामहे ॥१७॥
अस्थिभ्यः पर्वतांश्चैव स्थापयामि यथा पुरा ॥
स्थापितस्तथैवात्र रचयामि पुनर्भवम् ॥१८॥
ताभ्यामहं वरम्ब्रह्मन् दत्तवान् यत्पुरा विधे ॥
तत्कथं नान्यथा कर्तुं सत्य संकल्प वाञ्छतः ॥१९॥

राजन् मधु कैटभका वाक्य को सुनकर श्रीविष्णुभ
वान् तथास्तु ऐसा कहकर जङ्घा पर ले क्षुर के समान
धार वाले चक्र से उन दोनों के मस्तक काट डाले ।
अनन्तर देवता लोक प्रसन्न हुये और पुष्प वृष्टि करने लगे ॥
गन्धर्वगण नाचने लगे अप्सरायें नाचनेलगी तथा गान
करने लगीं ॥१५॥ अनन्तर श्रीविष्णु भगवान् ब्रह्माजी के
समीप आकर अत्यन्त आनन्दित हो समस्त वृत्तान्त कहने लगे
॥ हे ब्रह्मन् ? ये दोनों दुष्टमधुकैटभ नाम के दैत्य मारे गये
इन दोनों के मज्जासे मेदिनी अर्थात् पृथ्वी को और स्थाप-
न करता हूँ ॥१८॥ और जिस प्रकार पूर्व कल्प में किया
था इन दोनों की हड्डी से पर्वतादि की स्थापना करता हूं ।

अद्यारभ्य युगान्ते च यावत् स्थास्यति मेदिनी ॥
तावत्तिष्ठामि तत्रैव तयोर्यत्र कलेवरम् ॥२०॥
इत्यन्दत्वा वरन्ताभ्यां प्रसन्नौ मधुकैटभौ ॥
ओमित्युक्त्वा ततो ब्रह्मन् चिच्छेद शिरसीतयोः ॥२१॥
चक्रेण क्षुरधारेण निहतौ राक्षसेश्वरौ ।
अतोऽहं स्थापयिष्यामि मधोर्मूर्ध्नि च भूधरम् ॥२२॥
मन्दारं कैटभस्यापि ज्येष्ठ गौरस्य पद्मज ।
अतोमन्दार माश्रित्य सदातिष्ठामि वेधित ॥२३॥

कि और संसार की रचना करूंगा ॥१९॥ हे ब्रह्माजी उन दो को मैं पहिले ही वर दे चुका हूं यह मैं अन्यथा कैसे करूं क्यों कि मैं सत्य सङ्कल्पवान् हूं ॥२०॥ आज से लेकर युगा पर्यन्त जब तक पृथ्वी रहेगा जिस स्थान में आप दोनों शरीर जिस काल तक रहेंगे मैं वहां पर उस काल पर्य निवास करूंगा, इस भांति का वर पाकर वे दोनों बहुत प्रस हुये। अनन्तर ओम् कह कर भगवान ने उन दोनों के मस्तक काट डाले ॥२१॥ क्षुरधारा से उन दोनों राक्षसों को मारा लिये मधु के मस्तक पर मन्दार और कैटभ के मस्तक पर ज्ये गौर नाम का पर्वत स्थापित करता हूं ॥२३॥ हे ब्रह्मन् इसलि सज्जनों के विनोदार्थ मोक्ष चाहनेवालों के हितार्थ मन पर्वत पर सर्वदा वास करूंगा ॥२४॥ श्री शङ्करजी की प्रसन्न

सज्जनानां विनोदाय मुमुक्षूणां हिताय च ।
शङ्करस्य प्रसादेन गणनाथानुकम्पया ॥२४॥
जितौ मयाऽसुरौ दैत्यौ मधुकैटभ दुर्मदौ ।
मन्दारेऽहं यथा पूज्यो ज्येष्ठगौरे तथा हरः ॥२५॥
उभयोर्गणनाथश्च पूजनीयः प्रयत्नतः ।
त्वमपि श्रद्धयावत्स ! मन्दारे मधुमस्तके ॥२६॥
मन्मूर्त्तिं रुचिरां कृत्वा प्रतिष्ठाप्य यथाविधिः ।
पूजयस्व प्रयत्नेन भक्ति भाव समन्वितः ॥२७॥
तेनैवलप्स्यते सर्वं नान्यथा मम भाषितम् ।
येऽर्चयिष्यन्ति मन्दारे मन्मूर्त्तिं त्वदुपासिताम् ॥२८॥
प्राप्नुवन्ति न तेकष्टं संसारेऽस्मिन् महार्णवे ।

से और गणेशजी की कृपा से दुराचारी असुरों में श्रेष्ठ मधुकैटभ नाम के दैत्य हमसे जीते गये। जैसे मन्दार में हम पूज्य हैं ज्येष्ठ गौर में वे उसी प्रकार हर पूज्य होंगे ॥२५॥२७॥ श्रीगणेशजी मन्दार तथा ज्येष्ठ गौर दोनों स्थानमें पूज्य होंगे ॥ हे वत्स आप भी श्रद्धापूर्वक मधुके मस्तक पर स्थित मन्दार पर्वतपर जाकर मेरी मनो हर मूर्त्तिकी स्थापना कर प्रयत्नपूर्वक भावसे मेरी पूजा और भक्ति करें। उसीपूजनसे समस्त कामना लाभकरोगे इसमें सन्देहनहीं मैं अन्यथा कदापिनहीं कहूंगा ॥२७॥२८॥ आप से प्रतिष्ठित मेरी मूर्त्ति का जो जो इस प्रकार पूजा करेंगे व कभी भवसागर के कष्ट के भागी न होंगे

मन्दार कुसुमै ब्रह्मन् येऽर्चयिष्यन्ति माधवे ॥
द्वादश्यां भक्तिभावेन तस्यपुण्य फलं शृणु ॥२९॥
सकलाभूः कृतस्तेन दानस्यं ब्रह्म चारिणे ॥
यावत् संख्या च पुष्पस्य विद्यते कमलोद्भव ॥३०॥
तत्कोटि गुण संख्याकं स्वर्ग लोके महीयते ॥
अश्वमेध सहस्रस्य वाजपेय शतस्यच ॥३१॥
यत्फलं लभते सम्यक् तत्कोटि गुणितम्भवेत् ॥
अन्ते मुक्तिम्प्रदास्यामि योगिनां यत्सुदुर्लभम् ॥३२॥

कपिलदेव उवाच

इत्युक्त्वा च महाराज विष्णु श्चान्तर्द धेततः ॥
ब्रह्मापि निर्भयो भूत्वा परमानन्द मासवान् ॥३३॥

हे ब्रह्माजी वैशाख मासमें जो कोई मन्दार फूलसे द्वादशी तिथिमें मेरी पूजा पूजनीय होकर करेंगे उनका फल सुनिये ॥२९॥ ब्रह्मचारी को समस्त पृथ्वी दान देने का फल उसको मिलेगा हे कमलोद्भव। पुष्प की जितनी संख्या होगी उसके करोड़ गुणाधिक तक वह स्वर्गमें वासकरेगा। हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ का जो फल होगा उससे करोड़ गुण अधिक फल हमारी पूजा से वह लाभ करेगा। औ अन्तमें मुक्तिभी इसको देंगे क्योंकि योगियों कोभी दुर्लभ है ॥३०॥३१॥३२॥ कपिलदेव जी बोले हेराजा परीक्षित इस प्रकार श्री विष्णुभगवान् ने श्रीब्रह्माजीसे कहकर अन्तर्ध्यान होगये॥ अनन्तर ब्रह्माजीने भी निर्भय होकर परमा

य इदं शृणुतेऽध्यायं श्रावयेद्वापि भक्तितः ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति चान्तेविष्णुपुरम्ब्रजेत् ॥३५॥

——:o:——

परिक्षित उवाच

आश्चर्य्यमिद माख्यातं भगवन् भवतामम ॥
मधुसूदन देवस्य चरित्रम्पुण्य वर्द्धनम् ॥१॥
हत्वा दैत्यौ महाविष्णु ब्रह्माणन्तम थोब्जजम् ॥
कथयामास वृत्तान्तं यथासौ निहतौमुने ॥२॥
दृष्ट्वाविष्णुं ततो ब्रह्मा वृत्तान्तं श्रुतवान्पुनः ॥
कृत्वाकिन्तम्महा श्रीमन् कथयस्वा नुकम्पया ॥३॥

[illegible]को प्राप्त किया ॥३४॥ जोव्यक्ति इस अध्यायको श्रवण [illegible]गा या भक्तिपूर्वक दूसरेको सुनावेगा वहसमस्त कामना [illegible] लोकमें प्राप्तकर अन्तमें श्रीविष्णु भगवानके धामको प्राप्त [illegible]गा ॥३५॥

इति श्रीस्कन्दादिमहा पुराणे परिक्षित कपिलदेवसम्वादे [illegible]मधुसूदनमहात्म्ये नवमो ऽध्यायः अ०।९।श्लो०।३५॥

राजापरीक्षितबोले हे भगवान् यहजो आपने श्रीमधुसूदन [illegible]का चरित्रपुण्यवर्द्धक तथा आश्चर्य्य जनक मुझे [illegible] ॥१॥ पुनः हे श्रीमन् मधुकैटभ को मारकर श्री विष्णु [illegible] जब ब्रह्मा जीके समीप आकर मधुकैटभका मृत्यु [illegible] सुनाया तब ब्रह्माजीने क्या किया ॥२॥ श्रीकपि-[illegible] जी राजा परीक्षितजीसे कहने लगे हेमहाराज आपने

॥ कपिलदेव उवाच ॥

साधु साधु महाराज वृत्तान्तं पावनम्महत् ॥
कथयामि समासेन यथाच कृतवान्विधिः ॥४॥
निधनं दैत्ययोः श्रुत्वा दृष्ट्वाच पुरतो हरिम्
अतसी पुष्प संकाशं भासमानं चतुर्दिशम् ॥५॥
शंख चक्र गदा पद्म धारिणं दैत्यसूदनम् ॥
नागेन्द्रं ध्रियमाणञ्च योगमाया समावृतम् ॥६॥
दृष्ट्वा तथाविधं देवं सौम्यरूपं मनो हरम् ॥
प्रसन्न स्तं महाधीमन् तुष्टाव कमलोद्भवः ॥७॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥
नमः कमल वासाय नमस्ते कमलाश्रय ॥८॥

बहुत अच्छा तथा पवित्र वृत्तान्त पूछा मै इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे कहताहूं जैसा कि ब्रह्माजीने श्रीविष्णुभगवान सेकहा। दैत्यों की मृत्युको सुनकर आगे अतसीपुष्प अर्थात विकना कुलके सदृश कान्तिमान् चारो दिशाको प्रकाश कर हुये श्रीभगवानको आगे देखा ॥५॥ शंख चक्र गदा पद्म ध धारण करनेहुये दैत्य सूदन नागेन्द्र से ध्रियमाण योगमाया सेवित ॥६॥ सौम्यरूप मनोहर भगवानको देखकर श्री ब्रह्मा जीस्तुति करनेलगे ॥७॥ ब्रह्माजीबोले हेकमल नाभ, हेजल शयनकरनेवाले, हे कमल में वास करनेवाले-हे कमला अथ लक्ष्मी के आश्रित वास करनेवाले आपको नमस्कार करता हूं

नमो विज्ञानमात्राय गुहावास निवासिने ॥
हृषीकेशाय शान्ताय तुभ्यं भगवतेनमः ॥९॥
स्व भक्त रक्षणकृते धृतदेहाय शार्ङ्गिणे ॥
अनन्त क्लेशनाशाय गदिने ब्रह्मणेनमः ॥१०॥
संसार विविधासार निवृत्त कृत कर्म्मणे ॥
रक्षित्रे सर्वजन्तूनां विष्णवे जिष्णवेनमः ॥११॥
नमो विश्वम्भराशाय निवृत्त गुण कर्म्मणे ॥
सुरा सुरवरस्तस्मै निवृत्ति स्थिति कीर्तये ॥१२॥
नमोऽनन्त स्वरूपाय कौस्तुभा भरणाय च ॥
पीताम्बराय देवाय नमस्ते वनमालिने ॥१३॥

हे विज्ञान मात्रस्वरूप हे पर्वतों की गुफा में वासकरणे वाले हे हृषीकेश हे शान्तस्वरूप हे भगवन् मैं आप को नमस्कार करता हूं ॥९॥ हे अपने भक्त की रक्षा करने वाले शार्ङ्गधनुषधारी अनन्तक्लेश को नाश करने वाले गदा को धारण किये हुये ब्रह्मस्वरूप ॥१०॥ विविधप्रकार का जो असार संसार उस में निवृत्तकृत कर्म्मस्वरूप समस्तप्राणी की रक्षाकरने वाले जयनशील विष्णुस्वरूप को मैं नमस्कार करता हूं ॥११॥ हे समस्त विश्व का भरणपोषण करने वाले हे समस्त निवृत्तगुणकर्म्मा हे सुर असुर श्रेष्ठ हे निवृतिस्थितिस्वरूप आप को मैं नमस्कार करता हूं ॥१२॥ हे अनन्तस्वरूप हे कौस्तुभमणि को धारण कर ने वाले पीताम्बर को धारणकरने वाले वनमाली देव आप को

नमस्ते जगदाधार नमस्ते विश्वरूपिणे ॥
दैत्य दानव संहर्त्रे मधुनाशाय नमोनमः ॥१४॥
कैटभारे नमस्तुभ्यं त्राहिमां शरणागतम् ॥
रक्षितोऽहं त्वयादेव दुष्टदैत्य निशाचरैः ॥१५॥
प्रसन्नोऽस्मि जगन्नाथ शरणागत वत्सल ॥
त्राहिमां पुण्डरीकाक्ष मधुसूदन ते नमः ॥१६॥

सूत उवाच

श्रुत्वा स्तोत्रमिदं विष्णुर्ब्रह्मणा यत्कृतम्मुने ॥
प्रसन्न स्तमुवाचेदं भगवान् मधुसूदनः ॥१७॥

॥श्रीविष्णुरुवाच॥

प्रसन्नोऽहं महाभाग स्तोत्रं पाठेन पद्मज ॥
वरंवरय भद्रन्ते दास्यामो नात्रसंशयः ॥१८॥

मैं नमस्कार करता हुं ॥१३॥ हे जगतके आधार हे संसार स्वरूप दैत्यदानव को संहार करने वाले मधुदैत्य को नाशकरने वाले आप को मैं नमस्कार करता हूं ॥१४॥ हे कैटभ के शत्रु मैं आप का शरणागत हूं आप रक्षा कीजिये । हे देव दुष्टदैत्य निशाचरों से आप ने हमारी रक्षाकी ॥१५॥ हे शरणागत वत्सल हे जगन्नाथ आप की कृपा से मैं प्रसन्न हूं हे पुण्डरीकाक्ष रक्षा कीजिये हे मधुसूदन मैं आप को प्रणाम करता हूं ॥१६॥ सूतजी बोले, हे शौनक ब्रह्माजी का स्तोत्र सुनकर श्री मधुसूदनभगवान् प्रसन्न हो ब्रह्माजी के प्रति बोले ॥१७॥

ये स्तुवन्ति त्वयोक्तेन स्तोत्रम्परम दुर्लभम् ॥
प्राप्नुवन्ति न ते दुःखं चान्तेमुक्तिं ददाम्यहम् ॥१९॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

धन्योऽहं कृत कृत्योऽहं दर्शनात्ते जगत्प्रभो ॥
सफलं जीवितन्देव त्वत् प्रसादात् सुरेश्वर ॥२०॥
इदानीं त्वत्पदाम्भोजे रतिरस्तु वरोमम ॥
देहिमे कमलाकान्त यद्यनुग्राह्यते मयि ॥२१॥

हरिरुवाच ॥

यद्यत्ते प्रार्थितं ब्रह्मन् तत्तत्ते भविता ध्रुवम् ॥
अन्यच्च सृष्टिसामर्थ्यं दास्यामो नात्रसंशयः ॥२२॥

हे पद्मज आपके स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं वर मांगिये मैं निश्चय दूंगा ॥१८॥ इस आप के स्तोत्र का जो पाठ करेंगे उन को कभी कष्ट नहीं होगा और अन्त में उन को मुक्ति भी दूंगा ॥१९॥ ब्रह्माजी बोले ॥ हे देव आप को दर्शन ही से मैं धन्य और कृत कृत्य हुआ । हे सुरेश्वर, आप की कृपा से मेरा सजीवन सफल हुआ ॥२०॥ हे कमलाकान्त लक्ष्मीपति आप के चरणारविन्द में मेरी भक्ति हो यह वर मांगता हूं कृपया हमें दीजिये ॥२१॥ श्री भगवान् बोले, हे ब्रह्माजी जिस विषय की आप की प्रार्थना है सो सब आप को निश्चय मिलेगा। इस से अन्य भी सृष्टिसामर्थ्य आप को देता हूं इसमें संशय नहीं ॥२२॥ सूतजी बोले हे

सूत उवाच॥

इत्युक्त्वा च ततोविष्णु स्तत्र वान्तर धीयत ॥
ब्रह्मापिस्वाधिकारार्थं मन्दाराचल मा ययौ ॥२३॥
तत्र गत्वा विधिर्मूर्त्तिं कृत्वा विष्णो स्तुत्तमाम् ॥
सुप्रतिष्ठाप्यता स्तत्र वेदोक्तै र्मुनिसत्तम ॥२४॥
पूजयित्वा तिथत्नेन भक्ति भाव समन्वितः ॥
जजाप परमंमन्त्रं प्रणवाख्य मनुत्तमम् ॥२५॥
एवं वर्ष शते जाते विधेस्तस्य महामुने ॥
आविरासीत्ततो विष्णु र्वरदानाय कञ्जजम् ॥२६॥
नील जीमूत संकाशं विद्युत पुञ्ज निभाम्बरम् ॥
श्री वत्स पद वक्षस्थं वनमाला विभूषितम् ॥२७॥

शौनक, श्री विष्णुभगवान् ब्रह्माजी से ऐसा कहकर अन्त-
र्धान हो गये॥ ब्रह्माजी भी अपना अधिकार पानेकेलिये
मन्दारपर्वत को गये ॥२३॥
ब्रह्माजी मन्दार जाकर श्री विष्णुभगवान्कि मनोहर
मूर्त्ति बनाकर वेदोक्तमार्ग से प्राणप्रतिष्ठादिक किया ॥२४॥
भक्तिभाव से यत्नपूर्वक पूजाकर सर्वश्रेष्ठ प्रणवमन्त्र जप-
कर ने लगे ॥२५॥ हे महामुनी इसप्रकार जप करते २ सौ
वर्ष बीत गये तब ब्रह्माजी को वर देने के लिये श्री विष्णु-
भगवान् आये ॥२६॥ मेघ के समान श्यामवर्ण विद्युल्लता
के समूह के सदृश पीताम्बर को धारण कियेहुये वक्ष-
स्थलमें श्री वत्सपद तथा वनमालासे भूषित ॥२७॥

शान्तं शान्तिप्रदं कान्तं कमनीयं मनोहरम् ॥
भक्ता भीष्ट प्रदस्तार्थं दैत्यदानव सूदनम् ॥२८॥
दृष्ट्वातं तादृशं देवं प्रणनाम ततो विधिः ॥
वरञ्च प्रार्थयामास यद् विधेर्म्मनसि स्थितम् ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

यदि प्रसन्नो भगवान् तदा मेऽभिमत मवरम् ॥
प्रजा विसर्ग शक्तिस्मे देहितुभ्यं नमोनमः ॥३०॥
तत्रापि च नवध्येर्य यथा कुरु तथा कृपाम् ॥

श्री विष्णुरुवाच ॥

ब्रह्मन् प्राप्स्यसि सामर्थ्यं प्रजानां त्वं विसर्जने ॥३१॥
आज्ञायामेवताः सर्वा स्तवस्थास्यन्ति मद्वरात् ॥
वेदाश्चापि स्फुरिष्यन्ति तव बुद्धौ सनातनाः ॥३२॥

शान्त तथा शान्ति को देनेवाले मनोहर तथा कोमल भक्तों का
अभीष्ट सिद्ध कर ने वाले दैत्यदानवको मर्दन करने वाले ॥२८॥
ऐसा मनोहर श्री विष्णुभगवान की मूर्त्ति को देखकर प्रणाम
किया। और मनोवाञ्छित वर मांगा ॥२९॥ ब्रह्माजी बोले॥
हे भगवान् यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरी वांछित प्रजा-
विसर्ग शक्ति मुझे प्रदान कीजिये जिस में हमैं कर्म-
बन्धन न होय ऐसा कीजिये ॥३०॥ ॥ श्री विष्णुभगवान्
बोले हे ब्रह्माजी आप प्रजाकी वृद्धि तथा सामर्थ्य को लाभ
करोगे ॥३१॥ और मेरी आज्ञा से वे प्रजागण आप के वशवर्त्ति
होंगे ॥ और सनातन वेद भी आप की बुद्धि में स्फूर्त्ति

ज्ञानञ्च मत्स्वरूपस्य यथावत्ते भविष्यति ॥
त्वत्कृताञ्च मर्य्यादां न कमिष्यति कश्चन ॥३३॥
सुरासुर गणानाञ्च मुनीनाञ्च महात्मनाम् ॥
त्वमेव वरदो ब्रह्मन् वरेप्सूनां भविष्यसि ॥३४॥
असाध्ये यत्रकार्य्येत्र मोह मेष्यसि तत्रहम् ॥
प्रादुर्भूय करिष्यामि स्मृतमात्र स्त्वया विभो ॥३५॥
सृज्यमाने त्वयाविश्वे नष्टाम्पृथ्वीं महार्णवे ॥
आनयिष्यामि स्वंस्थानं वाराहं रूपमास्थितः ॥३६॥
हिरण्याक्षं निहत्यैव दैतेयं बल गर्वितम् ॥
दिनान्ते तवमत्स्योऽहं भूत्वा क्षोणीन्तरि मिव ॥३७॥

प्राप्त करेगा ॥३२॥ तथा मेरे स्वरूप का भी आप को य
योग्यज्ञान होगा और आप की प्रतिष्ठित मर्य्यादा का क
भी उल्लङ्घन नहीं करेगा ॥३३ तथा वरदान कि इच्
करने वाले सुरासुर गणों के लिये तथा मुनिगण औ
महात्मागणों के लिये आपही वर देनेवाले होंगे ॥३४॥
ब्रह्माजी जहां असाध्य कार्य्य देख कर आप को मो
की प्राप्त होगी वहां स्मरण मात्र से ही मैं प्र
हो कर आप का कार्य्य सम्पादन करूंगा ॥३
आपकी सृष्टि महार्णव में नष्ट होजायगी तब वाराह अ
तार होकर पृथ्वी की स्थापना करूंगा शक्तिमत्त हि
याक्षनामके दैत्यको मारकर और मत्स्यरूप में पृथ्वी
नौकाकीभांति धारण करूंगा ॥३७॥ औषधि सहित मन्

सहौषधि धारयिष्ये मन्वादींश्च निशावधि ॥
सुधार्थे मथ्यता मब्धिं काश्यपानां निराश्रयम् ॥३८॥
मन्थानं कूर्म्मरूपोऽहं धास्ये पृष्ठेन मन्दरम् ॥
नारसिंहवपुः कृत्वा हिरण्य कशिपुं रिपुं ॥३९॥
सुरकार्य्यं हनिष्यामि यज्ञघ्नं दितिनन्दनम् ॥
विरोचनस्य बलवान् बलिपुत्रो महासुरः ॥४०॥
भविष्यति सशक्रश्च स्वाराज्या च्यावयिष्यत ॥
त्रैलोक्येऽपहृते तेन विमुखेच शचीपतौ ॥४१॥
आदित्यां द्वादशः पुत्रः सम्भविष्यामि कश्यपात् ॥
ततो राज्यं प्रदास्यामि देवेन्द्राय दिवस्पुनः ॥४२॥
देवता स्थापयिष्यामि स्वेषुस्थाने ष्वयंविधे ॥
बलिञ्चैव करिष्यामि पाताल तलवासिनम् ॥४३॥
कद माह बहुत्वाच भूत्वाऽथ कपिलाभिधः ॥
प्रवर्त्तयिष्ये कालेन नष्ट शास्त्रं विराग युक् ॥४४॥

दिक निशाकाल पर्य्यन्त उसे धारण करूंगा ॥-॥ अमृत के
लिये समुद्र मन्थनके समय में काश्यपों के मध्य निरा-
श्रित मन्थन रूप मन्दराचल को पृष्ठपर धारण करूंगा ॥३८॥
देवकार्य्य के लिये यज्ञ को नाशकर ने वाले दितिन
न्दन हिरण्यकशिपु नामके दैत्य को नरसिंह शरीर धारण कर
मारूंगा ॥३९॥ विरोचन का बलवान पुत्र बलि नाम का दैत्य जब
इन्द्रको भी राज्यच्युत करेगा तब तीनों लोकों के अपहृत हो
जाने पर तथा इन्द्रादिक के विमुख हो जानेपर ॥४०,४१॥
अदिती का द्वादश पुत्र कश्यपात्मज होकर मैं देवेन्द्र को
फिर का राज्य दूंगा ॥४२॥ हे ब्रह्माजी अनन्तर देवता लोगों
को अपना २ उनके अपहृत पदों की प्राप्ति कराऊंगा।
तथा बलि राजा को पाताल भेजूंगा ॥४३॥ जब संसार में

ततो भूत्वाऽनसूयाया मत्रे रान्विक्षि कौशलः ॥
प्रह्लादायोप देक्ष्यामि विद्याञ्च यदवे विधेः ॥४५॥
मेरुदेव्यां सुतो नाभे भूत्वाह मृषभोभुवि ॥
धर्म्मं परम हंसाख्यं वर्तयिष्ये सनातनम् ॥४६॥
त्रैतायुगे भविष्यामि रामोभृगुकुलोद्वहः ।
क्षत्रं चोत्सादयिष्यामि मनसेतुक दृश्वग ॥४७॥
सन्धौतु समनु प्राप्ते त्रेताया द्वापरस्यच ॥
कौशल्यायां भविष्यामि रामो दशरथात्मजः ॥४८॥
सीताभिधाना लक्ष्मीश्च भवित्री जनकात्मजा ॥
उद्वहिष्यामि तामेवं भङ्क्त्वा धनुरहं महत् ॥४९॥
ततोरक्षः पतिंघोरं देवविद्रोह कारिणम् ॥
सीतापहारिणं संख्ये हनिष्यामि सहानुगम् ॥५०॥

शाख्य नष्टप्राय होगा तब कर्दम मुनि द्वारा देवहूती
गर्भ से कपिल नाम से प्रसिद्ध होकर फिर सांख्ययोग
संसार में विख्यात करूँगा ।४४॥ अनन्तर अनुसूया के ग
से अत्रि मुनि द्वारा उत्पन्न होकर आन्विक्षिकी विद्या
प्रह्लाद को उपदेश करूँगा ।४५॥ नाभिअंश से मेरुदेवी
उत्पन्न होकर ऋषभ नाम से प्रसिद्ध होकर हंस मार्ग नाम
सनातन धर्म को संसार में विख्यात करूँगा ॥४६॥ त्रे
युग में जमदग्नि मुनि से उत्पन्न परशुराम नाम से प्रसि
होकर मर्य्यादा नाशक क्षत्रिय समूह को नाश करूँगा ॥४
त्रेता और द्वापर के सन्धि में कौशल्या के गर्भ से औ
दशरथ राजा के अंश से मैं राम नाम से विख्यात होऊँगा ॥४
लक्ष्मी के अंश से सीता नाम से प्रसिद्ध जनक के घर अव
लेंगी । तब शिव के प्रचण्ड धनुष को तोड़ कर सीता
विवाह करूँगा ॥४९॥ अनन्तर सीता हरण करने वाला देव

तस्येमे तु चरित्राणि वाल्मीकाद्या महर्षयः ॥
तदा गास्यन्ति बहुधा यच्छ्रुते स्यादघक्षयः ॥५१॥
द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पर्य्यवसानिके ॥
भू भारासुर नाशार्थं पातुं धर्मांश्च धार्मिकान् ॥५२॥
वसुदेवाद् भविष्यामि देवक्यां मथुरापुरे ॥
कृष्णोऽहं वासुदेवाख्यं तथा सङ्कर्षणोबलः ॥५३॥
प्रद्युम्न श्चानिरुद्धश्च भविष्यन्ति यदोःकुले ॥
गोपस्य वृषभानोस्तु सुताराधा भविष्यति ॥५४॥
वृन्दावने तया शार्कं विहरिष्यामि पद्मज ॥
लक्ष्मीश्च भिष्मकसुता रुक्मिण्याश्च भविष्यति ॥५५॥
उद्वहिष्यामि राजन्यान् युद्धे निर्जित्य तामहम् ।
धर्म द्रुहोऽसुरान् हत्वा तदाविद्वांश्च भूपतीन् ॥५६॥

से द्रोह करने वाला महा भयङ्कर रावण नाम से प्रसिद्ध राक्षस
को सपरिवार संग्राम में नष्ट करूँगा ॥५०॥ ऐसे मेरे उज्ज्वल
चरित्र का वाल्मिकी आदि महर्षिगण गान करेंगे और जिनके
श्रवण से महापाप का भी नष्ट हो जायगा ॥५१॥ द्वापर तथा
कलि के सन्धि काल में पृथ्वी का भार उतारने के लिये,
असुर गणों के नाश के लिये तथा धार्मिकों के धर्म्म पालनार्थ
॥५२॥ वसुदेव द्वारा देवकी के गर्भ से मथुरापुरी में वासुदेव
कृष्ण नाम से प्रसिद्ध होऊँगा । बलराम, प्रद्युम्न तथा अनि-
रुद्ध आदि यदु कुल में होंगे । राधा प्रसिद्ध वृषभानु की कन्या
होगी ॥५३,५४॥ हे पद्मज वृन्दावन में राधा के साथ मैं विवाह
करूँगा और रुक्मिणी भीष्म का लक्ष्मी स्वरूपा कन्या होगी ॥५५॥

धर्म संस्था पयत्नैव करिष्ये निर्भरां भुवम् ।
येन केनापि भावेन यस्य कस्यापि मानसम् ॥५७॥
मयिसं योक्ष्यते तं तं नेष्येऽहम् गतिम्परम् ।
धर्मं भुवि स्थापयित्वा कृत्वा यदु कुलक्षयम् ॥५८॥
पश्यतां सर्व देवाना मन्तर्द्धास्ये भुवस्ततः ।
कृष्णस्य मम चरित्राणि कृष्ण द्वैपायनादयः ॥५९॥
गास्यन्ति बहुधा बहून् सद्यः पाप हराणि च ।
कृष्ण द्वैपायनो भूत्वा पराशर मुनेः सुतः ॥६०॥
तथा विभागं वेदस्य करिष्यामि तथोचित ।
वैदिकीविधि माश्रित्य त्रिलोकीं परिपाड़ कान् ॥६१॥

वहाँ पर युद्ध में समस्त राजागण को जीत कर रुक्मिणी के साथ विवाह करूँगा और धर्म से द्रोह करने वाले दैत्[illegible] को और उनके पक्षपाती राजाओं को मारकर ॥५६॥ धर्म क[illegible] स्थापना करता हुआ पृथ्वी का भार उतारूँगा । जिसकी मु[illegible] में भक्ति होगी चाहे वह किसी रूप में हो, उसे मैं वह ग[ति] प्रदान करूँगा जो ब्रह्मादिकों ने मुझसे पायी है ॥५७॥ संसा[र] में धर्मकी स्थापना कर तथा यदु कुलको नाश कर ॥५८॥ देव[illegible] हुए देवता लोगों के समक्ष अन्तर्ध्यान होऊँगा । हे ब्रह्मा[illegible] कृष्णावतार का मेरा चरित्र कृष्ण द्वैपायन व्यास [illegible] गान करेंगे ॥५९॥ जिसके गाने से, तत्क्षण पाप नष्ट होगा [illegible] पराशर मुनि के पुत्र कृष्ण द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हो[illegible] वेदकी शाखाओंमें बाटूँगा ॥६०॥ वैदिकी विधि का अवलम्[illegible]

छलेन मोहयिष्यामि भूत्वा बुद्धोऽसुरानहम् ॥
मया कृष्णेन निहता साऽर्जुनेन रणेषु ये ॥६२॥
प्रवर्त्त यिष्यन्त्यसुरा स्ते त्वधर्मं यदा क्षितौ ।
धर्मं देवात्तया भक्ता दहं नारायणो मुनिः ॥६३॥
अनिन्द्ये कोशले देशे भुमौहि सामगो द्विजः ॥
मुनिशापान् मृतिप्राप्ता नृर्पास्तात तथोद्भवम् ॥६४॥
ततोऽसिता सुरेभ्योऽहं सद्धर्मं स्थापयन्नज ॥
जनान् म्लेच्छमयान् भूमौ कलेरन्ते महैनसः ॥६५॥
कल्की भूत्वा हनिष्यामि विचरन्दिव्य वाजिना ॥
यदा यदात्र वेदोक्तो धर्मो नाशष्यतेऽसुरैः ॥६६॥

कर तीनों लोकों को पीड़ा देने वाले असुरगणों को बौद्धावतार होकर छल से मोहित करूँगा ॥६१॥ युद्ध में मेरी सहायता से अर्जुन के द्वारा जो लोग मारे जायेंगे वे लोग संसार में असुर होकर जब अधर्म करने लगेंगे तब परम भक्त धर्मदत्त नाम के ब्राह्मण के घर कोशल देश में सामवेदी नारायण नाम से [illegible] होऊँगा ॥६३॥ मुनिके शाप से मर कर फिर ब्राह्मण हो असुरों को मोहित कर सद्धर्म स्थापित करूँगा ॥६४॥ कलियुग के अन्त में महा पाप से जब पृथ्वी म्लेच्छों से भर जायगी ॥६५॥ तब कल्की अवतार ले दिव्य घोड़े पर विचरण करता हुआ म्लेच्छों का संहार करूँगा ॥ जब असुरगण वेद की मर्यादा का नाश करेंगे तब २ मर्यादा पालन के लिये

प्रादुर्भावो भविष्येऽहं तद्रक्षार्थं तदा तदा ॥
तस्मा च्चिन्ता मिहायैव प्रजाःसृज यथापुरा ॥६७॥

कपिलदेव उवाच

इत्युक्त्वा च ततो विष्णु स्तत्रैवान्तर धीयत ॥
ब्रह्मापि निजकार्य्येषु नियुक्तोऽभून्नृपोत्तम् ॥६८॥
इति ते कथितं राजन् यत्पृष्टोऽहन्त्वया नृप ॥
ब्रह्मणा कथित श्चेदं व्यासायामित तेजसे ॥६९॥
य इदं श्रूयतेऽध्यायं श्रावयेद्वाथ भक्तितः ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति चान्ते विष्णु पुरम्व्रजेत् ॥७०॥

अवतार लूँगा ॥ ६६॥ इस कारण हे ब्रह्माजी चिन्ता छोड़ कर जिस प्रकार पूर्व कल्प में किया था, प्रजा की सृष्टि कीजिये ॥६७॥ कपिलदेव जी बोले ॥ हे राजा परीक्षित, ब्रह्माजी को ऐसा उपदेश कर श्री विष्णु भगवान अन्त ध्यान हो गये ॥ ब्रह्माजी अपने कार्य्य में लग गये ॥६८॥ हे राजा परीक्षित आपने जो पूछा था वह मैंने कहा। यही बात विपुल तेजधारी व्यासजी से ब्रह्माजी भी ने कहा था ॥६९॥ जो कोई इस अध्याय को श्रवण करेगा या श्रवण करावेगा उसकी इस संसार में समस्त कामनाओं की पूर्ति होगी और अन्त में विष्णु भगवानके गोलोक धाम को प्राप्त करेगा ॥७०॥

इति श्रीस्कन्दादि महापुराणे कपिलदेव परीक्षित सम्वादे मन्दा रमाहात्म्ये विष्णुप्रसादाद्विप्रैःसृष्टिसामर्थ्यलाभो नाम दशमोऽ ध्यायः ॥१०॥

वेदव्यास उवाच

श्रुतश्च त्वन्मुखाद् ब्रह्मन् यथातौ राक्षसेश्वरौ ॥
मधुकैटभ नामानौ निहतौ हरिणा विभो ॥१॥
मन्दारश्च यथाख्यातः पृथिव्यां कमलोद्भवः ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मन्दारे च जगद्गुरो ॥२॥
कानि कानिच तीर्थानि विद्यमानानि सन्निधौ ॥
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रह्मन् कथयस्वानु कम्पया ॥३॥

ब्रह्मा उवाच

शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि यानितार्थानि भूयरे ॥
मन्दारे मुनिशार्दूल विद्यमानानि सन्निधौ ॥४॥
सन्ति यद्यपि तीर्थानि बहूनि सत्यनन्दन ॥
तेषान्नामानि मुख्यानि प्रसिद्धानीह सन्ति ये ॥५॥
तत्तत्सर्वं कथयिष्यामि सावधान मना भव ॥
मन्दाराख्यं महाकुण्डं ततोविष्णु पदीम्मुने ॥६॥

वेदव्यासजी बोले हे ब्रह्माजी। श्री विष्णु भगवान के हाथ से जिस प्रकार मधुकैटभ नाम का राक्षस मारा गया वह मैंने सुना ॥१॥ हे कमलोद्भव, मन्दार भी जिस प्रकार संसार में विख्यात हुआ वह आपके मुखसे मैंने सुना ॥ हे जगत् के इस सम्प्रति मन्दार में जितने तीर्थ विद्यमान हैं उसके विषय में विस्तार पूर्वक हमें कहिये ॥३॥ ब्रह्माजी बोले ॥ व्यासजी मन्दार के निकट तथा मन्दार में जितने तीर्थ हैं आप सुनिये ॥४॥ हे सत्यनन्दन, मन्दार में बहुत से तीर्थ हैं उनमें जितने प्रसिद्ध मुख्य तीर्थ हैं ॥५॥

गम्भीरश्च ततः साधो श्यामकुण्ड मतः परम् ॥
सोमकुण्ड स्ततो धीमन् काकतुण्डा ततः परम् ॥७॥
ताम्रपर्णी सरि त्साधो कपिलाख्यमतः परम् ॥
हंसपादोऽपि तत्रैव यत्रास्ते हंसवाहिनी ॥८॥
ततः पुण्य नदी धीमन् वालिशायाः शरित्वरम् ।
यत्र स्नात्वानरा राजन् प्राप्नुवन्ति शुभांङ्गतिम् ॥९॥
ततोगान्धर्व कुण्डश्च सूर्य्य कुण्ड स्ततः परम् ॥
क्रौञ्च पादोऽपि तत्रैव विद्यते ऋषि सत्तम ॥१०॥
ज्ञान गङ्गा ततो व्यास वैराटश्च ततः परम् ॥
एतानि तीर्थसंख्यानि मन्दार निकटानि च ॥११॥
कथितानि मया व्यास इदानीं कथयामहे ॥
मन्दारो परि चत्वारि कुण्डानि मुनि सत्तम ॥१२॥

उन के विषय में मैं कहता हूं आप सावधान होकर सुनिये। पहले मन्दार नाम से प्रसिद्ध महा कुण्ड हैं तब विष्णुपदी है ॥६॥ अनन्तर गम्भीर कुण्ड है ॥७॥ तब श्याम कुण्ड है। अनन्तर सोम कुण्ड है। हे धीमान तब काकतुण्डा है ॥७॥ तब ताम्रपर्णी नदी है अनन्तर कपिल कुण्ड है तब इसी के पास हंसपाद है जहाँ पर अव्यक्त रुप से हंसवाहिनी भगवती हैं ॥८॥ पुनः अत्यन्त पुण्य जनक वालिशा सरोवर है जहाँ पर स्नान करने से प्राणिगण उत्तम गति को प्राप्त करते हैं ॥९॥ अनन्तर गन्धर्व कुण्ड है तब सूर्य्य कुण्ड है। हे ऋषि सत्तम क्रौञ्चपाद भी तीर्थ है ॥१०॥ अनन्तर ज्ञानगङ्गा है तब वैराटकुण्ड

यद्दर्शना त्स्पर्शनाच्च मुक्ति भागी भवेन्नरः ॥
तेषां क्रमेण वक्ष्यामि पावनानि मनीषिणाम् ॥१३॥
चक्रावर्त्त महा कुण्डं विष्णो श्चक्र विभूषितम् ॥
यत्र सन्निहितो नित्यं शेषशायी जनार्द्दनः ॥१४॥
ततो ऽस्तरांख्या गङ्गा भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी ॥
यत्र सान्निहितो नित्यं नृसिंहो भगवान् प्रभुः ॥१५॥
चक्रावर्त्ता दुदिच्याञ्च शङ्ख कुण्डम्विराजते ।
पाञ्चजन्यं हरेर्यत्र विद्यते नृपसत्तम ॥१६॥

॥११॥ हे व्यास जी मन्दार के चारो ओर, जितने तीर्थ हैं, उन के …र में मैंने आप से कहा। सम्प्रति मन्दार पर्वत पर …र कुण्ड तथा अन्यान्य भी तीर्थादिक उपलब्ध हैं। मैं उनका …र्णन करता हूं ॥१२॥ जिसके दर्शन से तथा स्पर्श से …प्राणिगण मुक्ति पाते हैं। वह क्रमशः मैं कहता हूं। यह …पण्डितगणों को भी पवित्र करता है ॥१३॥ पहले चक्रावर्त्त …कुण्ड है जो श्री विष्णु भगवान के चक्र से विभूषित हैं …और जहाँ पर नित्य शेषशायी भगवान उत्तर दिशा में …वास करते हैं ॥१४॥ चक्रावर्त्त से पश्चिम आकाश गङ्गा है …जिसमें स्नान करने से प्राणिगण मुक्ति पाते हैं और …इस के समीप श्री नृसिंह भगवान नित्य वास करते …हैं ॥१५॥ आकाश गङ्गा से पूर्व दिशा में श्री महावीर जी …वास करते हैं॥ चक्रावर्त्त से उत्तर दिशा में शङ्ख कुण्ड है जहां …पर श्री विष्णु भगवान का पाञ्चजन्य शङ्ख आज भी वर्त्त-

ततः सौभाग्य कुण्डञ्च पवित्रं पुण्य वर्द्धनम् ॥
यत्र विश्वेश्वरो देवो दक्षिणस्यां विराजते ॥१७॥
तत्रैकं तीर्थमुख्यञ्च विद्यते ऋषिसत्तम ॥
धाराय पतनन्नाम विश्वेशस्य समीपतः ॥१८॥
सौभाग्याद्वायवे धीमन् वाराहं कुण्डमुत्तमम् ॥
यत्र सन्निहितो नित्यं वाराहो भगवान् प्रभुः ॥१९॥
धरण्या सहितो देवो भक्ताभीष्ट फलप्रदः ॥
एतानि कुण्ड संख्यानि पवित्राणि शुभानिच ॥२०॥
मन्दारो परि मुख्यानि कथितानि मयामुने ॥
इदानीं कथयिष्यामि शृ तत्प्रान्ताथ वैमुने ॥२१॥

मान है ॥१६॥ वहाँ पर एक कामाख्या कुण्ड भी है जहाँ प
अब भी श्री कामाख्या देवी की लुप्तप्राय योनि का चिन्ह है
शंख कुण्डसे उत्तर दिशामें परम पवित्र और पुण्यवर्ध
सौभाग्य कुण्ड है। दक्षिण दिशामें श्री विश्वनाथ विराजमा
हैं ॥१७॥ हे ऋषिसत्तम वहाँ पर एक धारापतन नाम
तीर्थ श्री विश्वनाथजीके आसपास में है ॥१८॥ सौभा
कुण्डसे वायुकोणमें वाराहकुण्ड है जहाँ पर नित्य श्री वारा
भगवान धरणी देवी सहित भक्तोंको अभीष्ट सिद्ध करने
लिये नित्य वास करते हैं ॥१९॥ इतने तीर्थ मन्दार के ऊपर प
करने वाले तथा सुख देने वाले वर्त्तमान हैं ॥२०॥ हे मुनी
मन्दार प्रान्त में जितने तीर्थ उपलब्ध हैं उनके बारे में मैं कहता
॥२१॥ मन्दार से पूर्व दिशामें परम पवित्रचीर नाम से विख्या

यानि सन्तीह तीर्थानि गदितानि मया शृणु ॥
मन्दारात्पूर्वभागेतु क्रोशमात्रमितो मुने ॥२२॥
चीरनाम्नीति विख्याता नदी परम शोभना ॥
तस्यां स्नात्वा नराधीमन् भक्ति भावसमन्विताः ॥२३॥
पूजयन्ति जगन्नाथं विष्णुं श्री पुरुषोत्तमम् ॥
इहलोके सुखं भुक्त्वा चान्ते विष्णु पुरंव्रजेत् ॥२४॥
आग्नेय्यां कमलाकुण्डं क्रोशमात्र मितो मुने ॥
वर्त्ततेऽद्यापि कमलं तत्रविष्णोः प्रसादतः ॥२५॥
मन्दाराद् दक्षिणे भागे गव्यूती द्वयमात्रके ॥
वर्त्तते गोमजावापी बहुपुण्य विवर्द्धिनी ॥२६॥
मन्दाराद् दक्षिणे धीमन् क्रोशमात्र मिते शुभा ॥
वालिशा नाम नगरी भोग मोक्ष प्रदायिनी ॥२७॥

एक नदी है ॥२२॥ उसमें भक्तिभाव से स्नान करके जो
जगन्नाथ पुरुषोत्तम श्रीमधुसूदन भगवानकी पूजा करते हैं
वे इस लोकमें नाना प्रकार के सुखों का उपभोग करके अन्तमें
श्री विष्णुभगवानके परम धाम को जाते हैं ॥२३, २४॥
मन्दार से अग्नि कोणमें दो मील की दूरी पर एक कमलाकुण्ड है,
जहाँ पर श्रीविष्णु भगवान की कृपासे आज भी कमल का फूल
वर्त्तमान रहता है ॥२५॥ मन्दार से दक्षिण चार मील की
दूरी पर महापुण्य को देने वाला गोमजा नाम का एक
तालाब है ॥२६॥ मन्दार से दो मील की दूरी पर दक्षिण
दिशा में भोग और मोक्षको देने वाली संसार में विख्यात

यत्राद्यापि नरा राजन् चतुर्वर्ग फलप्रदम् ॥
पूजयन्ति जगन्नाथं माधवं मधुसूदनम् ॥२८॥
मन्दारा द्योजने साधो प्रतीच्यान्दिशि संस्थिता ॥
चान्दनाख्या महापुण्या नदीपरम शोभना ॥२९॥
यस्यांसन्निहितो देवो ज्येष्ठगौरेच शङ्करः ॥
भुक्ति मुक्ति प्रदानार्थं सदातिष्ठति वं विभुः ॥३०॥
यत्राद्यापि शिवाराजन् पार्वती भक्तवत्सला ॥
भक्त संरक्षणार्थाय सदा तिष्ठति वै मुदा ॥३१॥
इति ते कथितं व्यास तीर्थमण्डल मुत्तमम् ।
मन्दरस्य चतुर्दिक्षु पवित्र मूण्य वर्द्धनम् ॥३२॥
शृणुयाच्छ्रावयेन् मर्त्यो मुक्ति भागी भवेन्नरः ॥

वालिशा (बौंसी) नाम की एक नगरी है । ॥२७॥ हे राजा परीक्षित यहाँ पर आज कल भी चारो पदार्थ को देने वाले भगवान श्रीमधुसूदन देव जी की पूजा प्राणीगण किया करते हैं ॥२८॥ मन्दार से पश्चिम दिशा में आठ मील पर चान्दन नामका एक महा नदी है ॥२९॥ जिस नदीके समीप ज्येष्ठ गौर (जेठौर) पर्वत पर भोग एवं मोक्षको देने वाले श्रीशङ्करजी वर्त्त मान हैं ॥३०॥ हे राजा जहाँ पर आज कल भी भक्तवत्सला श्रीपार्वती देवी भक्तों के रक्षा के लिये वर्त्तमान हैं ॥३१॥ अब ब्रह्मा जी व्यासजी से कहते हैं हे व्यास जी, मन्दारके चारो ओर जो तीर्थ मण्डल पर्वत है उसके बारे में मैंने आप से कहा ॥३१॥ जो इस तीर्थ मण्डल का माहात्म्य श्रवण करेगा या करावेगा वह मुक्ति का भागी होगा ॥

इति श्रीस्कन्दादि महापुराणे व्यासब्रह्मासम्वाद प्रसङ्गे सूतशौनक सम्वादे मन्दारमधुसूदन माहात्म्ये तीर्थमण्डल कथनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

श्रुतञ्च त्वन्मुखात् साधो तीर्थमण्डल मुत्तमम् ॥
संक्षेपेण मया चात्र मन्दारस्य द्विजोत्तम ॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि प्रत्येकस्य महामुने ॥
माहात्म्यं तीर्थराजस्य कथयस्वानु कम्पया ॥२॥

कपिलदेव उवाच:

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि प्रत्येकन्तस्य भूपते ॥
माहात्म्यं तीर्थवर्यस्य भुक्ति मुक्ति फलप्रदम् ॥३॥
मन्दारे प्रथमं कुण्डे सर्वप्राणि सुखावहम् ॥
विद्यते राजशार्दूल महात्म्यं तद्वदाम्यहम् ॥४॥
यत्र स्नात्वापि मनुजा यान्ति विष्णोः परम्पदम् ॥
धारापाषाण सम्भूता तरणी द्विप सन्निभाः ॥५॥
यतन्त्येका महाराज तत्र कुण्डे मनोहरे ॥
पापीना यदिवादुःखी मुकोवा सर्ववान्धवैः ॥६॥

राजा परीक्षित बोले, मन्दार के जितने तीर्थमण्डल हैं, उनका संक्षेप माहात्म्य आपके मुख से मैंने सुना ॥१॥ हे मुनी सम्प्रति जितने तीर्थमण्डल हैं उनमें प्रत्येक का माहात्म्य कृपापूर्वक कहिये ॥२॥ श्री कपिलदेवजी बोले, हे राजा प्रत्येक तीर्थ का माहात्म्य मैं कहता हूं । जिसे श्रवण कर प्राणीगण भोग और मोक्ष को प्राप्त करें ॥३॥ प्रथम मन्दारकुण्ड है, हे राज शार्दूल, इसका माहात्म्य मैं कहता हूँ ॥४॥ यहाँ पर स्नान करने से मनुष्यादिक श्री विष्णु भगवान् के परमपद गोलोकधाम को जाते हैं । यहाँ पर पर्वत

उपोष्यैकदिनं राजन् स्नात्वा यान्ति हरेः पदम् ॥
यत्र स्नात्वा महाराज अश्वमेध फलं लभेत् ॥७॥
यत्र दाशरथिश्चक्रे श्राद्धं रामः पितुः स्वयम् ॥
तत्र स्नाहि महाकुण्डे ह्यस्तात् पतितस्यच ॥८॥
अत्र ते कथयिष्यामि कथामेकां पुरातनीम् ॥
यस्याः श्रवणमात्रेण मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥९॥
आसीत्पुरा महाराज व्याघश्चैको महाबली ॥
हरिदास इतिख्यातो जन्तूनां भयवर्द्धनः ॥१०॥
सैकदा मृगमन्वेष्टुं धृतबाण शरासनः ॥
दैवात्समागत श्चात्र मन्दारे नृपसत्तम ॥११॥

से निकली हुई सूर्य्यकी कान्ति के समान चमकती हुई एक धारा मन्दार के उस मनोहर कुण्ड में गिरती है। पापी दुखी बान्धवों से परित्यक्त ॥५ ६॥ एक दिन उपवास कर भक्तिभाव से जो कोई उस कुण्ड में स्नान करता है वह विष्णुपुरी को जाता है। हे महाराज वहाँ पर स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥७॥ जहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी ने अपने पिता श्री दशरथ महाराज का श्राद्ध किया था। वहाँ पर मन्दारकुण्ड नामक जो महाकुण्ड है उसमें स्नान कीजिये ॥८॥ इस विषय में मैं एक पुरानी कथा कहता हूँ जिस के श्रवण मात्र से ही प्राणीगण मुक्ति के भागी होते हैं ॥९॥ हे महाराज प्राचीनकाल में प्राणीगण को भय देने वाला हरिदास नाम का एक महाबली व्याघ्र था ॥१०॥ वह एक

मन्दारा दक्षिणेभागे चित्रभानौ महावने ॥
मघर्क्षे माधवेमासि मध्याह्न समुपागतः ॥१२॥
दृष्ट्वा चैकं महाराज शूकरभय वर्द्धनम् ॥
धनुर्बाणौ करेधृत्वा सज्ज्यायाकृष्य वीर्य्यवान् ॥१३॥
अन्वधावन् ततोव्याधः शूकरस्य वधायच ॥
तद्दृष्ट्वा शूकरोराजन् भयव्याकुल चेतनः ॥१४॥
मन्दाराख्ये महाकुण्डे पपात भयमूर्छितः ॥
तत्कुण्डस्य प्रभावेण विद्याधर पतिं नृप ॥१५॥
बभूव सहसा कोलो दृष्ट्वा व्याघ्रं प्रति विक्रमतः ॥
गन्धर्वोपि तथादृष्ट्वा धृतबाण शरासनम् ॥१६॥
विहस्य व्याधं पप्रच्छ कोभवांस्त्वत्र संस्थितः ॥
कथयस्व महाराज किमन्वेष्टुं मिहागतः ॥१७॥

समय धनुषबाण लिये हुये मृग को ढूंढता दैवयोग से मन्दार आया ॥११॥ मन्दार से दक्षिणकी ओर चित्रभानु नाम के महा बन में मघा नक्षत्र से युक्त वैशाख मास में मध्याह्न समय में उपस्थित हुआ ॥१२॥ हे महाराज वहाँ पर उसने प्राणीगणों को भय देने वाला एक शूकर देखा ॥१३॥ व्याधा ने धनुषपर तीर चढ़ाकर उस शूकर को मारने के लिये उस के पीछे दौड़ा। हे राजा उसको देखकर शूकर भय से व्याकुल हो ॥१४॥ मन्दार नामक महाकुण्ड में मूर्छित होकर गिरा ॥ हे राजा, इस कुण्डके प्रभाव से वह विद्याधरों का पति हो गया ॥१५॥ धनुषबाण

व्याध उवाच

गन्धर्वेश महाराज व्याधोऽहं पशुहिंसकः ॥
आगतोऽस्मिन्न मन्दारे जन्तूनां वध हेतवे ॥१८॥
दृष्ट्वा च शूकरश्चैक धृतबाण शरासनः ॥
अन्वधाव स्ततः सोऽपि कुण्डे मन्दार संज्ञके ॥१९॥
मद्भयात् पतितस्तेन सहसा शूकरोऽखिलः ॥
विद्याधर पति भूत्वा तिष्ठसि त्वं ममाग्रतः ॥२०॥
नजाने केन पुण्ये न विद्याधर पतिर्भवान् ॥
तेनाहं विस्मितो देव तिष्ठामि तव सन्निधौ ॥२१॥

हाथ में लिये विद्याधरों के पति रूप को हठात् धारण किये हुये उस शूकर को देख वह व्याध बहुत चकित हुआ। गन्धर्वपति रूपधारी शूकर ने हँसकर व्याधा से पूछा आप कौन हैं और किस को खोजते २ यहाँ आये हैं ॥१६,१७॥ व्याध बोले ॥ हे गन्धर्वोंके पति मैं पशुओं का हिंसक व्याध हूं ॥ पशुओं के बधार्थ मन्दार में आया हूँ ॥१८॥ एक शूकर को देख धनुष बाण ले कर उस के पीछे मैंने धावा किया ॥ वह शूकर भी मन्दार कुण्ड में ॥१९॥ मेरे भय से हठात् गिर गया और विद्या धर का पति हो कर यहां तुम मेरे समक्ष खड़े हो ॥२०॥ मैं नहीं जानसका कि किस पुण्य के प्रभाव से आप विद्याधर के पति हो गये हे देव यही कारण है कि मैं विस्मय को

एतस्मिन् समये राजन् वदतो व्याध कोलयोः ॥
आविरासी द्रथश्चैको यक्षकिन्नर सेवितः ॥२२॥
विद्याधरपति स्तत्र करेधृत्वा च यक्षराट् ॥
रथस्योपरि संस्थाप्य हातुमन्तुमना सोऽभवे ॥२३॥
तद्दृष्ट्वा विस्मितो व्याधश्चकितः सन् वचोऽब्रवीत् ॥

व्याध उवाच ॥

कस्त्वं कोलोद्भवं देहं नीत्वा स्वर्गं प्रयास्यसि ॥२४॥
केनकर्म्म विपाकेन ह्यभूद्गन्धर्व नायकः ॥
यान्नीत्वा दिव्य यानेन गच्छसि त्वं सुरालयम् ॥२५॥
तत्सर्वं वद निश्चित्य कृपया गुह्यकेश्वर ।

पुष्पदन्त उवाच ॥

शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि कथा मेकामपुरातनीम् ॥
यथा कोलोद्भवं देहं प्राप्तो गन्धर्व नायकः ॥२६॥

प्राप्त कर आपके समीप खड़ा हूँ ॥२१॥ इस प्रकार से दोनों परस्पर बोल ही रहे थे कि इसके बीचमें यक्ष और किन्नरों से सेवित एक रथ आया ॥२२॥ वहाँ पर यक्षराज विद्याधर पति का हाथ धर रथ पर बैठा जाने का ज्योंही विचार किया ॥२३॥ त्योंही वह व्याधा विस्मय के साथ बोला ॥ आप कौन हैं और क्यों इस शूकर उत्पन्न देह को लेकर स्वर्ग जा रहे हैं ॥२४॥ किस कर्म्म के प्रभाव से यह शूकर गन्धर्वों का राजा हुआ है। कृपया हमें बताइये. जिस को लेकर आप दिव्य विमान के द्वारा स्वर्ग जा रहे हैं पुष्पदन्त बोले. हे व्याध इस विषय में एक पुरानी

पुराऽयं हरिविर्षेशो गन्धर्वाणां च नायकः ॥
गान्धर्व विद्या निपुणो गीतशास्त्र विशारदः ॥२७॥
सैकदा मन्दर द्रोण्यां विचचार महाबली ॥
स्नातुं ययौ च जाह्नव्यां ललनाभिः समावृतः ॥२८॥
वस्त्रं धृत्वा तटे तस्या नग्न स्नान अकारद ॥
पीत्वा च मदिरास्तत्र कामिन्याश्च करस्ततः ॥२९॥
गृहीत्वा रमयामास हास्य प्रौढ रसैर्युतः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासा मुनि पुङ्गवः ॥३०॥
आययौ तेन मार्गेण दर्शनार्थं विभोः पुरीम् ॥
दृष्ट्वा दुर्वास सं सर्वा नार्यश्च शाप शङ्किताः ॥३१॥
परिधाय स्ववासांसि गता श्चाल क्षितास्ततः ॥
न जग्राह च तत्रैव वस्त्रं गन्धर्व नायकः ॥३२॥

कथा मैं कहता हूं। कैसे यह गन्धर्व नायक शूकर हुआ आप सुनिये ॥२६॥ पहले यह हरिविर्ण देश में गन्धर्वों का राजा था, गान्धर्व विद्या में निपुण तथा शास्त्र विशारद था ॥२७॥ एक समय मन्दार महा वन में विचरण करता हुआ बहुत सी युवती स्त्रियों के साथ वह गङ्गा स्नान को गया ॥२८॥ गङ्गा तट पर वस्त्र रख कर नग्न स्नान करने लगा ॥ मद्य पान कर युवतियों के हाथ पकड़ ॥२९॥ अनेक प्रकार के हास्य रस से युक्त होकर वहां पर रमण करने लगा ॥ इसी समय में दुर्वासा मुनि वहां पर आये ॥३०॥ उसी मार्ग से शङ्कर जी की पुरी देखने के लिये आया हुआ उनको देख

दृष्ट्वा तं क्रोध ताम्राक्षो दुर्वासा तु शशापह ॥
रेदुष्ट मति विभ्रान्त परस्त्री रति लालसः ॥३३॥
मां दृष्ट्वा नम वाल्मज्जां धृतवान् पशुवत्ततः ॥
अत स्त्वं कोलके योनौ याहि शीघ्रं सुदुर्म्मते ॥३४॥
शापन् दत्वा महाघोरं दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ॥
प्रययौ शम्भु निलयं यत्र देवो महेश्वरः ॥३५॥
गन्धर्वोऽपि ततो व्याघ्र शूकरत्व मवाप्तवान् ॥
मागधानां वनोद्देशे सदातिष्ठति शूकरः ॥३६॥
दैवादत्र समागत्य मन्दारे पर्वतोत्तमे ॥
तव भीत्या महाकुण्डे मन्दाराख्ये पपात सः ॥३७॥
तत्कुण्डस्य प्रभावेण गन्धर्वत्व मवाप्तवान् ॥
इदानीं दिव्य यानेन प्रयाति गुह्यकालयम् ॥३८॥

समस्त स्त्रियाँ शाप के भय से भीत हुईं ॥३१॥ अपने २ वस्त्र पहन कर व छिप गईं। वहाँ पर गन्धर्व नायक ने वस्त्र नहीं पहना ॥३२॥ उनको देख दुर्वासा मुनि ने शाप दिया, रे पापी परस्त्री रति लम्पट ॥३३॥ मुझे देख कर तुझे लज्जा नहीं हुई, पशु के समान व्यवहार किया इसलिये तू शीघ्र शूकर हो जा ॥३४॥ मुनि श्रेष्ठ दुर्वासा कठिन शाप देकर शङ्कर भगवान की पुरी गये। वहाँ श्री शङ्करजी वर्त्तमान थे ॥३५॥ हे व्याघ्र पीछे गन्धर्वराज भी शूकर होकर मगध देश के वन में रहने लगे ॥३६॥ दैव योग से वह पर्वत श्रेष्ठ मन्दार में आकर तेरे भय से मन्दार कुण्ड में गिर पड़ा ॥३७॥ उसी कुण्डके

त्वमपि श्रध्दया व्याध कुण्डे मन्दार संज्ञके ॥
स्नानं कुरु प्रयत्नेन वैकुण्ठं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥३६॥
इत्युक्त्वा पुष्पदन्तोऽपि प्रययौ गुह्यकालयम् ॥
तदारभ्यच्च व्याधोऽपि कुण्डे मन्दार संज्ञके ॥४०॥
स्नानञ्चकार विधिव दात्मनो मुक्ति हेतवे ॥
मासान्ते स्नान मात्रेण बहुपापं प्रणाशयन् ॥४१॥
गतस्तु हरिसान्निध्यं योगिनां यत्सुदुर्लभम् ॥
अहो मन्दार कुण्डस्य महिमान न्न विद्महे ॥४२॥
यस्य पूण्य प्रभावेण व्याधो मुक्ति मवाप्तवान् ॥
य इदं श्रूयतेऽध्यायं श्रावयेद्वापि भक्तितः ॥४३॥
सर्व पाप विनिर्मुक्तो विष्णु लोकं सगच्छति ॥४४॥

इति श्री मन्दारमाहात्म्ये कपिल परीक्षित सम्वादे मन्दार कुण्डस्य माहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

प्रभाव से गन्धर्व होकर वही शूकर सम्प्रति विमान के द्वारा गन्धर्व लोक जा रहा है ॥३८॥ हे व्याध तू भी मन्दार कुण्ड में यत्न पूर्वक स्नान करो । इसके प्रभाव से निश्चय वैकुण्ठ जायगा ॥३९॥ ऐसा कह कर पुष्पदन्त गन्धर्व लोक गया । उस दिन से लेकर व्याधा भी मन्दार कुण्ड में ॥४०॥ अपनी मुक्ति के लिये स्नान करने लगा। एक मास तक स्नान कर मास के अन्त में स्नान मात्र से ही अनेकों प्रकार के पापों से मुक्त हो ॥४१॥ जो योगियों को भी दुर्लभ श्री विष्णु भगवान के समीप गया । अहा ! इस मन्दार कुण्ड की महिमा कैसी पवित्र है, नहीं कह सकता। ऐसी महिमा जिसके प्रभाव से व्याध भी मुक्ति पा गया ॥४२॥ ॥४३॥ जो इस अध्याय को सुनेगा या सुनावेगा वह श्री विष्णु भगवान् के समीप विष्णुलोक को निश्चय जायगा ॥४४॥

इति श्री मन्दारमाहात्म्ये कपिल परीक्षित सम्वादे मन्दार कुण्डस्य माहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

परीक्षित उवाच

श्रुत्वा मन्दार कुण्डस्य महात्म्यं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥
सर्व सम्पत्करन्नृणां स्वर्ग मोक्षैक साधनम् ॥१॥
इदानीम्ब्रूहि मे नाथ चक्रावर्त्तस्य वैभवम् ॥
यच्छ्रुत्वा कृत कृत्योऽहं भविष्यामि तपोधन ॥२॥

श्री कपिलदेव उवाच ॥

कथयामि महाराज माहात्म्यं चाति पावनम् ॥
शौनकेनापि पृष्टोऽसौ सूतो व्यासात्मजो नृप ॥३॥

शौनक उवाच

वद सूत महाभाग चक्रावर्त्तस्य वैभवम् ॥
यत्र तिष्ठन्ति दैत्यारिः शेषशायी जनार्दनः ॥४॥
कथ मस्याभवन्नाम चक्रावर्त्त महामुने ॥
तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्वानु कम्पया ॥५॥

राजा परीक्षित बोले; हे नाथ सब सम्पत्ति को देने वाले स्वर्ग तथा मोक्ष के साधक मन्दार कुण्ड के माहात्म्य को आपके कमल रूपी मुखसे सुना ॥१॥ सम्प्रति चक्रावर्त्त के माहात्म्य को हे तपोधन आप मुझसे कहिये ॥२॥ कपिल मुनि बोले, हे महाराज मैं चक्रावर्त्त के माहात्म्य कहता हूं, आप सुनिये . यही बात सूत जी से शौनक मुनी ने पूछा था ॥३॥ शौनक बोले, हे सूत जी चक्रावर्त्त कुण्डका माहात्म्यको कहिये, जहां पर शेषशायी श्री जनार्दन भगवान वर्तमान हैं ॥ ४ ॥ हे महामुनी कैसे इसका नाम चक्रावर्त्त

॥ सूत उवाच ॥

शृणु शौनक वक्ष्यामि चक्रावर्त्तस्य वैभवम् ॥
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तु र्जन्म संसार बन्धवात् ॥१॥
ये शृण्वन्ति महापुण्यं चक्रतीर्थस्य वैभवम् ॥
ते यान्ति विष्णु सानिध्यं पुनरावृत्ति वर्जितम् ॥२॥
चक्रावर्त्तं महाकुण्डं लक्ष्मी युक्तं मुरद्विषम् ॥
पक्षोपवास मासाद्य तत्र स्नानन्तु ये नराः ॥८॥
कुर्वन्ति ते महाराज प्राप्य स्वर्गं मनोहरम् ॥
क्रीडन्ति वै प्रतिश्रृङ्गं तत्र दृष्ट्वा चतुर्भुजम् ॥९॥
चक्र मध्यगतं विष्णुं नरः पापं विमुच्यते ॥
तस्यान्तिके भूमिपाल श्राद्धं कार्य्यं विचक्षणैः ॥१०॥

पड़ा सो सविस्तर कहिये ॥५॥ सूतजी बोले, हे शौनक चक्रावर्त्त के माहात्म्य को मैं कहता हूँ, आप सुनिये। इसके श्रवण मात्र से प्राणी गण सांसारिक जन्मरूपी बन्धन से छूट जाते हैं ॥३॥ जो कोई महा पुण्य को देने वाला इस चक्रावर्त्त के महात्म्य को सुनता है वह आवागमन से रहित होकर श्री विष्णु भगवान का सान्निध्य प्राप्त करता है ॥७॥ लक्ष्मीयुक्त मुरारी श्री विष्णु भगवान् के निकट चक्रावर्त्त नाम के महा कुण्ड में पक्षोपवास करके जो मनुष्य स्नान करता है ॥८॥ हे महाराज वह मनोहर स्वर्ग को प्राप्त कर वहाँ पर चतुर्भुज भगवान का दर्शन कर प्रतिश्रृङ्ग में क्रीड़ा करता है ॥९॥ हे भूमिपाल चक्रावर्त्त के मध्य

कोटिवर्षाणि तृप्यन्ति पितरस्तत्र तर्पिता ॥
किमन्य त्तस्य माहात्म्यं वक्तव्यं त्वयि भूपते ॥११॥
सायूज्यं प्राप्यते मृत्वा ह्येकेनैव जन्मना ॥
स्मृत्वा यस्य पदांभोजं विष्णोर्वै प्राप्यते गतिः ॥१२॥
स स्वयं भगवान् यत्र तत्र कादुर्लभा गतिः ॥
अहं वासं पुरा तत्र वर्षाणा मधिकं शतम् ॥१३॥
कृतवांश्च महाराज मन्दारे चक सन्निधौ ॥
वशिष्ठः कौशिकश्चापि दुर्वासा नारद स्तथा ॥१४॥
गौतमो याज्ञवल्क्यश्च बालिश्च महातपा ॥
अत्र ते कथयिष्यामि कथामेका मपुरातनीम् ॥१५॥

श्री विष्णु भगवान् को देख प्राणी पाप से छुट जाता है। इस चक्रावर्त के समीप पण्डित लोगों को उचित है कि पितृश्राद्ध करें ॥१०॥ वहाँ पर श्राद्ध करने से कोटि वर्ष तक पितृगण तृप्त रहते हैं। हे भूपति मैंने उसके माहात्म्य को आप से कहा ॥११॥ भगवान् के अनेकों जन्म चरण कमल का ध्यान करने से लोगों को श्री विष्णु भगवान् का परम पद मिलता है; किन्तु वहाँ पर मरने से एक ही जन्म में वह गति मिल जाती है ॥१२॥ वह भगवान् जहाँ पर स्वयं विराजमान हैं वहाँ पर कौन सी गति दुर्लभ हो सकती है? मैंने वहाँ पर सौ वर्ष से अधिक दिनों तक वास किया था ॥१३॥ इसी चक्रावर्त्त के समीप वसिष्ठ मुनी, विश्वामित्र, दुर्वासा नारद, गौतम, याज्ञवल्क्य, महातपोधन बालि आदि ने

यस्या: श्रवणमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते ॥
असीत्पुरा महाराज पद्मनाभो महा मुनिः ॥२६॥
दैवात्स् समागत स्त्वात्र मन्दारे नृपसत्तम् ॥
दृष्ट्वाति रुचिरं स्थानं सजलं कन्दरं शुभम ॥२७॥
चक्रपुष्करिणी तीरे सोऽप्य तप्यन् महत्तपः ॥
दयायुक्तो निराहार स्सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥१८॥
आत्मवत् सर्वभूतेषु पश्यन विषय निष्पृहः ॥
सर्वभूत हितेशान्तः सर्वद्वन्द्व विवर्जितः ॥१९॥
वर्षाणि कतिचित् सोऽयं जीर्ण पर्णाशनोऽभवत् ॥
कश्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ॥२०॥

बहुत दिनों तक वास किया था ॥१४॥ इस विषय में
मैं एक पुरानी कथा कहता हूं ॥१५॥ हे महाराज
प्राचीन कालमें पद्मनाभ नाम के एक मुनी थे। वह
दैव योग से मन्दार पर्वत पर आये ॥१६॥ उसने
यहां पर मनोहर जलपूर्ण कन्दरा तथा कन्दमूल देखकर ॥१७॥
चक्रावर्त्त के तीर के समीप महा तपस्या की। दया से युक्त,
निराहार, सत्यवादी, जितेंद्रिय ॥१८॥ विषय वासना से निस्पृह
आत्मवत् समस्त प्राणी को देखते हुये तथा समस्त प्राणि-
यों का कल्याण करते हुये सब प्रकार के द्वन्द्व से रहित
हो ॥१९॥ कितने दिनों तक पुराना पत्तों का भोजन कर,
कुछ दिनोंतक जल पीकर तथा कितने दिनोंतक वायु पीकर
रहे ॥२०॥ इस प्रकार बारह वर्ष पर्य्यन्त पद्मनाभ नाम के

एवं द्वादशवर्षाणि पद्मनाभो महामुनिः ॥
अतप्यत तपोघोरं देवैरपि सुदुष्करम् ॥२१॥
अथ तत्तपसा तुष्टो भगवान् मधुसूदनः ॥
प्रत्यक्षतां गतास्तस्य शङ्ख चक्र गदाधरः ॥२२॥
विकचाम्बुज पत्राक्षः सूर्यकोटि समप्रभः ॥
दृष्ट्वा चैत्रं रमानाथं रमयासह संयुतः ॥२३॥
नागेन्द्रं प्रियमाणश्च स्तोतुं समुप चक्रमे ॥
नमो देवाधि देवाय नमस्त्रैलोक्य रक्षिणे ॥
मन्दाराद्रि निवासाय मन्दारेशाय ते नमः ॥२५॥
नमः कल्मष नाशाय नमः स्त्रैलोक्य बान्धवे ॥
वासुदेवाय देवाय मन्दारेशाय ते नमः ॥२६॥

मुनी ने जो देवताओं से भी दुर्लभ उसी प्रकार की
तपस्या की ॥२१॥ अनन्तर उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर
शंख, चक्र, गदा, पद्म, लेकर श्री मधुसूदन भगवान् प्रकट
हुये ॥२२॥ विकशित कमल पत्र सदृश, कोटि सूर्य्य सदृश
कान्तिवाले लक्ष्मी से युक्त, रमानाथ श्री मधुसूदन भगवान्
को देख पद्मनाभ मुनि उनकी स्तुति करने लगे ॥२४॥
पद्मनाभ मुनी बोले, हे देवाधिदेव, हे तीनों लोकोंके रक्षक,
हे मन्दार पर्वत पर वास करने वाले, हे मन्दारेश, आपको मैं
प्रणाम करता हूं ॥२५॥ हे पापनाशक, हे तीनों लोकों के बन्धु,
हे वासुदेव, हे देव, हे मन्दारेश, आप को मैं प्रणाम करता हूं २६

नमस्त्रैलोक्य नाथाय भक्ताभीष्ट प्रदायिने ॥
प्रणत क्लेशनाशाय मन्दारेशाय ते नमः ॥२७॥
नमो विश्व स्वरूपाय विश्वरक्षाय ते नमः ॥
शिव ब्रह्मादि देवाय मन्दारेशाय ते नमः ॥२८॥
नमः कमलनेत्राय पद्मनाभाय ते नमः ॥
दुष्ट राक्षस संहर्त्रे मन्दारेशाय ते नमः ॥२९॥
भक्त प्रियाय देवाय देवानाम्पतये नमः ॥
प्रणतार्तिविनाशाय मन्दारेशाय ते नमः ॥३०॥
नमो वेदान्त वेद्याय योगिनाम्पतये नमः ॥
भक्तानां पाप संहर्त्रे मधुघ्नाय नमोनमः ॥३१॥
कैटभारे नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं रमापते ॥
त्राहिमां कमलाकान्त दुस्सहाद्भवसागरात् ॥३२॥

हे तीनों लोकों के नाथ, हे भक्तों की अभीष्ट सिद्धि करने वाले, हे प्रणत के क्लेशनाशक, हे मन्दारेश, आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥२७॥ हे समस्त विश्वका भरण पोषण करने वाले, हे विश्वस्वरूप, हे विश्वरक्षक, हे शिव तथा ब्रह्मादिकों के देव, हे मन्दारेश, आप को मैं प्रणाम करता हूं ॥२८॥ हे भक्तों के प्रिय करने वाले, हे देवों के देव, हे प्रणतके क्लेशनाशक हे मन्दारेश, आप को मैं प्रणाम करता हूं ॥३०॥ हे वेदान्त के ज्ञाता, हे योगियों के पति, हे भक्तों के पापनाशक, मधु दैत्य को मारने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥३१॥ हे कैटभके शत्रु, हे रमापति; हे कमलाकान्त, इस दुस्सह संसार रूपी समुद्रसे हमारा त्राण कीजिये ॥३२॥

कपिलदेव उवाच

श्रुत्वा स्तोत्रमिदं साधो मन्दारेशो महाप्रभुः ॥
सन्तोषपरमम्प्राप्य वरन्दातुं रमापतिः ॥३३॥
पद्मनाभं द्विजवरं शान्तं धर्म्म परायणम् ॥
सुधा धारोपमं वाक्य मब्रवीत् पुरुषोत्तमः ॥३४॥

श्रीभगवानुवाच

द्विजवर्य्य महाभाग मत्पाद कमलार्च्चक ॥
चक्रतीर्थस्य तीरेत्व माकल्पं पूजयन्वस ॥३५॥
एतत्प्रारब्ध भोग्यान्ते मत्स्वरूप मवाप्स्यसि ॥
इत्युक्त्वा भगवान् विष्णु स्तत्रैवान्तरधीयत ॥३६॥
अन्तर्धानि गते विष्णौ मन्दारेशे जगद्गुरौ ॥
चक्रावर्त्तस्य तीरेतु पद्म नाभो ऽवसत्सुधीः ॥३७॥

श्री कपिल मुनी बोले, हे राजा परीक्षित, इस प्रकार पद्मनाभ मुनी की स्तुति सुन कर मन्दारेश श्री मधुसूदन भगवान ने प्रसन्न होकर पद्मनाभ मुनी को शान्त तथा धर्म्म-परायण देख अमृतधाराके समान, श्री पुरुषोत्तम बोले ॥३३॥ ॥३४॥ हे द्विजवर हे महाभाग, मेरे चरण कमलके पूजक चक्र पुस्करणी तीर में आकल्प पूजन करते हुये वास करो, तब इस जन्म का प्रारब्ध भोग कर मेरे स्वरूप को प्राप्त करोगे ॥३५॥ ऐसा कह कर श्री विष्णु भगवान वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गये ॥३६॥ मन्दारेश, श्री मधुसूदन भगवान के अन्तर्ध्यान होने पर श्री पद्मनाभ नामक मुनी उसी चक्रावर्त्त के तीर पर वास करने लगे ॥३७॥

इति श्रीमन्दार मधुसूदन माहात्म्ये कपिलपरीक्षित सम्वादे चक्रावर्त्तस्य माहात्म्य कथनन्नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

सूत उवाच

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं शृणु शौनक ॥
यथा चास्या भवन्नाम चक्रावर्त्तं महामुने ॥१॥
अन्तर्धाने गते विष्णौ चक्र पुष्करणी तटे ॥
ततः कालान्तरे कश्चिद्राक्षसो भीमदर्शन ॥२॥
आययौ भक्षितुं क्रूरः क्षुधया परिपीड़ितः ॥
मुनिं न पद्मनाभाख्यं नारायण परायणम् ॥३॥
ब्राह्मणं तरसा सोऽयं राक्षसो जगृहे तदा ॥
गृहीतः सहसानेन विप्रो वेदाङ्ग पारगः ॥४॥
प्रचुक्रोश दयाम्भोधि मापन्नानाकपरायणम् ॥
नारायणं चक्रपाणिं रक्ष रक्षेति वैमुहुः ॥५॥
मन्दारं शदया सिन्धो शरणागत वत्सल ॥
त्राहिमां पुरुषव्याघ्र रक्षा वश मुपागतम् ॥६॥

सूतजी बोले, हे शौनक, चक्रतीर्थ का दूसरा माहात्म्य

कहता हूं, जिस प्रकार इसका नाम चक्रावर्त्त पड़ा, वह भी कहता हूं ॥१॥ श्री विष्णु भगवान के अन्तर्ध्यान होने पर चक्रावर्त्त के तट पर क्षुधा से व्याकुल बड़े भयङ्कर एक राक्षस ने पद्मनाभ मुनी को खाने के लिये आया ॥२॥ नारायण में परायण पद्मनाभ नामका मुनीको हठात् धर लिया ॥३॥ वेदाङ्ग पारग ब्राह्मण कुलोद्भव पद्मनाभ हठात् राक्षस से धरे जाने पर दया के समुद्र आपन्न को त्राण करने में परायण चक्रपाणि श्री विष्णु भगवान की उच्च स्वर से पुकार करने लगे ॥४,५॥ हे मन्दारेश, हे दया

लक्ष्मी कान्त हरे विष्णो वैकुण्ठ गरुड़ध्वज ॥
मां रक्ष राक्षसाक्रान्तं ग्राहाक्रान्तं गजं यथा ॥७॥
दामोदर नमस्तुभ्यं जगन्नाथ नमोऽस्तुते ॥
हिरण्याक्ष विनाशाय प्रहलाद क्लेश नशिने ॥८॥
रक्षित्रे सर्व जन्तूनां मधुकैटभ मर्द्दिने ॥
त्राहि त्राहि जगन्नाथ मधुसूदन ते नमः ॥९॥
इत्येवं स्तुवतस्तस्य पद्मनाभस्य वैमुने ॥
स्वभक्तस्य भयं ज्ञात्वा चक्रपाणि र्दयानिधिः ॥१०॥
स्वचक्रं प्रेषयामास भक्त रक्षणकारणात् ॥
प्रेरितं विष्णु चक्रन्तज्जिष्णुना प्रभविष्णुना ॥११॥

के समुद्र हे शरणागत वत्सल, हे पुरुष व्याघ्र राक्षस के वशीभूत हमारी रक्षा कीजिये ॥६॥ लक्ष्मीकान्त, हे हरे हे विष्णो उसी प्रकार हे वैकुण्ठ, हे गरुड़ध्वज, जिस प्रकार ग्राह से ग्रसित अपने गज का उद्धार किया था, उसी प्रकार दुष्ट राक्षस से ग्रसित हमारा त्राण कीजिये ॥७॥ हे दामोदर, हे जगन्नाथ, हे हिरण्याक्षको वध करने वाले, हे प्रह्लाद का दुःख नाश करने वाले, आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥८॥ हे समस्त प्राणी के रक्षक, हे मधुकैटभ को मर्द्दन करने वाले, हे जगन्नाथ, हे मधुसूदन, हमारी रक्षा कीजिये। आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥९॥ इस प्रकार पद्मनाभ मुनी के स्तुति करने पर अपना भक्त जान श्री विष्णु भगवान ने अपना चक्र भेजा ॥१०॥ पद्मनाभ का भय दूर करने के लिये श्री विष्णु

आजगामाथ वेगेन चक्र पुरस्करिणी तटे ॥
अनन्तादित्य संकाश मनन्तार्चि समप्रभम् ॥१२॥
महाज्वाला महा नादं महासुर विमर्दनम् ॥
दृष्ट्वा सुदर्शनं विष्णो राक्षसोऽथप्रदुद्रुवे ॥१३॥
द्रवमाणस्य तस्याशु सराक्षस्य सुदर्शनम् ॥
शिरश्च कर्त्त सहसा ज्वाला माला दुरा सदम् ॥१४॥
ततो विप्रवरो दृष्ट्वा राक्षसं पति तम्भुवि ॥
मुदा परमया युक्तस्तुष्टाव च सुदर्शनम् ॥१५॥

पद्मनाभ उवाच

विष्णु चक्र नमस्तेऽस्तु विश्वरक्षण दीक्षितः ॥
नारायण कराम्भोज भूषणाय नमोऽस्तुते ॥१६॥

भगवान् का भेजा हुआ चक्र चक्रावर्त्त कुण्ड के समीप बहुत वेग से आया ॥१२॥ अनन्त सूर्य्य के समान तेजस्वी, अनन्त अग्नि के समान कान्तिमान् ॥१२॥ महा ज्वाला से युक्त, महा शब्द करते हुये महा राक्षस को मर्दन करने वाला, श्री विष्णु भगवान का सुदर्शन देख राक्षस भागा ॥१३॥ भागते हुए राक्षस को देख सुदर्शन चक्र द्वारा बहुत वेग से राक्षस का शिरश्छेदन किया ॥१४॥ अनन्तर ब्राह्मण श्रेष्ठ पद्मनाभ मुनी राक्षस को पृथ्वी पर गिरा हुआ देख कर परमानन्दित होकर सुदर्शन की स्तुति करने लगे ॥१५॥ पद्मनाभ मुनी बोले, हे सुदर्शन, हे विष्णु भगवान् से संसार की रक्षा करने के लिये नियुक्त श्रीनारायण के कर कमल में रहने

युद्धेष्वसुर संहार कुशलाय महारव ॥
सुदर्शन नमस्तुभ्यं भक्तानामार्त्ति नाशन ॥१७॥
रक्ष मां भयसम्विग्नं सर्वस्मादपि कल्मषात् ॥
स्वामिन् सुदर्शन विभो चक्रतीर्थे सदा भवान् ॥१८॥
सन्निधेहि हितायत्वं नगतो मुक्तिकांक्षिणः ॥
ब्राह्मणे नैव मुक्तन्तद्विष्णु चक्रं मुनिश्वर ॥१९॥
तमाह पद्मनाभाख्यं प्रीणयन्निव सौहृदात् ॥

सुदर्शन उवाच

पद्मनाभ महापुण्यं चक्रतीर्थं मनुत्तमम् ॥२०॥
अस्मिन् वसामि सततं लोकानां हितकाम्यया ॥
त्वत्पीडा परिचिन्त्याहं राक्षसेन दुरात्मना ॥२१॥

वाले सुदर्शन, आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥१६॥ हे युद्ध में असुरों को संहार करने में कुशल महा शब्द करने वाले भक्त के दुःख नाशक सुदर्शन आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥१७॥ भय से भीत समस्त पापों से हमारी रक्षा कीजिये। हे स्वामी, सुदर्शन, हे विभो चक्रतीर्थ में सदैव आप वास कीजिये ॥१८॥ हे मुनीश्वर पद्मनाभ नामके मुनिके ऐसा कहने पर सुदर्शन सुहृदय भाव से पद्मनाभ नाम के मुनि से प्रसन्न होकर कहने लगे ॥१९॥ सुदर्शन बोले, हे पद्मनाभ महापुण्य जनक चक्रतीर्थ के समीप लोक रक्षार्थ मैं सदा वास करूंगा ॥२०॥ हे विप्र आपकी पीड़ा को देख दुरात्मा राक्षस श्री विष्णु भगवान् से भेजे जाने पर मैं

प्रेरितो विष्णुना विप्र त्वरया समुपागतः ॥
त्वत्पीडकोऽपि निहतो मयायं राक्षसाधमः ॥२२॥
मोचितस्त्वं भयादस्मात् त्वंहि भक्तो हरेः सदा ॥
चक्रतीर्थे महापुण्ये सर्वपाप हरेद्विज ॥२३॥
सततं लोक रक्षार्थं सन्निधानं करोमि ते ॥
अस्मिन्मत्सन्निधानात्ते तथान्येषा मपिद्विज ॥२४॥
इतः परन्न पीडास्याद् भूत राक्षस सम्भवा ॥
अस्मिन् मत्सन्निधानात्स्यात् चक्रतीर्थ मितिप्रथा ॥२५॥
स्नानं येऽत्र प्रकुर्वन्ति चक्रतीर्थे विमुक्तिदे ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वंशजाः सर्व एवहि ॥२६॥
विधूत पापा यास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
इत्युक्त्वा विष्णुचक्रन्तत् पद्मनाभस्य पश्यतः ॥२७॥

शीघ्र तेरे रक्षार्थ आया हूँ ॥२१॥ तुमसे पीड़ा देने वाला राक्षस भी मारा गया ॥२२॥ इस भय से तुम मुक्त हुए। श्री विष्णुभगवान् के आप सदैव से भक्त हैं। हे द्विज समस्त पाप नाशक महापुण्य जनक चक्रतीर्थ में ॥२३॥ लोक रक्षार्थ सदा मैं वास करूंगा इस चक्रतीर्थ के समीप आप को तथा अन्यान्य भक्तों को आज से राक्षसादि जन्य पीड़ा नहीं होगी ॥२४॥ मेरी सान्निधि के कारण आज से इसका नाम चक्रतीर्थ लोकमें विख्यात् होगा ॥२५॥ जो भक्ति पूर्वक इस चक्रतीर्थ में स्नान करेगा उसके पुत्र पौत्रादिक पाप से छूटकर श्री विष्णु भगवान् के गोलोक को जायेंगे ॥२६॥

अन्येषामपि विप्राणां पश्यतां सहसा द्विज ॥
चक्र पुष्करिणीन्तत् प्राविशत्पाप नाशनम् ॥२८॥

सूत उवाच ॥

चक्र तीर्थस्य माहात्म्यं मुने पाप प्रणाशनम् ॥
युष्माकं कथितं सर्वं शौनकाद्या स्तपोधनाः ॥२९॥
चक्रतीर्थसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥
अत्र स्नाता नराविप्रा मोक्षभाजो न संशयः ॥३०॥
कोऽत्र ये विद्मध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः ॥
चक्र तीर्था भिषेकस्य प्राप्नोतिफल मुत्तमम् ॥३१॥

पद्मनाभ मुनि को देखते तथा अन्यान्य भक्त व्यक्तियों के समक्ष सुदर्शन चक्र चक्रतीर्थ में घुस गये ॥२७॥ ॥२८॥ सूत जी बोले हे शौनकादि तपोधन समस्तपापोंको नाश करनेवाला चक्रतीर्थ का माहात्म्य मैंने आपलोगों से कहा ॥२९॥ चक्र तीर्थ के समान न कोई, तीर्थ हुआ न होगा। इस में स्नान करनेवाले मोक्ष के भागी होंगे ॥३०॥ जो इस तीर्थ का माहात्म्य सुनेगा या सुनावेगा उस को चक्रतीर्थ का अभिषेक जन्य फल होगा ॥३१॥

इति श्री स्कान्दादि महापुराणे सूतशौनक सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये चक्रतीर्थ माहात्म्य कथनन्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥३०॥१४॥

परीक्षित उवाच

धन्योऽसि मुनिशार्दूल वेद वेदाङ्ग पारग ॥
साश्चर्यं मिदमाख्यातं चक्रतीर्थस्य वैभवम् ॥१॥
इदानीं चान्तरिक्षस्य गङ्गामाहात्म्य मुत्तमम् ॥
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ परङ्कौतूहलं मम ॥२॥

कपिलदेव उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि वियद्गङ्गास्तु वैभवम् ॥
यस्याः श्रवणमात्रेण मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥३॥
ततोऽन्तरीक्ष गुहाख्य तथैव प्रयतात्मना ॥
गगनाख्यं भवता भूप नामधारा विभूषितम् ॥४॥
तत्र स्नात्वा महाराज स्वर्गमुक्ता नसंशयः ॥
ध्रुवलोकं समायाति ततोमुक्तिञ्च विन्दति ॥५॥

राजापरीक्षित बोले हे वेद वेदाङ्गपारगमुनि शार्दूल आप धन्य हैं। आपने परमाश्चर्यजनक इस चक्रतीर्थ का माहात्म्य सुनाया ॥१॥ हे मुनी श्रेष्ठ सम्प्रति आकाशगङ्गा के माहात्म्य को सुननेकी परम उत्कण्ठा है कृपाकर कहिये ॥२॥ कपिलदेवजी बोले हे राजापरीक्षित जिसके श्रवण मात्र से प्राणीमात्र मुक्तिके भागी होते हैं ऐसे आकाश गङ्गा का माहात्म्य कहता हूं आप सुनिये ॥३॥ चक्रतीर्थ से उत्तरवायव्य कोणमें नाम धारा से भूषित आकाश गङ्गा है ॥४॥ हे महाराज परीक्षित वहांपर जो कोई भक्तिपूर्वक स्नान करता है वह स्वर्गसे मुक्त होकर ध्रुवलोक जाकर

उक्तोदक मार्गेण शक्याभावा नरेश्वर ॥
तत्र स्नानन्तु कर्तव्यं कथञ्चिच्च विशेषतः ॥६॥
यथाञ्जनसुतादेवी गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥
तथान्तरिक्षगा गङ्गा पाप नाशयति ध्रुवम् ॥७॥
अत्र ते कथयिष्यामि सेतिहासं पुरातनम् ॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तोभवति मानवः ॥८॥
आसीत् पुरामहाराज रामभक्तो सत्तमः ॥
रामभद्र इतिख्यातो वैष्णवानां शिरोमणिः ॥९॥
सैकदा तीर्थयात्रायां भ्रान्त्वा देशाननेकशः ॥
देवात्समागतश्चात्र मन्दारे पर्वतोत्तमे ॥१०॥
कुर्वाणो वसतिं तत्र कन्दमूलफलाशनः ॥
चिरराम तत्रैव ध्यायन् श्री पुरुषोत्तमम् ॥११॥

परम मुक्तिको पाता है ॥५॥ हे नरेश्वर कदाचित शक्ति न होय तो उससे जल लाकर स्नान करे ॥६॥ जिस प्रकार उत्तरगामिनी गङ्गा पाप का नाश करती है उसी प्रकार आकाशगङ्गा भी पापका निश्चय नाशकरती है ॥७॥ इसविषय में मैं ऐतिहासिक कथा कहता हूँ ॥ जिसके श्रवण मात्रसे प्राणिमात्र समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥८॥

हे महाराज परीक्षित, पहले समय में श्री रामचन्द्रजी का परम भक्त रामभद्रमुनी थे ॥९॥ वे मुनि तीर्थ यात्रा के व्याज से अनेक देशोंमें भ्रमण करते २ दैव योगसे मन्दार में आये ॥१०॥ वहां पर कन्द मूल से युक्त परम

तत्र चैकदिनं राजन् कुण्डे मन्दारसंज्ञके ॥
स्नात्वा नित्य क्रियांकृत्वा प्रार्थयित्वा नगोत्तमम् ॥१२॥
आरुरोह ततोराजन् रामभद्रो महामुनिः ॥
मार्गे नानाप्रकारांश्च देवादीन् पश्यतो मुने ॥१३॥
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा प्रणम्याथ चक्रतीर्थस्य सन्निधौ ॥
आजगाम महायोगी रामभद्रोऽति हर्षितः ॥१४॥
दृष्ट्वा मनोहरंकुण्डं चक्रावर्त्तं ततोमुनिः ॥
स्नात्वा विधिविधानेन नित्यकृत्यं समाप्य च ॥१५॥
पूजयामास देवेशं शेषतल्पे समाश्रितम् ॥
शंख चक्र गदा पद्म वनमाला विभूषितम् ॥१६॥

मनोहर मन्दार क्षेत्र को देख कर श्री पुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान करते हुये मन्दारक्षेत्रमें विचरण करने लगे ॥११॥ हे राजा परीक्षित पहले मन्दार कुण्ड में एकदिन स्नानादिक कर नित्यकृत्य समाप्तकर पर्वत श्रेष्ठ मन्दारकी प्रार्थना कर रामभद्र मुनी पर्वतपरचढ़ गये ॥१२॥ रास्ते में अनेक प्रकार के देवों को देखकर तथा स्पर्श करते हुये चक्रावर्त्त कुण्ड के समीप आये ॥१३॥ वहाँ आकर महा योगी रामभद्र मुनी बहुत हर्षित हुये ॥१४॥ इस मनोहर चक्रावर्त्त को देख विधि युक्त स्नानादिक तथा नित्यकृत्य समाप्त कर ॥१५॥ शेष शय्यापर स्थित शंख, चक्र, गदा, पद्म, का धारण करतेहुये वनमाला से भूषित श्री भगवान की पूजा कीये ॥१६॥

ततो गत्वान्तरिक्षस्य समीपे मुनि पुङ्गवः ॥
दृष्ट्वा तत्रस्थितङ्गंगा ताम्रधारा विभूषिता ॥१७॥
स्नात्वा तज्जलमानीय पूजयित्वा रमापतिम् ॥
तपश्चकार तत्रैव रामभद्रो महामुनिः ॥१८॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्नि मध्यस्थो विष्णुध्यान परायणः ॥
जपन्नष्टाक्षरं मन्त्रं हृदिध्यायन् रमापतिम् ॥१९॥
सर्वभूत हितो दान्तः सर्वद्वन्द्व विवर्जितः ॥
वर्षा स्वाकाशगोनित्यं हेमन्तेषु जलेशयः ॥२०॥
वर्षाणि कतिचित्सोऽय जीर्णपर्ण सितो मुनिः ॥
कश्चित्काले जलाहारी वायुभक्षः कियत्समाः ॥२१॥
इत्थंभाति कठिनं घोरं तपस्यन्तं महामुनिम् ॥
प्रत्यक्ष भगवद्देवो मन्दारेशो महा प्रभुः ॥२२॥

अनन्तर आकाश गङ्गा के समीप मुनि श्रेष्ठ रामभद्र जाकर वहाँ पर ताम्र धारा से भूषित आकाश गङ्गा को देखा ॥१७॥ वहाँ से जल लाकर स्नान कर रमापति श्री भगवान की पूजा कर महा मुनि रामभद्र ने वहाँ पर तपस्या करने लगे ॥१८॥ ग्रीष्म समय में पञ्चाग्नि धुनी लगाये श्री विष्णु भगवान् का हृदय में ध्यान करते हुये अष्टाक्षर मन्त्र जपते हुये ॥१९॥ समस्त प्राणी का कल्याण करते हुये समस्त द्वन्द से रहित वर्षा समय में आकाश गामी शीत में जल शय्या पर स्थित ॥२०॥ बहुत वर्ष तक जीर्णपत्र पर भोजन किया ॥ कुछ काल तक जल पीकर

अलसी कुसुम कान्तिं विद्युत्पुञ्ज निभाम्बरम् ॥
विकचाम्बुज पत्राक्षं सूर्यकोटि समप्रभम् ॥२३॥
किरीट मकुटाङ्गद छत्रचामर शोभितम् ॥
हार केयूर मुकुट कटकादि विराजितम् ॥२४॥
शंख, चक्र, गदा, पद्म धारिणं वनमालिनम् ॥
मन्दस्मितेन सकलं मोहयन्तं जगत्त्रयम् ॥२५॥
दृष्ट्वाति मुमुदे धीमान् रामभद्रोऽति धार्मिकः ॥
स्तुतिं नाना विध वाक्यैः कारयामास वै मुनिः ॥२६॥

रामभद्र उवाच

नमः परेशाय नमोऽस्तु विधात्रे नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये विधात्रे ।
नमो जगद्वन्द्य सुरारि हन्त्रे नमोऽस्तु मन्दार निवास भूमने ॥२७॥

समस्त वायु ... कर रहे ॥२१॥ इस प्रकार अति कठि तपस्या राम भद्र मुनिको देख मन्दारेश श्री मधुसूदन भग वान् प्रत्यक्ष हुये ॥२२॥ चिकना के फूलके समान कान्तिमा विद्युतके समान दूर के सदृश पीताम्बर धारण किये, विकसि कमलके समान नेत्र वाले, कोटि सूर्य सदृश तेजस्वी ॥२३॥ मा थे बंधे हुये छत्र चामर से और हार केयूर कटक मुकु टादिक से शोभित ॥२४॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, को धारण कि हुये वनमाला से भूषित, मन्दहास्य से तीनों लोकों मोहित करते हुये प्रत्यक्ष हुये ॥२५॥

ऐसा श्री रूप का देख राम भद्र मुनि विविध प्रकार वाक्य से स्तुति करने लगे ॥२६॥ राम भद्र बोले हे प

नमोऽस्तु सूर्येन्दु त्रिलोचनाय नमोऽस्तु ब्रह्मादिभि वन्दिताय ॥
नमो जगज्जीवन कारणाय भक्तार्ति हन्त्रे परमेश्वराय ॥२८॥
यो नाम जात्यादि विकल्प हीनः समस्त दोषैरपि वर्जितोयः ॥
समस्त संसार भयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशनाय ॥२९॥
वेदान्त वेद्याय रमेश्वराय मन्दार वासाय मनोहराय ॥
नमो नमः सब जगर्ति हारिणे नारायणायामित विक्रमाय ॥३०॥
नमोऽस्तु दैत्यान्तक विश्वबीज नमोऽस्तु पृथ्वीपतये वृषाय ॥
नमो मधुघ्नाय च कैटभारे मन्दार वासाय नमो नमस्ते ॥३१॥

हे लक्ष्मी के पति हे विधाता, हे जगत के वन्द्य, हे देव शत्रु के नाश करने वाले हे मन्दार में निवास करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥२७॥ हे सूर्य चन्द्र सदृश नेत्र वाले हे ब्रह्मादि से वन्दनीय, हे जगज्जीवन के कारण भक्तों के दुःख दूर करनेवाले परमेश्वर मैं आप को नमस्कार करता हूं ॥२८॥ जो नाम जाति आदि विकल्प से हीन है समस्त दोषों से रहित समस्त संसार के भय नाशक और दैत्य नाशक मैं तुम्हे नमस्कार करता हूं ॥२९॥ हे वेदा-न्त वेद्य हे रमेश्वर, हे मन्दार में निवास करने वाले हे मनो हर हे समस्त प्राणियों के दुःख नाशक, हे नारायण; हे अमित विक्रम. मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥३०॥ हे दैत्यान्तक, हे विश्व के बीज, हे पृथिवी पति, हे वरको देने वाले, हे मधु नाशक को मारने वाले, हे कैटभ के शत्रु हे मन्दार में वास करने वाले, आप को मैं नमस्कार करता हूं' ॥३१॥ इस प्रकार

स्तुत्वैवं पुण्डरीकाक्षं मन्दारेशं जगद् गुरुम् ॥
रामभद्रोऽति धर्म्मात्मा मौन माश्रित्य तस्थिवान् ॥३२॥
श्रुत्वा स्तोत्रं ततो विष्णु स्मुनिना यत्कृत स्ततः ॥
अवाप परमाम्प्रीति मन्दारेशो महाप्रभुः ॥३३॥
अथालिङ्ग्य मुनिन्द्रेवो राम भद्रं नृपोत्तम ॥
बभाषे प्रीतिसंयुक्तो मधुकैटभ मर्द्दनः ॥३४॥
श्री भगवानुवाच
प्रसन्नोऽहं महाभाग स्तोत्रेणानेन सुव्रत ॥
वरम्वरय भद्रन्ते वरदोऽहं समागतः ॥३५॥
रामभद्र उवाच
नारायण रमाकान्त मन्दारेश जगन्मय ॥
जनार्द्दन जगद्धामन् गोविन्द पुरुषोत्तम ॥३६॥

पुण्डरीकाक्ष मन्दारेश जगत का गुरुको स्तुति कर राम भद्र मौन हो बैठा ॥३२॥ इस मुनि से किया स्तोत्र सुन कर मन्दारेश परम प्रसन्नता को प्राप्त किये ॥३३॥ अनन्तर रामभद्र मुनीको हृदय से लगा कर हे नृपोत्तम तब मधुकैटभ को मर्द्दन करने वाले प्रीति पूर्वक बोले ॥३४॥ हे राम भद्र आपकी स्तुति से मैं प्रसन्न हूं, वर मांग, मैं वर देने के लिये तैयार हूं ॥३५॥ राम भद्र मुनी बोले, हे नारायण, हे रमाकान्त, हे मन्दारेश हे जगन्मय हे जनार्द्दन हे जगके धाम, हे गोविन्द, हे पुरुषोत्तम, ॥३६॥ आप के दर्शन से मैं कृतार्थ हूं । हे जगत में व्यापक

त्वद्दर्शनात् कृतार्थोऽहं मन्दारेश जगद्विभो ॥
पाहिमे कमलाकान्त त्वामहं शरणागतः ॥३७॥
यन्नवेत्ति भवो ब्रह्मा यन्नवेत्ति त्रयीतथा ॥
दृष्टवानस्मि परमात्मानं किमस्मा दधिक म्परम् ॥३८॥
योगिनो यन्नपश्यन्ति यन्न पश्यन्ति कर्म्मठाः ॥
पश्यामि परमात्मान किमस्मा दधिक म्परम् ॥३९॥
यन्नाम स्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपिच ॥
मुक्ति म्प्रयान्ति मनुजा स्तम्पश्यामि जनार्द्दनम् ॥४०॥
एतेनच कृतार्थोऽस्मि मन्दारेश जगद् गुरो ॥
त्वत्पाद कमले युग्मे रतिरस्तु सदामम ॥४१॥

हे कमलाकान्त, आपका मैं शरणागत हूं ॥३७॥ जो आप को महादेव और ब्रह्मा जो जानते हैं । ऐसे परमात्म स्वरुप को मैंने जाना इससे और बढ़कर हमें क्या प्राप्त हो सकता है ॥३८॥ जिस आपको योगी लोग नहीं देखते तथा कर्म्मठी भी नहीं जानते, ऐसे आपको मैंने देखा, इससे अधिक हमें क्या चाहिये ॥३९॥ जिन के नाम स्मरण मात्र से महापातकी मुक्ति को पाते हैं । ऐसे आप को मैंने देखा ॥४०॥ हे जगत के गुरू हे मन्दारेश, आप के दर्शन ही से मैं कृतार्थ हूं और आप के चरणरूपी जो युगल कमल हैं उन मे मेरी भक्ति हो । यही मेरा वर-दान है ॥४१॥

श्री भगवानुवाच

मयि भक्तिदृढा तेऽस्तु रामभद्र महामुने ॥
शृणु चापरं वाक्यं मुच्यते येन बन्धनात् ॥४२॥
मेषसंक्रमणे भानो चित्रानक्षत्र संयुते ॥
पौर्णमास्यां गङ्गायां स्नानं कुर्वन्ति ये नराः ॥४३॥
ते यान्ति परमं धाम पुनरावृत्ति वर्जितम् ॥
वियद् गङ्गा समीपे त्वं वासं कुरु महामते ॥४४॥
एतच्छरीरभोग्यान्ते मत्स्वरूपं समाप्स्यसि ॥
बहुना किमिहोक्तेन वियद्गङ्गाजले शुभे ॥४५॥
स्नान्ति ये वै जनास्सर्वे ते च भागवतोत्तमाः ॥
भवन्ति मुनिशार्दूल नात्रकार्या विचारणा ॥४६॥

श्री भगवान बोले, हे राम भद्र महा मुना मेरे चरण में आपकी अचल भक्ति हो और दूसरी बात मैं कहता हूं जिससे बन्धन मुक्त होगा सुनो ॥४२॥ चित्रा नक्षत्र से युक्त मेष राशि में सूर्य के होने पर जिस दिन पूर्णिमा तिथि होगी उस दिन जो कोई आकाशगङ्गा में स्नान करेगा वह संसारिक आवागमन से रहित होकर परम धाम को जायगा ॥४३॥ हे महा मतिमान तुम आकाशगङ्गा के समीप वास करो ॥४४॥ इस जन्म के प्रारब्ध को भोग कर मुक्ति पाओगे। विशेष मैं क्या कहूं। आकाशगङ्गा के सुन्दर जल में ॥४५॥ जो कोई स्नान करेगा वह हे मुनि शार्दूल संसार में भगवत भक्ति में सब से श्रेष्ठ गिना

इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः सोऽपि तत्रैव सन्निधात् ॥
रामभद्रो महाभाग वियद्गङ्गा तटे शुभे ॥४७॥

शृणु शौनक वक्ष्यामि मन्दारे मुनिसत्तम ॥
नृसिंहस्याथ माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
अन्तरिक्षासरित्कूले गुहायाम्मध्ये जगद्गुरुम् ॥
नृसिंहं विश्वसंहारं प्रभुं लक्ष्मीधरायुतम् ॥२॥
पूजनीय प्रयत्नेन सहितश्च प्रकाशनम् ॥
सम्पूज्य धूपगन्धाद्यैः मेरुर्भ भोग्येष पायसैः ॥३॥

जायगा। इसमें सन्देह नहीं ॥४६॥ कपिल देव राजा परीक्षित से कहने लगे, हे महाराज परीक्षित राम भद्र मुनी से श्री विष्णु भगवान् ऐसा कह कर स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये ॥ रामभद्र मुनी भी आकाश गङ्गा के तट पर आजी-वन तपस्या कर अन्त में श्री विष्णु भगवान के लोक को गया ॥४७॥ इति श्री स्कन्दादि महापुराणे परीक्षित कपिल सम्वादे मन्दार-मधुसूदन महात्म्ये वियद् गङ्गा महात्म्य कथनन्नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सूत जी बोले हे सौनक मन्दार में श्री नृसिंह जी का समस्तपापोंका नाश करनेवाला माहात्म्य मैं कहता हूं आप सुनिये ॥१॥ आकाश गङ्गा के पास में गुप्त स्थान में जगत के गुरु लक्ष्मी तथा पृथ्वी देवीसे युक्त विश्व संहार कर्ता श्री नृसिंहभगवान् को देखने ॥२॥ तथा प्रयत्न

नत स्य दुःख दारिद्र्यं संसारे मुनिसत्तमः ॥
अन्ते मुक्तिमवाप्नोति नृसिंहस्य प्रसादतः ॥४॥
नागार्जुनो नमस्कार्यो वासोदुर्वाससो यतः ॥
सर्वपाप विनिर्मुक्तो मानवो नात्रसंशयः ॥५॥

॥ शौनक उवाच ॥

भगवन् यत्त्वया ख्यातं पूजनं परमात्मनः ॥
नृसिंहस्यच देवस्य चतुर्वर्ग फलप्रदम् ॥६॥
कदा तस्यभवेत्पूजा केनैव विधिना मुने ॥
तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन् कथयस्वाशु कृपया ॥७॥
साधुपृष्टंत्वया साधो नृसिंहस्यच पूजनम् ॥
कथयामि समासेन सावधान मनाश्रृ ॥८॥

पूर्वक पूजन करनेसे समस्त पापोंका नाश होजाता है ॥ हे मुनिसत्तम धूप गन्धादिक तथा विविध प्रकारके भक्ष्य भोज्य से पूजन कर प्रीति बढ़ाता है उसको दुःख तथा दारिद्र नहीं होता है ॥३॥ अन्तमें श्री नृसिंह भगवान् की कृपासे मुक्तिभी मिलती है ॥४॥ और जहां दुर्वासामुनिका वास है वहांपर नागार्जुनको नमस्कार करने से मनुष्य समस्त पापसे छुटजाते हैं इसमें संशय नहीं ॥५॥ शौनक मुनी बोले हे सूतजी आपने जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को देनेवाले परमात्मा श्री नृसिंह देवजीकी पूजा बतलाई ॥६॥ हे ब्रह्मन कब किसविधि से उनकी पूजा होती है कृपा कर हमें बताइये ॥७॥

वैशाखेच चतुर्दश्यां शौरिवारेऽनि लक्षजे ॥
आद्यावतारः सिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः ॥९॥
तस्यां सम्पूज्य विधिवत् नरसिंहसमाहितः ॥
जन्मकोटि सहस्रंस्तु पापराशि सुसञ्चितः ॥१०॥
दह्यते तत्क्षणादेव तूलराशि रिवाग्निना ॥
पूर्वस्मिन्दिवसे साधो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥११॥
नियमा न्कारयेद्धीमान् शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥
अपरस्मिन्दिने प्रातः स्नात्वा सम्यग्विधानतः ॥१२॥
नित्य कृत्यादिकं कृत्वा ह्युपोष्य ;दिवसम्मुने ॥
प्रदोषसमये स्नात्वा हस्तौपादौ विशोधयेत् ॥१३॥

सूतजी बोले हे शौनक आपने बहुत अच्छी बात पूछी मैं संक्षेप रूपसे श्री नृसिंहभगवानकी पूजा विधि कहता हूं आप सावधान होकर सुनिये ॥८॥ वैशाख मास शुक्ल पक्ष चतुर्दशी शनिवार को आदिअवतार श्री नृसिंहजी का अवतार हुआ था ॥९॥ उस दिन सावधानतापूर्वक भक्ति भाव से पूजाकर नृसिंह भगवान्को प्रसन्न करे उसका कोटिजन्म का सञ्चित पाप दग्ध होता है जिस प्रकार रूईके समूहको क्षण मात्र में अग्निदग्ध करदेती है ॥१०॥ हे शौनक इस प्रकार क्रोधादिक जीत कर जितेंद्रिय होकर ॥११॥ शास्त्र-दृष्टि से नियम करे दुसरे दिन प्रातःकाल सविधि स्नान करे ॥१२॥ नित्या कृत्यादिक समाप्त कर दिनभर वास करे ॥ हे मुनि प्रदोषसमय में फिर स्नान कर हाथ पैर

संकल्प माचरेद्धीमान् स्वस्ति वाचनपूर्वकम् ॥
ततः सूक्तपठेद्दूर्वं नृसिंहस्य प्रयत्नतः ॥१४॥
गणेशादि पञ्चदेवान् पूजयित्वा प्रयत्नतः ॥
पुष्पमेकं गृहीत्वाथ ध्यायेच्छ्री पुरुषोत्तमम् ॥१५॥
प्रह्लादस्तं प्रथमं तत्र पूजयित्वा प्रयत्नतः ॥
प्रह्लादक्लेश नाशाय याहि पुण्याचतुर्दशी ॥१६॥
पूजये तत्प्रयत्नेन हरेः प्रह्लाद यत्नतः ॥
ध्यात्वा ततो नृसिंहञ्च पूजयेद्विधिना मुने ॥१७॥
ध्यानञ्चापि प्रवक्ष्यामि सावधान मनाभव ॥
ॐ माणिक्याद्रि समप्रभं निजरुचा संत्रस्त रक्षोगणम्
जानुन्यस्त कराम्बुजं त्रिनयनं रत्नोल्लसद्भूषणम् ॥
बाहुभ्यां धृत शंख चक्रमनिशं दंष्ट्रोग्र वक्त्रोल्लसत्
ज्वाला जिह्वमुदार केशरचयं वन्दे नृसिंहं विभुम् ॥१८॥

होकर ॥१३॥ स्वस्तिवाचन पूर्वक संकल्प करे अनन्तर श्री नृसिंह भगवान् का प्रयत्न से सूक्तपाठ करे ॥१४॥ पहले यत्नपूर्वक गणेशादि पञ्चदेवता की पूजाकर पुष्पफूल ले पुरुषोत्तम श्री नृसिंह भगवानका ध्यान करे ॥१५॥

प्रह्लादके क्लेशको नाश करनेवाली जो पुण्या चतुर्दशी है उसमें पहले प्रह्लाद की पूजा करके तब फिर यत्न पूर्वक श्री नृसिंह भगवान की पूजा करे ॥१६॥ पहिले ध्यान करके तब शास्त्र के अनुसार नृसिंहजी की पूजा करे ॥१७॥ ध्यान

एवंध्यात्वा ततोधीमान् षोडशै रुपचारकैः ॥
नृसिंहं पूजयेद्भक्त्या सलक्ष्मीकं धरायुतम् ॥१९॥
चन्दनं शीतलं दिव्यं चन्द्रकुङ्कुम मीलितम् ॥
ददामि ते प्रतुष्ट्यर्थं नृसिंहं पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
कालोद्भवानि पुष्पाणि तुलस्यादीनि वै प्रभो ॥
पूजयामि नृसिंहेशं लक्ष्म्यासह नमोऽस्तुते ॥२१॥
कालागुरु मयं धूपं सर्वदेव सुदुर्लभम् ॥
ददामि ते महाविष्णो सर्व काम समृद्धये ॥२२॥
दीपः पाप हरः प्रोक्त स्तमो राशि विनाशनः ॥
दीपेनालभ्यते तेज स्तस्मा दीपं ददामि ते ॥२३॥
नैवेद्यं सौख्यदं चारु भक्ष्य भोज्य समन्वितम् ॥
ददामि ते रमाकान्त सर्वपाप क्षयङ्कुरु ॥२४॥ (नैवेद्यम्)

भी मैं कहता हूँ सावधान होकर सुनिये। ओम् माणिक्याद्रि सम प्रभम् इस मन्त्र से ध्यान करे ॥१८॥ तब षोडशोपचार से पूजन करे लक्ष्मी देवी तथा धरा देवी सहित श्री नृसिंह जी की पूजा करे ॥१९॥ चन्दनं शीतलंदिव्यमित्यादि मन्त्र से चन्दन देवे ॥२०॥ ओम् कालोद्भवानि पुष्पाणि इस मन्त्र से फूल देवे ॥२१॥ ओम् कालागुरुमयं धूपमित्यादि मन्त्र से धूप देवे ॥२२॥ ओम्दीपः पाप हरः प्रोक्त इत्यादि मन्त्र से दीप देवे ॥२३॥ (ओम् नैवेद्य सौख्यदं चारु) इस मन्त्र से नैवेद्य देना चाहिये ॥२४॥ (नृसिंहाच्युतदेवेश) इस मन्त्र से अर्घ्य

नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मी कान्त जगत्पते (अर्घ्यम्)
अनेनार्घ्य प्रदानेन सफलास्तु मनोरथाः ॥२५॥
पीताम्बर महाविष्णो प्रह्लाद क्लेश नाश कृत् ॥
यथा भूतार्चने देव यथोक्त फलदो भव ॥२६॥
रात्रौ जागरणं कुर्य्यात् गीत वाद्यै र्निशांनयेत् ॥
ततः प्रभाते स्नात्वा च पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥२७॥
विधिना पूजयेद्देवं नृसिंहं दैत्यसूदनम् ॥
प्रार्थयेच्च ततो देवं धर्म कामार्थ हेतवे ॥२८॥
मद्वंशे ये नरा जाता ये जनिष्यन्ति मत्परम् ॥
तांस्त्व मुद्धर देवेश दुःसहात् भवसागरात् ॥२९॥
पातकार्णव मग्नस्य व्याधि दुःखाम्बु राशिभिः ॥
तीव्रैस्तु परि भूतस्य महादुःखं गतस्यमे ॥३०॥

देना चाहिये ॥२५॥ इसी प्रकार अन्यान्य वस्तु प्रदान करना चाहिये हे पीताम्बर ? हे विष्णो हे प्रहलाद के क्लेश को दूर करने वाले यह चतुर्दशी जन्य पूजा का फल हमें दीजीये ॥२६॥ इस प्रकार प्रार्थना कर रात्रि में जागरण करें गीत तथा विविधवाद्ययन्त्र द्वारा रात्रि बितावे फिर प्रातः काल पहले कहे हुये मार्ग से क्रिया करें ॥२७॥ अनन्तर विधि पूर्वक श्री नृसिंह जी की पूजा करें अनन्तर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिये प्रार्थना करे ॥२८॥ हे देवेश मेरे वंशमें पहले जो हो चुके हैं और जो हमसे पीछे होगा ये हैं उन सब को दुःख संसार रुपी समुद्र से पार कीजीये ॥२९॥ पाप रूपी समुद्र में मग्न, नाना व्याधि तथा कठिन यन्त्रणा से पीड़ित मुझे ॥३

करावलम्बनन्देहि शेषशायि न्नमोऽस्तुते ॥
श्री नृसिंह रमाकान्त भक्तानां भयनाशन ॥३१॥
क्षीराम्बुधि निवासस्त्वं प्रीयमाणो जनार्दन ॥
व्रतेनानेन देवेश भुक्ति मुक्ति प्रदोभव ॥३२॥
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं लक्ष्मीं शंख ततःपरम् ॥
चक्रं गदाञ्च पद्मञ्च गरुड़ं शंकर न्ततः ॥३३॥
शेष श्रद्धां धृति तुष्टिं पूजयित्वा ततःपरम् ॥
होमं कृत्वा कथां श्रुत्वा ततो देवं विसर्जयेत् ॥३४॥

हे शेषशायी आपको मैं प्रणाम करता हूं । आप हमें हस्त रूपी अवलम्ब दीजिये । हे नृसिंह, हे रमाकान्त, हे भक्तों के भय को दूर करने वाले ॥३१॥ हे क्षीर समुद्र में वास करने वाले, हे जनार्दन, हे देवेश, इस व्रत से भोग तथा मोक्ष मुझे दीजिये ॥३२॥ इस प्रकार देवेश श्री नृसिंह भगवान की पूजा कर अनन्तर लक्ष्मी, शंख, चक्र, गदा, पद्म, गरुड़, शंकर, शेष, श्रद्धा, धृति, तुष्टि, आदि देव देवियों की पूजा कर, होम कर और कथा श्रवण कर के पूजा विसर्जन करे ॥३३॥३४॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे बृहन्नार सिंहोक्ते नृसिंह प्रह्लाद सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये श्री नृसिंह पूजन कथनन्नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सूत उवाच

अथ स्तोत्रम् प्रवक्ष्यामि नृसिंहस्य महामुने ॥
पठनात्पाठनाद्वापि मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥१॥

नमोऽस्तुते देव वरेक सिंह
नमोऽस्तु पापौघ गजैक सिंह ॥
नमोस्तु दुःखार्णव पार सिंह
नमोऽस्तु तेजोमय दिव्यसिंह ॥२॥
नमोऽस्तु सर्वाकृति दिव्यसिंह
नमोऽस्तुते क्लेश विमुक्तिसिंह ॥
नमोऽस्तुते दिव्यवपु नृसिंह
नमोऽस्तुते वीरवरैक सिंह ॥३॥
नमोऽस्तुते दैत्यविदार सिंह
नमोऽस्तु देवेष्वधिदेव सिंह ॥
नमोऽस्तु वेदान्तवनैक सिंह
नमोऽस्तुते योगिगुहैक सिंह ॥४॥

सूतजी बोले, हे शौनक अब मैं नृसिंह भगवान् स्तोत्र कहता हूँ जिसके पठन पाठन से मनुष्य मुक्ति भागी होगा ॥१॥ हे देवों में श्रेष्ठ सिंहस्वरूप हे पाप समुह रूपी गजों में सिंह, हे दुःखरूपी समुद्र से पार में सिंह हे तेजो मय दिव्यसिंह आपको मैं नमस्क करता हूँ ॥२॥ हे सर्वाकृति चित्ररूपी सिंह हे क्लेश मुक्त करने में सिंह हे दिव्यशरीरधारी सिंह हे वी श्रेष्ठ सिंह आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥३॥ हे दैत्य

नमो हिरण्याक्ष विदार सिंह
प्रह्लाद दुःखादि विनाश सिंह ॥
नमोस्तुते सिंह वृषैक सिंह
नमोस्तु मन्दार विहार सिंह ॥५॥
नमस्ते भगवद्विष्णो नृसिंह पुरुषोत्तमः ॥
त्वद् भक्तोऽहं शुरारीश त्वां नमामिच तत्वतः ॥६॥
इत्युक्त्वा विरराम अथ प्रह्लादो देवसन्निधौ ॥
प्रसन्न स्तमुवाचेदं भगवान् नर केशरी ॥७॥

श्री भगवानुवाच

प्रसन्नोऽहं महभाग स्तोत्रेणानेन सुव्रत॥
यः पठेत् त्वत्कृतं स्तोत्रं भक्तिभाव समन्वितः ॥८॥

विदारण करने में सिंह, हे देवताओं में अधिदेवरूपी सिंह हे वेदान्तरूपी वनमें सिंह हे योगीगण के हृदयरूपी गुहामें वास करने में सिंह आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥४॥ हे हिरण्याक्ष दैत्य को विदारण करने में सिंह हे प्रह्लाद के दुःख के नाश करने में सिंह हे मन्दार में विहार करने वाले सिंह आप को मैं नमस्कार करता हूं ॥५॥ हे भगवन् हे विष्णु हे नृसिंह हे पुरुषोत्तम हे शुरारीश आप को मैं तत्व से प्रणाम करता हूं ॥६॥ हे शौनक इस प्रकार प्रह्लाद श्रीनृसिंह भगवान् को प्रणाम कर उनके समीप मौन होकर बैठ गया ॥७॥ श्री भगवान् बोले, हे महाभाग आप के इस स्तोत्र

न तस्यदुःख दारिद्र्यं भविष्यति कदाचन ॥
य इदं मद्व्रताग्रञ्च प्रविधास्यन्ति मानवाः ॥६॥
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटि शतैरपि ॥
अपुत्रो लभते पुत्रान् मद्भक्तांश्च विशेषतः ॥१०॥
दरिद्रो लभते लक्ष्मी धनदस्यच यादृशी ॥
तेजस्कामो लभेत्तेजो राज्येप्सु राज्यमुत्तमम् ॥११॥
आयुः कामो लभेदायु र्यादृशन्तु शिवस्यच ॥
स्त्रीणां व्रतमिदं साधु पुत्रदं भाग्यदं तथा ॥१२॥
अवैधव्य करन्तासां पुत्रशोक विनाशनम् ॥
धन धान्य करञ्चैव पति प्रियकरं सुखम् ॥१३॥

से मैं प्रसन्न हूं जो आपका किया हुआ स्तोत्र भक्ति भाव से पाठ करेगा ॥८॥ उसको दुःख तथा दारिद्र्य कदापि नहीं होगा ॥ जो मनुष्य यह मेरा श्रेष्ठ व्रत करेगा ॥९॥ उसका कोटि जन्म पर्य्यन्त फिर इस संसार में जन्म नहीं होगा ॥ जिसको पुत्र नहीं है वह पुत्र लाभ करेगा और वह पुत्र मेरा विशेष भक्त होगा ॥१०॥ यदि दरिद्र यह व्रत करेगा तो कुबेरके समान लक्ष्मी को प्राप्त करेगा तेज का अभिलाषी तेज राज्याभिलाषी राज्य प्राप्त करेगा ॥११॥ आयुर्दाभिलाषी मनुष्य शिव सदृश अयुर्दा को प्राप्त करेगा। स्त्रियों के लिये यह उत्तम व्रत है। यह व्रत पुत्र तथा भाग्य देने वाला है ॥१२॥ स्त्रियों का वैधव्य तथा पुत्रशोक नाशक है। धन धान्य देने वाला तथा पति में प्रीति बढ़ानेवाला है ॥१३॥ सार्वभौम तथा

सार्वभौम सुखंतासां दिव्यं सौख्य भवेत्ततः ॥
स्त्रियो वा पुरुषाश्चापि कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम् ॥१४॥
तेभ्यो ददाम्यहं सौख्यं भुक्तिमुक्ति फलन्तथा ॥
बहुनोक्तेन किंवत्स व्रतस्यास्य फलन्नहीं ॥१५॥
यद्व्रतस्य फलम्वक्तुं नाहं शक्तो न शङ्करः ॥
ब्रह्मा चतुर्भि र्वक्त्रैश्च नालंस्या ज्जीवि तावधि ॥१६॥
यथा यथा प्रवृत्तिः स्यात् पातकस्य कलौ युगे ॥
तथा तथा विधास्यन्ति मद्व्रतं विरलं जनाः ॥१७
मद्व्रतस्या विधानेन मति र्येषां दुरात्मनाम् ॥
सदा पाप रतानांच पुरुषाणां विकर्म्मणि ॥१८॥

दिव्य सुखको देनेवाला है। स्त्री हो अथवा पुरुष हो उनको उचित है कि यह व्रत करे ॥१४॥ उनको भोग तथा मोक्ष के फल दूंगा। हे वत्स विशेष मैं इस व्रतका माहात्म्य क्या कहूं। ऐसा कुछ नहीं है जो इस व्रत से प्राप्त न हो ॥१५॥ जिस व्रत का फल न तो हम न शङ्कर बता सकते हैं तथा चार मुख वाले ब्रह्मा जी भी जीवन पर्य्यन्त इस व्रत के माहात्म्य को नहीं कह सकते हैं ॥१६॥ कलियुग में जैसे २ पाप की वृद्धि होगी तैसे २ मनुष्य मेरा यह व्रत कम करेगा ॥१७॥ जिन दुरात्माओं के मन मेरे व्रत में नहीं लगता सदा

विकार्य्यैव प्रकर्त्तव्यं माधवे मासि मद्व्रतम् ॥
प्राप्ते भूत दिनेवत्स सर्वकल्मष नाशनम् ॥१९॥
येनैवं क्रियमाणेन सहस्र द्वादशी फलम् ॥
जायते नमृषावच्मि मानुषाणां महात्मनाम् ॥२०॥
यइदं शृणुया न्नित्यं भक्तिभाव समन्वितः ॥
तस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्यां व्ययोहति ॥२१॥
पवित्रं परमं गुह्यं कीर्तयेद्य स्तु मानवः ॥
सर्वान् कामान वाप्नोति व्रतस्यास्य प्रशादतः॥२२॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा न्तद्दधे तत्र नृसिंहो भगवान् प्रभुः
प्रह्लादोऽपि मुदा भक्त्या हृदिध्यायन् रमापतिम् ॥२३॥

पाप में रत रहता है ॥१८॥ ऐसे दुरात्मा भी यदि वैशाख शुक्ल चतुर्दशी तिथि में मेरा व्रत करेगा उसके समस्त पाप नष्ट होंगे ॥१९॥ जो इस व्रत को भक्ति भाव से करेगा वह हजार द्वादशी फलका लाभ करेगा । मैं कदापि मिथ्या नहीं कह सकता हूं ॥२०॥ जो कोई इस व्रतको श्रवण करेगा या भक्ति भाव से श्रवण करावेगा ॥ उसके हाथ से हुई ब्रह्महत्या तक भी नष्ट हो जाती है। परम पवित्र तथा गोपनीय इस व्रतका जो कोइ कीर्तन करेगा वह इसके प्रभाव से समस्त कामना से पूर्ण होगा ॥२२॥ सूतजी बोले हे शौनक श्री नृसिंह भगवान

विचचार च तत्रैव पर्वते सुमनोहरे ॥
इति तेकथितं साधो नृसिंहस्य परात्मनः ॥२४॥
पूजाविधि विधानञ्च स्तोत्रञ्चापि मयामुने ॥
शृणुया च्छ्रावये न्मर्त्यो मुक्तस्यान्नात्र संशयः ॥२५॥

सूत उवाच

महाश्वेतां ततो गच्छेत् उपोष्य दिवसान्त्रिषट् ॥
स्नानं कार्य्यं त्वयावत्स शंखं सम्पूज्य वैहरेः ॥१॥

प्रह्लाद को इस प्रकार कहकर स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये। प्रह्लाद भी हृदय में भगवान का ध्यान करते हुये उसी मनोहर पर्वत पर विचरने लगे ॥२३॥ हे साधो यह मैंने श्री नृसिंह भगवान का पूजा विधि तथा स्तोत्र कहा ॥२४॥ जो कोइ इस अध्यायको श्रवण करेगा या करावेगा, वह निश्चय मुक्त होगा ॥२५॥

इति श्रीस्कन्दादि महापुराणे बृहन्नार सिंहे सूतशौनक संवादे मन्दार माहात्म्ये श्री नृसिंह देवस्य पूजन फल श्रवणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

सूत जी बोले, हे शौनक, श्री नृसिंह पूजन के बाद महाश्वेत कुण्ड जिसको शंखकुण्ड भी कहते हैं । हे वत्स वहाँ पर ६ दिन उपवास कर विधि पूर्वक शंखकुण्ड में स्नान कर श्री भगवान के शंख का पूजन कर ॥१॥ हे जनाध्यक्ष,

पाञ्चजन्यं जनाध्यक्ष स्नात्वा तत्र जनेश्वरम् ॥
सेवितोऽप्सरसां सद्म स्वर्गं प्राप्नोत्य संशयम् ॥२॥
धारा पतन्ति तत्रैव मिलिताः भिन्न वर्णिका ॥
दक्षिणस्यां महाभाग कुण्डे शंखाकृते वरे ॥३॥
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य सेवया ॥
प्राप्यते तानि सर्वाणि शंख कुण्डे च मज्जनात् ॥४॥
शंखश्च सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ॥
निर्मितः सर्वदेवेषु पाञ्चजन्य नमोऽस्तुते ॥५॥
दर्शनादेव शंखस्य किम्पुनः स्पर्शने कृते ॥
विलयं यान्ति पापानि हिमव द्भास्करोदये ॥६॥

वहां पर अप्सरा गणों से सेवित श्री भगवान् का धाम और स्वर्ग प्राप्त होता है ॥२॥ हे महाभाग दक्षिण दिशा में शंखाकृत कुण्ड में अनेक वर्ण की धाराएँ पतित होता है ॥३॥ तीनों लोक में जितने तीर्थ हैं तथा श्री वासुदेव भगवान की सेवा से जो फल लाभ होता है वह सब केवल शंखकुण्ड में मज्जन मात्र से लाभ होता है ॥४॥ सागर से उत्पन्न श्री विष्णु भगवान के हाथ में रहने वाले समस्त देवताओं में निर्मित ऐसे पाञ्चजन्य नामक शंख को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ जिनके दर्शन मात्र से समस्त पाप नष्ट होते हैं। जैसे सूर्योदय होनेसे पाला दूर हो जाता है वैसे ही शंखकुण्ड में मज्जन से समस्त पाप

ततः सौभाग्य कुण्डश्च तत्रैव प्रयतः शुचिः ॥
स्नात्वा तत्र महाराज विधिना भक्ति भावतः ॥७॥
सौभाग्यं प्राप्यते चात्र ततो याति दिवं नृप ॥
एक धाराच तत्रास्ति यमुना जल सन्निभा ॥८॥
तत्र कुण्डे विधानेन दानं देय विचक्षणैः ॥
सौभाग्य मतुलं राजन् प्राप्यते नात्र संशय ॥९॥
पद्म मष्टदलं तत्र ब्रह्मणोऽस्ति मनोहरम् ॥
कुण्डो परिविधानेन सम्पूज्यो भगवानजः ॥१०॥
सौभाग्या द्दक्षिणे राजन् प्रतीच्यां शंख कुण्डतः ॥
धाराच प्रपतन्नाम महातीर्थं सुखप्रदम् ॥११॥
तत्र स्नात्वा-र्कवारेच ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥
वारुण्ये चैव द्वादश्यां पातकानां क्षयायच ॥१२॥

नष्ट हो जाते हैं ॥६॥ शंख कुण्ड के बाद सौभाग्य कुण्ड है। यमुना के जल के सदृश एक धारा गिरती है ॥७, ८॥

हे राजा उस कुण्ड में विधि पूर्वक विद्वान को दान देने से अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है ॥ इसमें सन्देह नहीं ॥९॥ वहाँ पर श्री ब्रह्माजी का अष्टदल कमल है वहाँ पर श्री ब्रह्मा जी को पूजन करने से अनन्त फल होता है ॥१०॥ सौभाग्य कुण्ड से दक्षिण और शंख कुण्डसे पश्चिम यहाँ महासुख को देने वाला धारापतन नाम का तीर्थ है ॥११॥ वहाँपर रविवार चन्द्रग्रहण तथा सूर्य ग्रहण वारुणी में स्नान करनेसे तथा द्वादशी में स्नान करने से समस्त पाप

स्नानाद्भवति शुभाङ्गो महामरकत प्रभः ॥
तत्र यः स्नाति ग्रहणे सूर्य्यवारे विशेषतः ॥१३॥
स याति सौर सानिध्य नात्रकार्य्या विचारणा ॥
ततो वाराणासीङ्गच्छेत् शक्यो वाराणसी समाम् ॥१४॥
यत्रास्ते भगवान् शम्भुः कथयित्वा ततः परम् ॥
तारकं परमं मन्त्रं ततो मुक्ति न्ददाति वै ॥१५॥
तत्र स्नात्वा हरस्यान्तं गत्वा सम्पूज्य भक्तितः ॥
चतुर्वर्ग फलञ्चात्र प्राप्यते नात्र संशयः ॥१६॥

राजो वाच ॥

साश्चर्य्य मिदमाख्यात भगवञ्जगदीशितुः।
विश्व नाथस्य माहात्म्यं सर्वप्रपणापाशनम् ॥१७॥

नष्ट होता है ॥१२॥ यहां पर स्नान करनेसे सुन्दर अङ्ग प्राप्त होते हैं रविवारको सूर्य्य ग्रहण में स्नान करने से सूर्य्य-लोक की प्राप्ति होती है ॥१३॥ अनन्तर वाराणसी जाना-चाहिये ॥१४॥ यहाँ पर श्री शंकर जी तारक मन्त्र देकर पश्चात् मुक्ति देते हैं ॥१५॥ यहाँ पर स्नान करके भक्ति पूर्वक जो कोई श्रीशंकर जी का पूजन करता है उसको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष यह चारों पदार्थ निश्चय प्राप्त होते हैं ॥१६॥ राजा परीक्षित बोले, हे भगवान् कपिलदेवजी जगत का ईश श्री विश्वनाथजी का समस्त पापनाशक तथा परमा श्चर्यजनक माहात्म्य आपने हमें कहा ॥१७॥ हे भगवन श्री विश्वनाथजी कब यहां आये और कौन

कदा चात्रागतः श्रीमान् विश्वनाथो महाप्रभुः ॥
किङ्कार्य्यं कृतवाँश्चात्र देव देवो महेश्वरः ॥१८॥
त्यक्त्वा वाराणसीं रम्यां स्वर्गमोक्षैक दायिनीम्॥
समागत्यात्र मन्दारे ह्यावासं कृतवान् हरः ॥१९॥
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रह्मन् कथयस्वानु कम्पया ॥

सूत उवाच

इत्थं नृप वचः श्रुत्वा करुणापूर्ण मानसः ॥
प्रत्युवाच नृपं साध्वी महात्मा कपिलोमुनिः ॥२०॥

कपिलदेव उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि वृतान्त मपावनंसहत् ॥
कथयामि समासेन सावधान मनाभव ॥२१॥
आसीत्पुरा महाराज पद्मकल्पे प्रतापवान् ॥
दिवोदाश इतिख्यातो राजा परमधार्म्मिकः ॥२२॥

कार्य्य किये वह हमें कहिये ॥१८॥ और परम रमणीय स्वर्ग तथा मोक्ष को देनेवाली वाराणसी को छोड़ कर मन्दार आकर श्री शंकर भगवान् ने वास किया ॥१९॥ सब वृत्तान्त कृपा कर हमें कहिये ॥०॥ सूतजी बोले, हे शौनक इस प्रकार राजाका वचन सुन कर करुणा से पूर्ण मन कपिल जी कहने लगे ॥२०॥ कपिलदेवजी बोले, हे राजा परीक्षित परम पवित्र माहात्म्य मैं कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥२१॥ हे राजा पद्म कल्पमें परम प्रतापी तथा धर्म्मात्मा

सोऽति घोरन्तपः कृत्वा तोषयित्वा महेश्वरम् ॥
विधिना लब्ध राज्यश्च वाराणस्यां नृपोत्तम ॥२३॥
शंकरोऽति प्रसन्नात्मा दिवोदासाय भूभृते ॥
दत्वा वाराणसीं रम्यां मन्दारे समुपागतः ॥२४॥
कल्पयामास तत्रापि रमणीया मनोहराम् ॥
वाराणसी महाराज विश्वनाथो महाप्रभुः ॥२५॥
प्रासादं विविधन्तत्र वनञ्चोपवन न्तथा ॥
रचयामास वैशम्भु निवासाय महामते ॥२६॥
वनानि रम्याणिच शीतलानि ।
तोयानि सन्तीह मनोहराणि ॥
शाखोपशाखै रुपसेवितानि ।
द्रुमाणि पुष्पादि समाकुलानि ॥२७॥

दिवोदास नाम का राजा था ॥२२॥ वह राजा अत्यन्त कठिन तप कर श्री शंकर भगवान् को प्रसन्न कर श्री ब्रह्मा जी की कृपा से वाराणसी में राज्य लाभ किया ॥२३॥ शंकर जी भी प्रसन्न होकर दिवोदास राजा को काशी का राज्य देकर स्वयं मन्दार आये ॥२४॥ मन्दार में भी रमणीया तथा मनोहारिणी काशीकी कल्पना श्री शंकरजी ने किये ॥२५॥ वहाँ पर विविध प्रकार के प्रासाद, वन तथा उपवनों की रचना निवास के लिये किया ॥२६॥ अनन्तर रमणीय वन तथा शीतल जलसे शोभित तथा अनेक पुष्पादिकों एवं शाखा उपशाखाओं से युक्त मनहरण वृक्षा-

दृष्ट्वाच काशीं सुखपुण्यराशि
स्वर्गापवर्गस्यच मूलराशिम् ॥
विनिर्मितां शम्भुरनादिक ल्पं
सुखाय नूनं भवपाश हन्त्रीम् ॥२८॥
अनुत्तमां ताम्प्रविलोक्य विष्णु—
र्जगाद वाक्यं गिरिजापति न्तत् ॥
धन्योऽसि शम्भो भवपाश मुक्त्यै
विनिर्मिता न्नौरिव सागरेऽस्मिन् ॥२९॥
परीक्षित उवाच ॥
भगवन् सर्वतत्त्वज्ञ मोक्षमार्ग प्रदर्शक ॥
श्रुतञ्च त्वन्मुखाम्भोजात् मन्दारेच यथाहरः ॥३०॥

रिकों की कल्पना की ॥२७॥ सुख तथा पुण्यकी राशि, स्वर्ग एवं मोक्ष की राशि सांसारिक बन्धनों का नाश करने वाली निश्चित सुख के लिये अनादि समान श्री शंकरजी ने काशी की रचना की ॥२८॥ हे नृप इस सर्व श्रेष्ठ शम्भु रचित काशीको देख श्री विष्णु भगवान् शंकरजी से बोले। हे शम्भो आप धन्य हैं; क्योंकी सांसारिक बन्धन-रूपी पाश से मुक्त होनेके लिये संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिये अपूर्व नौका सदृश काशी की रचना की ॥२९॥ राजा परीक्षित बोले, हे समस्त तत्त्वों को जाननेवाले मोक्षमार्ग को दिखलानेवाले भगवान् कपिलदेव जी मन्दार में जिस प्रकार शंकरजी आये वह मैंने आपके मुखसे सुना ॥३०॥

समागत्य कृतं स्थानं निवासाय महामुने ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि वदमे करुणानिधे ॥३१॥
काशीं त्यक्त्वा यदाशम्भु र्ममेन्दारे समुपागतः ॥
तदाकिं कृतवान् विष्णुः प्रविलोक्य महेश्वरम् ॥३२॥

श्रीकपिलदेव उवाच

साधु साधु महाराज वृत्तान्तश्चाति पावनम् ॥
कथयामि महाबाहो सावधान मनाभव ॥३३॥
यदा समागतः शम्भु स्त्यक्त्वा वाराणसीं नृप ॥
मन्दारे राजशार्दूल दर्शनार्थं हरिस्ततः ॥३४॥
निजासन मपरित्यज्य विश्वनाथस्य सन्निधौ ॥
प्रणम्य पुरतो विष्णुः कुशल मपृच्छवानसौ ॥३५॥

हरिरुवाच

धन्योऽहं गिरजाकान्त धन्यश्चायं नगोत्तम ॥
यतः काशीं त्विहायात्र ह्यागतोऽसि महेश्वर ॥३६॥

और किस प्रकर यहां आकर आपने निवास किया सो भी मैंने सुना ॥ हे करुणाकर सम्प्रति काशी छोड़ कर श्री शंकर जी जब मन्दार आये तब उनको देखकर श्री विष्णु भगवान ने क्या किय ॥३१,३२॥ श्रीकपिलदेवजी बोले, हे राजा परीक्षित आपने बहुत पवित्र वृत्तान्त पूछा । हे महाबाहो मैं कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥३३॥ जब काशी छोड़ कर श्रीशंकर जी मन्दार आये उनको देख कर श्रीविष्णुभगवान अपना आसन छोड़ कर श्रीशंकरजी के

सनाथौ क्रियतां शम्भो स्थानस्मे गिरिजापते ॥
निवसस्व सुखेनात्र मन्दारे गिरिकानने ॥३७॥
कथयस्व महादेव कुशल स्वर्त्तते नवा ॥
काश्या स्त्वत्पालितायाश्च योगक्षेमं शुभाशुभम् ॥३८॥
किं केश्चित् धर्षितंस्थानं दुष्टदैत्य निशाचरैः ॥
यदर्थं मागतोऽसित्वं त्यक्त्वा वाराणसीं स्विभो ॥३९॥

महेश्वर उवाच

नकश्चित् धर्षितंस्थानं दुष्टैर्दैत्य निशाचरैः ॥
न किञ्चिद् व्यसनप्राप्तं किन्तुदुःखं ब्रवीमिते ॥४०॥
अस्ति कश्चिन्महाविष्णो राजा परम धार्म्मिकः ॥
दिवोदास इतिख्यातो वैष्णवानां शिरोमणिः ॥४१॥

दर्शनार्थ आये और शंकर जी को प्रणाम कर कुशल पूछने लगे ॥३४,३५॥ श्रीविष्णुभगवान बोले ॥ हे गिरजाकान्त आप काशी छोड़कर यहां आये हैं, इससे मैं धन्य हूं तथा यह पर्वत श्रेष्ठ मन्दार भी धन्य है ॥३६॥ हे शम्भो, हे गिरजापते, इस मेरे स्थान मन्दार को सनाथ कीजिये तथा सुख पूर्वक मन्दार गिरिका जो वन है उसमें निवास कीजिये ॥३७॥ हे महादेव आप कुशल हैं और आपसे पालित वाराणसी योगक्षेत्र तो इससे उत्तम है ॥३८॥ क्या कोई दुष्ट निशाचर यहां आप का बाधक है जिससे काशी छोड़ कर आप यहां आये हैं ॥३९॥ महादेव जी बोले हे विष्णु न कोई दुष्ट निशाचरादि बाधक हैं न किसी प्रकारका व्यसन उपस्थित

सोऽति घोरन्तपः कृत्वा तुतोष कमलोद्भवम् ॥
प्रसन्नस्तस्य ब्रह्मोद्विष्णो सदानन्दो नृपम्पति ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नोऽहं महाभाग तवभक्त्या नृपोत्तम ॥
वरं वरय भद्रन्ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥४३॥
तदहं सम्प्रदास्यामि यद्देवैरपि दुर्लभम् ॥

दिवोदास उवाच

प्रसन्नो यदि देवेश यदि तेऽनुग्रहो मयि ॥
तदामे वाञ्छितं स्थानं देहिमे चतुरानन ॥४५॥
काश्यां वैश्वेश्वरं राज्यं याचयामि प्रजापते ॥
तेनैव कृतकृत्योऽहं भविष्यामि नचान्यथा ॥४६॥

है; किन्तु एक मानसिक दुख है वह मैं आप से कहता हूं ॥४०॥ हे विष्णु वैष्णवों में शिरोमणी परम धार्मिक दिवोदास नामका एक राजा है ॥४१॥ उसने अत्यन्त कठिन तपस्याकी तब ब्रह्मा जी उसके ऊपर परम प्रसन्न होकर बोले ॥४२॥ हे महाभाग हे नृपोत्तम, आपके ऊपर मैं प्रसन्न हूं आप मनोवाञ्छित वर मांगिये ॥४३ ४४। दिवोदास बोले, हे ब्रह्मा जी, यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो मुझे मेरा वाञ्छित स्थान दीजिये ॥४५॥ मेरा वाञ्छित विश्वेश्वर पालित जो काशी का राज्य उसकी मैं याचना करता हूं। हे प्रजापति उसी से मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा ॥४६॥ ब्रह्माजी बोले, हे राजा दिवोदास

ब्रह्मोवाच

दत्ता काशी महाराज मया तुभ्यं नसंशयः ॥
शंकराज्ञां शिरोधार्य्यं कुरु राज्य मकन्टकम् ॥४७॥
इत्थं ब्रह्म प्रसादाच्च लब्ध्वा काशीं ततो हरे ॥
मत्समीपं समागत्य तुष्टाव विविधैः स्तवैः ॥४८॥
प्रसन्नोऽहं ततो विष्णो ददौ काशीमनुत्तमाम् ॥
दिवोदासाय शान्ताय भक्त्या तस्मै रमापते ॥४९॥
दत्वा तस्मै निजंस्थानं बहुधा भावित प्रभुः ॥
आगतोऽस्मिच मन्दार स्थानं यत्तं मनोहरम् ॥५०॥
निवासाय महाविष्णो देह्यनुज्ञा ततो हरे ॥
निवसामि सुखेनात्र कृपया त्वयि सान्निधौ ॥५१॥

श्री भगवानुवाच ॥

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं त्वदागमन गौरवात् ॥
नास्ति तेऽविदितं स्थानं त्रिषुलोकेषु किञ्चन ॥५२॥

ने आपको काशी का राज्य दिया पर श्री शंकरजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करके अकण्टक राज्य करो ॥४७॥ इस प्रकार काशीका राज्य ब्रह्मा जी से पाकर मेरे समीप आया और अनेक प्रकार से मेरी स्तुति की ॥४८॥ हे रमापते, तब मैं प्रसन्न होकर उसको काशीका राज्य देकर बहुत बार विचार कर मैं आप के परम प्रिय मन्दारको आया हूं ॥४९.५०॥ हे विष्णु, निवास के लिये मन्दार में आप हमें आज्ञा दीजिये और आपके समीप मैं भी सुख पूर्वक वास करूंगा ॥५१॥ श्री भगवान बोले,

तथापि कथयिष्यामि ह्यात्मयाले वृषध्वज ॥
यदि ते रमते चित्तं मन्दारे गिरिजापते ॥५३॥
निवसस्वाविशेषेण यथा काश्यन्तथैवच ॥
पावयस्वच विश्वेशं मन्दारं पर्वतोत्तमम् ॥५४॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधेविष्णु: शङ्करोऽपि ततोमुने ॥
निवासाय कृतारम्यां काशी कौश्येश्वरी यथा ॥५५॥
शम्भुना लङ्कृतंक्षेत्रं मन्दारं पर्वतोत्तमम् ॥
वनश्चोपवनन्तत्र शोभनं सर्वतो विभम् ॥५६॥
दृष्ट्वाति सुन्दरं क्षेत्रं दृष्ट्वा काशी ह्यनुत्तमाम् ॥
कृत कृत्यमिदं स्थानं मन्यतेन्च महर्षय: ॥५७॥

महादेव, आपके आगमन से मैं धन्य २ तथा कृतकृत्य ॥५२॥ हे गिरिजापते, यदि आपका चित्त मन्दार में लगता है तो हे वृषध्वज, आपकी आज्ञा पाकर मैं कहता हूँ ॥५३॥ जैसे स्वतन्त्र होकर आप काशी में रहते थे वैसे ही यहाँ पर भी वास कीजिये ॥ हे विश्वेश इस मन्दार पर्वत श्रेष्ठ को पवित्र कीजिये ॥५४॥ सूत जी बोले हे शौनक, ऐसा कहकर श्रीविष्णुभगवान अन्तर्ध्यान हो गये हे मुने श्री शंकर जी ने भी निवास के लिये परम रमणीय अनुपम काशीके ऐसा दूसरी काशी का निर्माण किया ॥५५॥ हे नृपत्तम श्रीशंकर जी द्वारा मन्दार क्षेत्र अलंकृत होकर चारों ओर वनोपवन से शोभायमान होने लगा ॥५६॥

अहो विचित्रहरिणा समी हितं
मन्दारनाथेन नगोत्तमं नृप ॥
यत्पश्य काशी स्वविहाय शम्भु:
समागत: सम्प्रति वासहेतो: ॥५८॥
अहोऽति मन्दार मुदार कीर्तिना
श्रीविश्वनाथेन सुसेवितं यदा ॥
तदा प्रभृत्येवसुरा सुराभ्यां
संसेव्यमानं सततं नगोत्तमम् ॥५९॥
अहाऽतिधन्या भुवि मानवास्ते
मन्दार मागत्यच काशिकायाम् ॥
सम्पूज्य विश्वेश्वरपादपद्मं
ध्यात्वा सुखीभूय गृहं प्रयुक्ते ॥६०॥

अनन्तर अति सुन्दर पर्वतोत्तम श्री मन्दार क्षेत्र को देख महर्षिगण इस स्थान से अपने को कृतकृत्य मानने लगे ॥५७॥ कपिलदेव परीक्षित से कहने लगे, हे नृप, भगवान से सुरक्षित यह मन्दार क्षेत्र धन्य है जिसको देख कर श्री शंकर भगवान भी काशी छोड़ कर निवास के लिये मन्दार आये हैं ॥५८॥ हे उदार कीर्तिवाले, श्री विश्वनाथ जी से जब से सेवित हुआ यह मन्दार क्षेत्र तब से देवों तथा दैत्यों से सर्वदा यह पर्वत श्रेष्ठ मन्दार सेव्यमान है ॥५९॥ संसार में धन्य वे मनुष्य हैं जो शङ्कर जी द्वारा रक्षित मन्दार में आकर श्रीविश्वेश्वर का ध्यान

मुनिरुवाच

इतिते कथितं राजन् विश्वनाथस्य चेष्टितम् ॥
काशी न्त्यक्त्वा यथाचात्र मन्दारे समुपागतः ॥६१॥
यइदं पठतेऽध्यायं विश्वनाथस्य सन्निधौ ॥
मन्दारे नृपशार्दूल भक्तिभाव समन्वितः ॥६२ ॥
सर्वान् कामान वाप्नोति चान्ते शैवपुर म्ब्रजेत् ॥६३ ॥

कपिलदेव उवाच

ततो गच्छे न्महाराज गुह्यकोदर मुत्तमम् ॥
धारा यत्र पतत्येका पीनस्तन मनोहरा ॥१॥

तथा पूजन कर सुखी होकर अपना घर जाया करता है ॥६०॥
मुनि बोले हे राजा परीक्षित काशीको छोड़ कर जिस प्रकार श्री शंकरजी मन्दार आये तथा नूतन काशी की रचना की वह मैं आपसे कहा ॥६१॥ मन्दार में श्री विश्वनाथ जीके समीप आकर जो कोइ भक्तिभाव से इस अध्यायको पाठ करेगा ॥६२ उसको इहलौकिक समस्त कामना सिद्ध करके अन्तमें श्रीशंकर भगवान् के समीप कैलाश को जायगा ॥६३॥

इतिश्रीस्कन्दादि महा पुराणेम न्दारमाहात्म्ये कपिल परीक्षितसम्वादे श्रीविश्वनाथस्य काशीतोमन्दारा गमनन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

कपिलदेव जी बोले, हे महाराज परीक्षित, काशी के बाद गुह्य को दर जाना चाहिये जिसमें वेगवती धारा गिरती है ॥१॥ वहाँ

तत्र स्नात्वा समभ्यर्च्य कोलरूपं रमापतिम् ॥
यान्ति स्वर्गं नराराजन् किमन्यै र्बहुभाषणः ॥२॥
अपर्णा तत्र सम्पूज्या गणेशो भूत भूपतिः ॥
सर्वान् कामन वाप्नोति कृपया गिरिजापते ॥३ ॥
वाराहं धरणीयुक्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ॥
वाराह कुण्डा द्वायव्यां पूजनीय प्रयत्नतः ॥४॥

राजो वाच

वाराह कुण्डमाहात्म्यं कीदृश मुनिसत्तम ॥
महिमानश्च कंचात्र वराहा कृतिनो हरेः ॥५॥
कदा केन प्रकारेण पूजनीयो रमापतिः ॥
धरण्या साहितोदेवो लक्ष्मीयुक्तो जगद्गुरुः ॥६॥

पर स्नानकर जो कोइ कोल रूपी रमापति की पूजा करता है वह राजा निश्चय स्वर्ग जाता है ॥२॥ वहाँ पर अपर्णादेवी पूजनीय हैं और श्री गणेशजी, भूतनाथ तथा श्रीभैरव इन सब का जो कोईपूजन करता है उन्हे श्रीमहादेव की कृपासे इहलौकिक समस्त कामनाओं की सिद्धि होती है ॥३॥ अनन्तर वाराह कुण्ड से वायव्य में जगत्के पति लक्ष्मी तथा धरणी देवी सहित वाराह भगवान यत्न पूर्वक पूजनीय हैं ॥४॥ राजा परीक्षित बोले, हे भगवान कपिल देव जी वाराह कुण्ड का माहात्म्य कैसा है तथा वाराह भगवान का भी माहात्म्य कहिये ॥५॥ किस समयमें लक्ष्मी तथा धरणीदेवी सहित जगतके गुरु श्रीवाराह भगवान की पूजा करनी चाहिये ॥६॥ हे दया के समुद्र

तत्सर्वं त्वाविशेषेण कृपया मुनिसत्तम ॥
कथयस्व दयासिन्धो श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥७॥

॥ ऋषिरुवाच॥

साधु साधु महाराज नृपचूडामणि र्भवान् ॥
कथयाम्यत्र विशेषेण माहात्म्यं चाति पावनम् ॥८॥
सौभाग्य कुण्डाद्वायव्यां कुण्डं वाराह संज्ञकम् ॥
यत्र स्नात्वा महाराज सप्तद्वीप पतिर्भवेत् ॥९॥
तद्विधिञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु पाण्डवनन्दन ॥
येन सम्यक्फलं राजन् प्राप्नुवन्ति नरा भुवि ॥१०॥
कार्तिकस्य सितेपक्षे चतुर्दश्यां नृपोत्तम ॥
प्रात नित्य क्रियांकृत्वा नखरोमादिकं ततः ॥११॥
शोधयित्वा महाराज कुण्डे वाराह संज्ञके ॥
स्नानं कृत्वा विधानेन भक्तिभाव समन्वितः ॥१२॥

कपिलदेव जी विस्तार पूर्वक कहिये । ऋषिबोले, हे महाराज परीक्षित आप ने बहुत अच्छी बात पूछी । यह परम पवित्र माहात्म्य विशेष रूप से कहता हूँ ॥८॥ सौभाग्य कुण्ड से वायुकोन में वराह कुण्ड है हे महाराज यहांपर स्नान करने से सातो द्वीपका अधिपति होता है ॥९॥ हे पण्डुनन्दन, राजा परीक्षित इस कुण्ड का मैं विधि कहता हुं आप सुनिये ॥१०॥ कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी तिथि में प्रातः काल नित्य कृत्यादिक कर नख लोमादिक शोधन करें ॥११॥ अनन्तर वराह

संकल्प माचरे त्पूर्वं हृदिध्यायन् रमापतिम् ॥
नमोऽद्येत्यादि वाक्येन मधुसूदन तुष्टये ॥१३॥
कुलकोटि समुद्धार कामो वाराह संज्ञके ॥
स्नानं करोमि देवेश यथोक्त फलदोभव ॥१४॥
एवं स्नात्वा ततोराजन् नित्यनैमित्तिक ततः ॥
परिधाय ततो धीमान् शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः ॥१५॥
देवस्य पुरतो गत्वा प्रार्थयित्वा रमापतिम् ॥
व्रतमेत न्महाराज तव प्रीत्यर्थ मेवच ॥१६॥
करिष्यामि रमा कान्त निर्विघ्नं कुरुतत्पते ॥
इत्थं सम्प्रार्थ्य देवेशं धरण्या सहितं प्रभुम् ॥१७॥

कुण्ड में विधि पूर्वक भक्ति भाव से स्नान करें ॥१२॥ हृदय में रमा पति श्री मधुसूदन भगवान का ध्यान करते हुये पहले संकल्प करें ॥१३॥ ॐ नमोऽद्येत्यादि वाक्य से संकल्प करें श्री मधुसूदन की प्रीत कामना से तथा कोटि कुलों के उद्धार के लिये इस वाराह कुण्ड में मैं स्नान करता हुं ॥ हे देवेश यथोक्त फल दीजिये ॥१४॥ हे राजा परीक्षित, इस प्रकार संकल्प पूर्वक स्नान-कर नित्य नैमित्तिक समाप्त कर यत्न पूर्वक शुद्ध हो कर ॥१५॥

श्री वाराह भगवान के आगे जाकर उनकी प्रार्थना करें । हे महाराज यह व्रत आपके प्रीत्यर्थ करता हूं ॥१६॥ हमारे इस व्रत को निर्विघ्न समाप्त कीजिये, इस प्रकार पूजा कर ॥१७॥ लक्ष्मी तथा धरणी देवी सहित श्री

सलक्ष्मीकं महाराज वराहं पुरुषोत्तमम् ॥
पूजयेद् भक्तिभावेन सर्वे काम समृद्धये ॥१८॥
तद्दिने चैक भुक्तश्च भूमिशायी जितेन्द्रियः ॥
अहोरात्रं नयेद्धीमान् नृत्य गीतादि मङ्गलैः ॥१९॥
ततः प्रातर्महाराज पौर्णमास्यां विशेषतः ॥
पूजयेत्कमला कान्तं सर्वान् कामान वाप्नुयात् ॥२०॥
अत्रते कथयिष्यामि सेतिहासं पुरातनम् ॥
वाराहेणात्र सम्वादं भूमेर्देव्या नृपोत्तम ॥२१॥
वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं कृते पुण्यतमे युगे ॥
नारायणाद्रौ देवेशं निवसन्तं क्षमापतिम् ॥२२॥
वाराह रूपिणं देवं धरणी सखिभिर्वृता ॥
प्रणम्य परि पप्रच्छ रक्त पद्मायते क्षणम् ॥२३॥

वाराह भगवान की पूजा समस्त सम्पत्ति तथा सिद्धि के लिये करें ॥१८॥ उस दिन एक ही वार खा जितेन्द्रिय होकर भूमि पर सोते हुये, नृत्य गीत तथा मङ्गल पाठ करते हुए रात्रि व्यतीत करें ॥१९॥ अनन्तर हे महाराज पूर्णमासी तिथि को विशेष रूप से कमलाकान्त का पूजन करने से समस्त कामना सिद्ध होती है ॥२०॥ इस विषय में मैं एक पुरातन इतिहास कहता हूं। हे नृपोत्तम जो धरणी देवीने वाराह भगवान से पूछी था ॥२१॥ वैवस्वत मनु के समय में पवित्र सत्ययुग में, नारायण पर्वत पर वास करते हुए देवेश पृथ्वी पति को ॥२२॥ वाराह रूपी देव को

धरण्यु वाच ॥
आराध्यः केनमन्त्रेण भवान् प्रीतो भविष्यति ॥
तमेव वद देवेश यः प्रियो भवतः सदा ॥२४॥
जपतां सर्वसम्पत्ति कारकंपुत्र पौत्रदम् ॥
सार्व भौम पदं श्चैव ध्यायितां कामदं सदा ॥२५॥
अन्ते च भवत्पदं प्राप्तिं ददाति नियतात्मनाम् ॥
एवं मुतंवद प्रीत्या मयि वाराह मानद ॥२६॥
॥ सूत उवाच ॥
इति पृष्टस्तदा भूम्या वाराहो नृपसत्तम ॥
प्रीत स्तामाह राजर्षे भूमि प्राणप्रियाम्विभुः ॥२७॥
श्रीवाराह उवाच
श्रृणु देविपरं गुह्यं सद्यः सम्पत्ति कारकम् ॥
भूमिदं पुत्रदं गोप्य मप्रकाश्यं सदाप्रिये ॥२८॥

सखियों के साथ पृथ्वी देवी ने रक्त कमल के समान नेत्रवाले श्री वाराह भगवान से पूछा था ॥२३॥

धरणीदेवी बोली ॥ हे देव किस मन्त्र से आराधना-करने पर आप प्रसन्न होते हैं हे देवेश वही मन्त्र आप कहिये जो आप का सदैव प्रिय है ॥२४॥ जिस मन्त्र का जप करने से समस्त सम्पत्ति तथापुत्र पौत्रको देने वाला तथा सार्वभौम पद को भी देने वाला ध्यानकर्ता के कामना की पूर्ति-करने वाला हो ॥२५॥ अन्त में आप का पद प्राप्त हो ॥२६॥ सूतजी बोले हे शौनक पृथ्वी देवी से ऐसा पूछेजाने पर

किञ्च शुश्रूषवे वाच्यं भक्ताय नियतात्मने ॥
ॐ नमः श्री वराहाय धरण्युद्धरणाय च ॥२९॥
वह्नि जायां समायुक्तः सदा जप्यो मुमुक्षुभिः ॥
अयं मन्त्रोवरा देवि सर्वसिद्धि प्रदायकः ॥३०॥
ऋषिः संकर्षणः प्रोक्तो देवतात्वहमेवहि ॥
छन्दः पंक्तिः समाख्याता श्रीं बीजं समुदाहृतम् ॥३१॥
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं सद्गुरोर्लब्ध्व तन्मनुः ॥
जुहुया त्पायशान्न मौ क्षौद्रसर्पिः समन्वितम् ॥३२॥
ध्यानञ्चापि प्रवक्ष्यामि मनः शुद्धि प्रदायकम् ॥
शुद्ध स्फटिक शैलाभं रक्त पद्मदलेक्षणम् ॥३३॥

श्री वाराह भगवान् कहने लगे ॥२७॥ श्री वाराह भगवान् बोले ॥ हे देवी परम गोपनीय साक्षात् सम्पत्ति को देने-वाला, भूमि तथा पुत्रादिक को देनेवाला सर्वकाल में गोपनीय है ॥२८॥ ॐ नमो श्री वराहा धरण्युद्धरणाय स्वाहा इस मन्त्र को मोक्षार्थी अवश्य जपे ॥२९॥ हे धरादेवी यह मन्त्र सदा सिद्धि को देनेवाला है ॥३०॥ इस मन्त्रका संकर्षण ऋषि है पंक्ति छन्द है श्रीं बीज है मैं देवता हूँ ॥३१॥

सद्गुरु से इस मन्त्र को लाभ कर चार लाख जप करे घृत तथा मधु से युक्त पायस से होम करे ॥३२॥ मन को शुद्धि को देने वाला ध्यान भी कहता हूँ शुद्ध स्फटिक पर्वत की कान्ति के सदृश रक्तकमलदल के समान नेत्र वाला सदृश सुन्दर मुख चारबाहु किरीट को धारण किये हुये

वाराह वदनं सौम्यं चतुर्बाहु किरीटिनम् ॥
श्रीं वत्सपद वक्षस्थं शंखचक्र कराम्बुजम् ॥३४॥
वामोरुस्थितया युक्तं त्वयामां सागराम्बरे ॥
रक्त पीताम्बरधरं रक्ताभरण भूषितम् ॥३५॥
श्रीकुर्मपृष्ठ मध्यस्थं शेषमूर्त्यब्ज संस्थितम् ॥
एवंध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सदा चाष्टोत्तरं शतम् ॥३६॥
सर्वान् कामानवाप्नोति मोक्षश्चान्ते व्रजेद्ध्रुवम् ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वाच ततो भूमिः पप्रच्छ पुनरेवतम् ॥३७॥

भूमिरुवाच

केनैवा नुष्ठितन्देव पुराप्राप्तं फलञ्चकिम् ॥
इतिपृष्टः पुनर्देवः श्रीवराहोऽब्रवी दिदम् ॥३८॥

श्री वत्सपद को वक्षस्थल में धारण किये हुये शंख चक्रादिक को हाथमें लिये हुये ॥३४॥ हे सागराम्बरे बाम जङ्घापर आप स्थित रक्त तथा पीताम्बर को धारण किये हुये रक्त आभरण से भूषित ॥३५॥ श्री कुर्मपृष्ठ के मध्य शेष की मूर्तिरूपी कमल पर स्थित इस प्रकार ध्यान करके सदैव अष्टोत्तर शत जप-करे ऐसा करने से समस्त कामनाओं की पूर्ति लाभ कर अन्त में निश्चय मोक्ष लाभ करेगा ॥३६॥ ॥सूतजी बोले॥ हे शौनक श्री वाराह भगवान् के ऐसा कहने पर फिर पृथ्वी देवी बोली ॥३७॥ हे देव पहले किसने इस मन्त्रका अनु-ष्ठान किया और उन्हें क्या फल मिला सो हमें कहिये ! पृथ्वी

श्रीवाराह उवाच

पुरा कृतयुगे देवि धर्म्मोनाम मनुर्म्महान् ॥
ब्राह्मणोऽमुं मनुंलब्ध्वा जपित्वा धरणीधरे ॥३९॥
मांच दृष्ट्वा वरं लब्ध्वा प्राप्तोऽभू न्मामकं पदम् ॥
इन्द्रो दुर्वाससः शापात् पुराभ्रष्ट स्त्रिविष्टपात् ॥४०॥
अनेनेष्ट्वात्र मद्देवि पुनः प्राप्त स्त्रिविष्टपम् ॥
अन्येऽपि मुनयो भूमे जप्त्वा प्रापुः परां द्युतिम् ॥४१॥
अनन्तः पन्नगाधीशो ह्यमुं लब्ध्वाथ कश्यपात् ॥
श्वेत द्वीपे जपित्वैव बभूव धरणीधरः ॥४२॥
तस्मा ज्जप्यः सदा चेह मनुष्यैश्च धरार्थिभिः ॥
विधिना भक्ति भावेन प्राप्नुया दचलां श्रियम् ॥४३॥

देवी ऐसा कहने पर श्री वाराह भगवान् बोले ॥३८॥ सत्य युगमें पहले धर्म्म नामका मनु हुये। वह ब्रह्माजी से इस मन्त्र को लाभकर तब इस पर्वत पर जपकर ॥३९॥ इस मन्त्रके प्रभाव से मेरा दर्शन पाकर मेरा पदका लाभ किया। इन्द्र दुर्वासाके शाप से स्वर्ग से पहले समय में भ्रष्ट हुये ॥४०॥ हे देवी इसी मन्त्र से मेरा अनुष्ठान कर फिर स्वर्ग पाया हे भुमि देवी अन्य मुनिगण भी इस मन्त्र को जपकर परम गतिको प्राप्त किये ॥४१॥ पन्नग राज अनन्तनाग भी कश्यप मुनी से इसमन्त्र को लाभ कर श्वेतद्वीप में जप करने ही से धरणीधर हुये ॥४२॥ इस लिये हे देवी पृथ्वी कामी मनुष्य इस मन्त्र को अवश्य

सूतउवाच

इत्युक्त्वा भगवान्राजन् वाराहो धरणींप्रति ॥
माहात्म्यं मन्त्रराजस्य तत्रैवान्त र्दधेविभुः ॥४४॥
तस्मा त्कार्तिकमासस्य पौर्णमास्यां नृपोत्तम ॥
पूर्वोक्त विधिना राजन् पूजनीयो जगद्गुरुः ॥४५॥
वाराहो भगवां श्चात्र मन्दारे पर्वतोत्तमे ॥
इहलोके सुखंप्राप्य चान्ते विष्णुपुरं व्रजेत् ॥४६॥

जाप करें। विधि पूर्वक भक्ति भावसे जप करने पर अचला लक्ष्मीको प्राप्त करेंगे ॥४३ कपिल मुनी बोले, हे राजा परीक्षित इस प्रकार श्री वाराह भगवान् इस मन्त्र राज का महात्म्य कह कर वहीं पर अन्तर्धान हो गये ॥४४॥ हे नृपोत्तम, कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को पुर्वोक्त विधि से जगत के गुरु श्री वाराह भगवान् के इस पर्वत श्रेष्ट मन्दार में अवश्य पूजा करनी चाहिये ॥४५॥ इस से मृत्यु लोक में सुख प्राप्त कर अन्त में वह श्री विष्णु भगवान् की पुरी वैकुण्ठ धाम को अवश्य जायगा ॥४६॥

इति श्रीस्कन्दादिमहापुराणे कपिलपरीक्षितसम्वादे मन्दारमधुसूदन माहात्म्ये वाराह कुण्डमाहात्म्ये वाराहपूजनतन्मन्त्र कथनसमेतंनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ अ०॥

श्री कपिलदेव उवाच

तस्मा त्स्थानादधो भागे पथि पश्ये च्चतुर्भुजम् ॥
ततोऽपिविष्णुं सशिवं कमलादित्य संयुक्तम्॥१॥
तेषा मदृश्यम भागेतु शूकस्याश्रम मुत्तमम् ॥
यत्रो वास महायोगी शूको व्यासात्मजो मुनिः॥२॥
गच्छ ततः परम निर्जन देशमध्य
पूण्याश्रमं सकल योगि नृपस्यतस्य ॥
व्यासात्म जस्य हरिचिन्तन संस्थितोवै
यत्रस्थितः परमोद युतःशुकोऽसौ ॥३॥

परीक्षित उवाच

कदा जात्रायतः श्रीमान शूको व्यासात्मजो मुनिः ॥
कि कार्य्यं कृतवांश्चात्र कथय स्वानुकम्पया ॥४॥

कपिल मुनि, बोले हे राजा परीक्षित उस स्थान से नीचे भाग में चतुर्भुज भगवान् शङ्कर जी का तथा आदित्य इन सब का दर्शन करना चाहिये ॥१॥ उस स्थान से पश्चिम भाग में श्री शूकदेव जी का विलक्षण आश्रम यहाँ पर महा योगी व्यास पुत्र श्री शूकदेव जी ने वास कीया था ॥२॥ अनन्त जन रहित पवित्र आश्रम में विष्णु भगवान का ध्यान करते हुये श्री शूकदेव जी वर्त्तमान हैं ॥३॥ राजा परीक्षित बोले, हे कपिलदेव जी यहाँपर श्री व्यास जी के पुत्र श्री देव शूकजी कब आये और कौन कार्य्य किये सो कृपा कर

सूत उवाच

इति राज वचः श्रुत्वा प्रसन्नो मुनि सत्तमः ॥
कथयामास वृतान्तं महात्मा कपिलोमुनिः ॥५॥

मुनिरुवाच

कथयामि महाराज वृत्तान्तं सुमनोहरम् ॥
श्रूयतां राजशार्दूल सर्वपाप प्रणाशनम् ॥६॥
एकदा तीर्थयात्रायाम् भ्रान्तं देश मनेकशः ॥
मिथिला मगमद्योगी शूकोव्यासात्मजो मुनिः ॥७॥
मैथिलेनच सम्वादो विविधार्थ प्रदर्शकः ॥
वाक्यै र्नानाविधैर्द्धी मन् तत स्तुष्टो महामुनिः ॥८॥
बहुकालं समास्थाय शान्तिम्प्राप्य ततो मुनिः
कौशिक्याः पुलिनेरम्ये यत्रशृङ्गेश्वरः शिवः॥ ९॥

कहिये ॥४॥ सूत बोले हे शौनक राजा का वचन सुन कर महात्मा कपिल मुनि कहने लगे ॥५॥ कपिल मुनि बोले। जिसके सुनने से सब पाप दूर हो जाते हैं वह वृतान्त मैं आप से कहता हूं ॥६॥ एक समय तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग से अनेक देश भ्रमण करते २ श्री व्यास जी के पुत्र शूकदेव मुनी मिथिला आये ॥७॥ अनन्तर मैथिल राज श्रीजनकजी से विविध अर्थको देखने वाले अनेक प्रकार के वार्तालाप से महा मुनी श्री शूकदेवजी सन्तुष्ट होकर ॥ ८॥ बहुत कालतक वहाँ पर महा शान्ति पाकर तब रमणीय कौशिकी के तीर पर जहाँ

आजगाम महायोगी वली व्यासात्मजो नृप ॥
स्थित्वा तत्र कियत्कालं ततो गङ्गा तटेशुभे ॥१०॥
वटेश्वरस्य निकटे तस्थौ चिरतरं मुनिः ॥
ततोगङ्गां समुत्तीर्य वृद्धेश्वर समीपं ययौ ॥११॥
स्थित्वा तत्रकियत्काल ततो ह्यंगाधिप स्मृतः ॥
मन्दार मगमद्योगी कुण्डे मन्दार संज्ञके ॥१२॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा प्रार्थयित्वा नगोत्तमम् ॥
आरुरोह ततो राजन् मन्दार पर्वतोत्तमम् ॥१३॥
मार्गे बहुविधान् देवान् प्रणमन् मुनिपुङ्गवः
चक्रावर्त्तं ततो गत्वा स्नात्वा तत्रविशुद्ध धीः ॥१४॥

बटेश्वर शिव थे वहाँ आये ॥९॥ अनन्तर जितेन्द्रिय व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेव जी कुछ काल तक रह गङ्गाके तटपर ॥१०॥ श्री वटेश्वरके निकट फीर गङ्गा पार होकर भागलपुर (भगदत्तपुर) में (वृद्धेश्वर) बुढ़ानाथ के समीप आये ॥११॥ वहाँपर कुछ कालतक रहकर तब अङ्गदेस के अधिपति श्रीमन्दार पर्वत के निकट मन्दार कुण्ड के समीप आये ॥१२॥ वहाँपर स्नान कर नित्य कृत्य समाप्त कर पर्वत श्रेष्ठ श्री मन्दार की प्रार्थना कर ॥ तब मन्दार पर्वत पर आरोहन किया ॥१३॥ मार्ग में बहुत प्रकारके देवादिकों को प्रणाम करते हुए मुनि श्रेष्ठ शुकदेव जी चक्रावर्त्त कुण्ड जाकर विशुद्ध भाव से वहाँपर स्नानादिक कर ॥१४॥ शेष पर स्थित पद्म नाभ भगवान् की पूजा कर तद्गुहा को

शेषासीनं प्रपूज्याथ गुहा सोदर मगात् ॥
ततो यत्र रमानाथो नृसिंहो भगवान् प्रभुः ॥१५॥
भुक्ति मुक्ति प्रदानार्थं सदातिष्ठति इत्यहो ॥
तत्र नाना प्रकारैस्तु पूजयित्वा प्रयत्नतः ॥१६॥
नागार्जुनं ततोराजन् धाम्नो दुर्वाससो यतः ॥
वामनञ्च नमस्कृत्य वियद्गङ्गां ततो नृप ॥१७॥
स्नात्वा तज्जल मानीय भक्ति भाव समन्वितः ॥
तत्पार्श्वे मधुसूदनं रामभद्रेण यत्कृतम् ॥१८॥
दृष्ट्वा तत्र महाराज यत्रशंखो विराजते ॥
जगामाथ महायोगी शंख सम्प्रार्थ्य भास्करः ॥१९॥
ततः सौभाग्य कुण्डञ्च गत्वा स्नात्वाथ भक्तितः ॥
पूजयामास देवेशं रामेण कारितञ्च यत् ॥२०॥

वहां पर भोग मोक्ष को देने वाला दैत्यों को मार ने वाला नृसिंह वर्त्तमान है ॥ वहां पर अनेक प्रकार से यत्न पूर्वक पूजा कर ॥१६॥ अनन्तर हे राजा परीक्षित दुर्वासा मुनि के आश्रम में नागार्जुन तथा वामन भगवान को नमस्कार कर तब आकाश गङ्गा के पास गये ॥१७॥ वहां पर गङ्गा जल ला कर भक्ति भाव से स्नानादिक कर तत्पश्चात् कर उस पास में रामभद्र मुनि से किये गये मधुसूदन के शेषमूर्ति ॥१८॥ को देख कर तब शंख कुण्ड गये। वहां पर योगी शंख को प्रार्थना कर ॥१९॥ अनन्तर सौभाग्य कुण्ड जाकर भक्ति भावसे स्नानादिक कर तब रामचन्द्र

शान्तं शान्तिप्रदं कान्तं कमनीयं मनोहरम् ॥
भक्ताभीष्ट प्रदं राजन् दैत्यदानव सूदनम् ॥२१॥
मधुसूदन देवेशं चतुर्वर्ग फलप्रदम् ॥
सौभाग्या न्नैऋते भागे वाराणस्यां महामते ॥२२॥
पूजयित्वाथ विश्वेशं विधिना भक्तिभावतः ॥
ततो जगाम समुनि र्वाराहो यत्र संस्थितः ॥२३॥
धरण्या सहितो देवो चतुर्वर्ग फलप्रदः ॥
पूजयित्वाथ तन्देवं मारुरोह ततो मुनिः ॥२४॥
शिखरं यत्र राजेन्द्र त्रिपुरारि र्महेश्वरः ॥

पूजयित्वाथ तन्देवं जगाम च ततो मुनिः ॥२५॥

से प्रतिष्ठित देवेश ॥२०॥ शान्त स्वरूप तथा शान्ति को देनेवाला अत्यन्त सुन्दर और मनोहर भक्तोंका अभीष्ट देने वाले दैत्य दानव को नाश करने वाले ॥२१॥ और चारो पदार्थ को देने वाले श्री मधुसूदन देव का पूजन कर तब सौभाग्य कुण्ड से नैऋत भाग में वाराणसी गये ॥२२॥ हे महा मते वाराणसी जाकर भक्तिभावसे विश्वनाथ की पूजाकर तब जहां वाराह भगवान् थे वहां गये ॥२३॥ वहां पर चारो पदार्थ को देनेवाले धरणी देवी सहित वाराह भगवान् की पूजा कर तब शुकदेव मुनी ने शिखर पर आरोहण किया ॥२४॥ जहां पर त्रिपुरारीश्वर भगवान् थे उनका पूजन कर तब वह मुनी वहां पर गये ॥२५॥ जहां ब्रह्मा जी से स्थापित दैत्य दानव को मर्दन करनेवाले भगवान श्रीम

यत्र तिष्ठति दैत्यारि र्भगवान् मधुसूदनः ॥
ब्रह्मणा स्थापितो देवो दैत्य दानव मर्दनः ॥२६॥
तत्र गत्वा महायोगी शुको व्यासात्मजो मुनिः ॥
प्रणनाम ततो राजन् दृष्ट्वा चाद्भुत विग्रहम् ॥२७॥
मन्दाराद्रि समासीनं योगमाया समावृतम् ॥
नील जीमूत संकाशं पीत कौशेय वाससम् ॥२८॥
कौस्तु भोद्भासिताङ्गञ्च वनमाला विभूषितम् ॥
शंख चक्र गदा पद्म धारिणं दैत्यसूदनम् ॥२९॥
वामाङ्गे संस्थिता देवी कमला कमलप्रिया ॥
दक्षिणे भारती भाति मध्ये श्री मधुसूदनम् ॥३०॥
पूजयित्वा विधानेन भक्ति भाव समन्वितः ॥
तस्थिवान् कति चित्काला न्देवस्यपुरतो मुनिः ॥३१॥
तत्प्रान्ते नैऋते भागे कचिरं कृतवान् मुनिः ॥
कुटीरं निविड़ं राजन् वृक्षच्छाया समन्वितम् ॥३२॥

यत्र देव जी वर्तमान हैं ॥२६॥ वहां पर इनका अद्भुत शरीर देख कर तब व्यास पुत्र श्री शुकदेवजी ने उनको प्रणाम किया ॥२७॥ मन्दार पर्वत पर स्थित योगमाया से सेवित मेघके समान श्याम वर्ण पीताम्बर धारण किये हुये ॥२८॥ कौस्तुभ मणि से शोभित शरीर वनमाला से भूषित शंख, चक्र, गदा, पद्म, को धारण किये हुये दैत्यसूदन ॥२९॥ वाम भाग में लक्ष्मी दक्षिण भाग में सरस्वती मध्यमें श्री मधुसूदनदेव को विराजमान देखा ॥३०॥ भक्ति भाव से पूजन कर बहुत काल तक भगवान के आगे

गह्वरं रुचिरस्तत्र मन्दारेच नृपोत्तम ॥
दृष्ट्वाति मुमुदे योगी योगाभ्यास रतः सदा ॥३३॥
दक्षिणे तस्य वासस्य शुकतीर्थं मनुत्तमम् ॥
दर्शनीयं महा पुण्यं चतुर्वर्ग फलप्रदम् ॥३४॥
तत्रावगाहनं कुर्यात् नत्वा शुकं मुहुर्मुहुः ॥
ध्येयस्तत्र जगन्नाथो भवरोग निवृत्तये ॥३५॥
इति ते कथितं राजन् शुकदेवो यथागतः ॥
मन्दारे राजशार्दूल किमन्यच्छ्रोतु मिच्छसि ॥३६॥

खड़े रहे ॥३१॥ अनन्तर नैऋत्य कोण में वृक्ष की छाया मे
सुन्दर कुटी का निर्माण किया ॥३२॥ अनन्तर मन्दा
में सुन्दर गुफा और योगाभ्यास में रत योगी श्री शुकदेव जी
को देख परमानन्दित हुये ॥३३॥ उस कुटी से दक्षिण भाग
शुक तीर्थ है वह दर्शनीय तथा महान फल को देने वा
तथा चारों पदार्थ को देने वाला है ॥३४॥ वहाँ पर श्री शुकदे
जी को बारम्बार प्रणाम कर उस तीर्थ में अवगाहन कर त
पर सांसारिक रोग से विमुक्त होने के लिये श्री जगन्नाथ
ध्यान कर ॥३५॥ कपिल देव जी राजा परीक्षित से क
लगे। हे राजा परीक्षित मन्दार में जिस प्रकार श्री शुकदेव
आये वह हमने आप से कहा हे राज शार्दूल और क्या सु
की इच्छा है ॥३६॥
इति श्री स्कन्दादि महापुराणे कपिलपरीक्षित सम्वादे म
महात्म्ये मन्दारे शुकदेव मुने रागमनन्नाम विंशोऽध्यायः॥

सूत उवाच ॥
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिपुरारीश्वरस्यच ॥
चरित्रञ्चाति रुचिरं शृणुष्व मुनिसत्तम ॥१॥
एकदा सुखमासीनं कैलाशे शंकरम्मुदा ॥
नाना वादित्रघोषेण शोभनं सर्वतो दिशम् ॥२॥
तत्तस्मिन् समये राजन् त्रिपुरो दानवेश्वरः ॥
गणेश वरदर्पेण सर्वान् लोकान् विजित्यच ॥३॥
चकार स्ववशो सर्वान् देवासुर महेश्वरान् ॥
आक्रम्य देवधिष्ण्यानीन् दैत्यौघा ब्रह्मणः पदम् ॥४॥
पराक्रमं दैत्यकृतं श्रुत्वा देवमुखात्सुरा ॥
ब्रह्मा ययौ नाभिपद्मं विष्णुः क्षीरनिधि स्थितौ ॥५॥
दैत्यस्य मानसौ पुत्रौ प्रचण्डश्चण्ड एवच ॥
प्रचण्डं स्थापयामास ब्रह्मलोकेऽपि नायकम् ॥६॥

सूत जी बोले, हे शौनक अब मैं त्रिपुरारीश्वर शंकर भगवान का रुचिर चरित्र कहता हूं। हे मुनि सत्तम आप सुनिये ॥१॥ एक समय अनेक बाधा से युक्त कैलाश में शंकर जी सुख पूर्वक बैठे थे ॥२॥ उसी समय में हे राजा परीक्षित, गणेश से वर पाकर समस्त लोक को जीत कर ॥३॥ समस्त देव राक्षसादिक को वश कर तथा देवादिक स्थान पर आक्रमण कर वह दैत्य ब्रह्म लोक को गया ॥४॥ देवता लोगों के मुख से दैत्योंका पराक्रम सुन कर श्री ब्रह्माजी विष्णु भगवान के यहाँ गये ॥५॥ दैत्य के मानस

ततश्चण्डश्च वैकुण्ठ चकार स्वामिनं स्वयम् ॥
ततः कैलाशमगमत् युद्धाकांक्षी महाऽसुरः ॥७॥
बाहुभ्यां तोलयामास कैलाश मशुरेश्वरः ॥
तेनतुष्टो महादेवो दैत्यस्य पौरुषेणच ॥८॥
वहिर्ययौ वरन्दातुं निज भक्त सुख प्रदः ॥
ददर्श त्रिपुरं दैत्यं दानवानां महाप्रभुम् ॥९॥
प्रसन्नस्तंमहाराज वरंवृणित्यथा ब्रवीत् ॥

त्रिपुर उवाच ॥

यदि तुष्टो महाराज देहि कैलाश मद्यमे ॥१०॥
गच्छ मन्दार शिखरं यावन्मम मनोरथम् ॥
शंकरोऽपि ददौ तस्मै कैलाशं स्वल्पकालिने ॥११॥

पुत्र प्रचण्ड तथा चण्ड थे। उनमें प्रचण्डको ब्रह्मलोक का नायक बनाया ॥६॥ चण्डको वैकुण्ठका स्वामी बनाया। अनन्तर युद्ध की आकांक्षा से त्रिपुरासुर कैलाश गया ॥७॥ वह दैत्योंका राजा त्रिपुरासुर ने अपने बाहु के बल से कैलाश को तौला। ऐसा दैत्यों का पुरुषार्थ देख कर श्री महादेव जी प्रसन्न हुये ॥८॥अपने भक्तों को सुख देने वाले श्री महादेव जी बाहर गये वहां पर उन्होंने दानवों के महा प्रभु त्रिपुरासुर को देखा ॥९॥ उसके उपर प्रसन्न होकर वर मांग ऐसा कहा। त्रिपुरासुर बोला, हे महाराज यदि आप मेरे उपर प्रसन्न हैं तो आप कैलाश हमें दीजिये ॥१०॥ जब तक मेरा मनोरथ कैलाश में रहने का है तब तक आप मन्दार जाइये ॥११॥ शङ्कर भगवान

स्वयं जगाम गिरिशो मन्दाराद्रि गणैर्वृतः ॥
तद्दिनात्स्य चात्रैव रमयामास शङ्करः ॥१२॥
ततः कति पये वर्षे व्यतीते तस्य भोमुने ॥
आजगाम च तत्रापि यत्र शम्भु विराजते ॥१३॥
युद्धा काङ्क्षी महा दैत्यो गौरी हरण लोलसः ॥
प्रेषयित्वा हरस्यान्तं दूतं दैत्यो महाबलः ॥१४॥
त्रिपुरो मुनि शार्दूल तुष्टोऽपहृत चेतनः ॥
तत्र गत्वा च दूतेऽसौ शङ्करम्प्रत्युवाचह ॥१५॥

दूत उवाच

प्रेषितोऽहं महाराज त्रिपुरेण बलीयसा ॥
गौरीन्देहाथवा युद्धं कियतान्तेन शंकर ॥१६॥

जी कुछ काल के लिये त्रिपुरासुर को कैलाश देकर स्वयं गण मन्दार पर्वत पर गये ॥ उस दिन से लेकर मन्दार ही में श्री शङ्कर भगवान रमण करने लगे ॥१२॥ अनन्तर कुछ दिन व्यतीत होने पर हे मुनी वहां पर भी त्रिपुरासुर आया। वहां पर शङ्कर भगवान विराजमान थे ॥१३॥ युद्ध की इच्छा करनेवाला गौरी हरण लालसा से शङ्कर जी के पास अपना दूत भेजा ॥१४॥ दुष्टता से नष्ट बुद्धि वाला त्रिपुरासुर से भेजा हुआ दूत वहाँ पर जा श्री शङ्कर जी के प्रति बोला ॥१५॥ दूत बोला हे शंकर जी महाबली त्रिपुरासुर हमें आपके पास भेजा है। आप गौरी मुझे दीजीये अथवा उस के साथ युद्ध कीजीये ॥१६॥ हे पार्वतीनाथ शीघ्र हमें कहिये कि आपकी

ब्रूहि कामयस्यामि त्रिपुराय महात्मने ॥
तत्सर्वं प्रकल्पनाय यत्तमनसो वर्तते ॥१७॥

सूत उवाच

इति दूतमुखाच्छ्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥
प्रत्युवाच ततः शम्भु दूतं प्रति महामते ॥ १८॥

शंकर उवाच

शृणु दूत मे वाक्यं ब्रूहि तस्मै दुरात्मने ॥
त्रिपुराय वचमेऽद्यं यथा यथावत्तथान्यथा ॥१९॥
यद्वलक्ष समाश्रित्य मदोन्मत्त विलोचनः ॥
परस्त्री हरणाकांक्षी भाषते पौरुषस्य च ॥२०॥
तद्बलस्य फलं संख्ये दास्येहं नात्र संशयः ॥
कर्ताऽहं दुष्टसंहार कारको दर्पहारक ॥२१॥

क्या मानसिक इच्छा है। जैसा आपकु कहें मैं महाबली त्रिपुरासुर को जाकर कहूं ॥१७॥ सूतजी बोले हे शौनक दूत के मुख से ऐसी बात सुनकर क्रोध से लाल नेत्र करके दूतके प्रति श्री शंकर जी बोले ॥१८॥ हे दूत मैं सिद्धान्त बात कहता हूं। यह मेरी बात यथार्थ रूपसे उस दुरात्मा त्रिपुरासुर को जाकर कहिये ॥१९॥ जिसका बलपाकर मदसे मत्त होकर परस्त्री हरण की लालसा से दुष्ट वाक्य बोलता है ॥२०॥ उस बल का फल मैं उस दुष्ट को संग्राम में दूंगा इसमें संशय नहीं मैं कहता हूं दुष्ट संहार कर्ता तथा दर्प हरण करने वाला हूं इसमें संशय नहीं ॥२१॥

सूत उवाच

इति शम्भु मुखाच्छ्रुत्वा वाक्यन्तस्मै निवेदितम् ॥
दूतेन मुनिशार्दूल त्रिपुराय दुरात्मने ॥२२॥
श्रुत्वा दूतमुखात्तासो शंकरेणोदितं वचः ॥
युद्धोद्योगं चकाराथ त्रिपुरो दानवेश्वरः ॥२३॥
शंकरोऽपि समाहूय ब्रह्मविष्णु सुरान् मुने ॥
पराक्रमं यस्तेन युद्धं कर्तुं स्थितो हि सः ॥२४॥
धरामयं रथंकृत्वा धनुःकृत्वा हिमाचलम् ॥
वेदांश्च वाजिनः कृत्वा गुणंकृत्वाथ वासुकिम् ॥२५॥
विरञ्चिं सारथिं कृत्वा विष्णुं कृत्वा पतत्रिणम् ॥
रथचक्रे पुष्पदन्तौ प्रतोद प्रणवात्मकम् ॥२६॥
ताराग्रह मयान्कीलान् वरूथं गगनात्मकम् ॥
ध्वजदण्डं सुमेरुञ्च प्रांशु कल्पतरुं ध्वजम् ॥२७॥

सूतजी बोले, इस प्रकार शंकरजी के मुख से वाक्य सुनकर दूत ने त्रिपुरासुर को समस्त वृत्तान्त सुनाया ॥२२॥ उसके मुख से शंकर जीके यथार्थ कथन को सुनकर दानवोंके राजा त्रिपुरासुर ने युद्ध का उद्योग किया ॥२३॥ शंकर जी भी ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रादिक समस्त देवगण को बुलाकर युद्ध के लिये तत्पर हुये ॥२४॥ पृथ्वी को रथ बना, हिमालय का धनुष बना, ब्रह्माजी को सारथि कर विष्णु भगवानको बाण बनाकर; वेदको घोड़ा बना, वासुकी नाग को गुण रथ चक्र में पुष्पदन्त को बना ॥२५॥ ओंकार को-

योक्त्राणि चक्षुः श्रवसं छन्दांस्यङ्गानि रक्षकान् ॥
भल्लं कालाग्नि रुद्राख्यं पुङ्खीकृत्वा प्रभञ्जनम् ॥२८॥
प्रलयाग्नि समं भूत्वा शरेणैकेन शंकरः ॥
भस्मसात्तं चकाराथ त्रिपुरं दानवेश्वरम् ॥२९॥
ततो देवा मुमुदिरे पुष्पवृष्टि मवाकिरन् ॥
गन्धर्वा ननृस्तु स्तत्र जगु रप्सरसां गणाः ॥३०॥

सूत उवाच

शम्भुना निहते दैत्ये त्रिपुरे दानवेश्वरे ॥
स्व स्व स्थानञ्च सम्प्राप्य स्वस्थाः सेन्द्र दिवौकसः ॥३१
बभूवु मुनि शार्दूल हृत भारा वसुन्धरा ॥
शंकरोऽपि निजं लिं मधुसूदन सन्निधौ ॥३२॥

प्रतोद बना, ॥२६॥ तारा गण को काल बना, आकाश को वरुथ बना, सुमेरु को ध्वजादण्ड बना, कल्प तरु वृक्ष को ध्वजा बना ॥२७॥ चक्षुःश्रवा को योक्त्र बना, वेदाङ्गको रक्षक बना, कालाग्निका भाला बना, प्रभञ्जन को पुंख बना ॥२८॥ प्रलय-कालिन अग्नि सदृश एक शर बना, दानवेश्वर त्रिपुरासुर को एक ही सर से भस्मसात कर दिया ॥२९॥

अनन्तर देवता लोग प्रसन्न होकर पुष्प वृष्टि किये। गन्धर्व लोग नाचने लगे, अप्सरा गण गान करने लगे ॥३०॥ सूत जी बोले, हे मुनी दानवों का ईश्वर त्रिपुरासुर जब शङ्कर जी से मारा गया तब देवता लोग स्वस्थ्य होकर अपना २ स्थान पर आये ॥३१॥ हे मुनी शार्दूल पृथ्वी

मन्दार शिखरे रम्ये सुप्रतिष्ठा पितं मुने ॥
जगाम गिरीशो राजन् गौर्य्या सह सदाशिवः ॥३३॥
कैलाशाचल मव्यग्रं सगणश्च नृपोत्तम ॥
तदा रभ्यच तन्नाम त्रिपुरारीश्वर स्मुने ॥३४॥
विख्यातं त्रिषुलोकेषु देव दानव पुजितम् ॥
पुजयामासु रथते ऋषयो मानवादयः ॥३५॥

मुनिरुवाच

इति ते कथितं राजन् त्रिपुरारीश्वरस्य च ॥
मन्दारे राज शार्दूल माहात्म्य चाति पावनम् ॥३६॥
य इदं पठतेऽध्यार्थं पाठयेद्वापि भक्तितः ॥
सर्वान् कामान वाप्नोति चान्ते शैवपुरं व्रजेत् ॥३७॥

भार से रहित हो गयी शंकर जी भी अपना लिङ्ग सुन्दर मन्दार शिखर में मधुसूदन के पास प्रतिष्ठित कर ॥३२॥ तब गौरी सहित सगण शंकर भगवान आनन्द पूर्वक कैलाश पर्वत पर गये ॥३३ उसी दिन से उनका नाम त्रिपुरारीश्वर पड़ा। और तीनों लोक में विख्यात देव दानव से पुजित हुये। अनन्तर ऋषि जन तथा मनुष्यादिक से पुजित हुये ॥३४, ३५॥ हे राजा मन्दार में श्री त्रिपुरारीश्वर का माहात्म्य मैं आप को कहा ॥३६ जो इस अध्याय को पाठ करेगा या करावेगा वह इस लोक का सब मनोरथ पूर्ण कर अन्त में शिव लोक को जायगा ॥३७॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे कपिल परीक्षित सम्वादे मन्दार माहात्म्ये त्रिपुरारीश्वर माहात्म्य कथनन्नामैक त्रिंशोऽध्यायः॥

ऋषिरुवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विष्णुपद्या नृपोत्तमः ॥
महात्म्यं रुचिरन्तत्र भुक्ति मुक्ति फल प्रदम् ॥१॥
मन्दारकुण्डा द्वारुण्यां विष्णोः पादविभूषिता ॥
अतो विष्णु पदीराजन् विख्याता पापहारिणी ॥२॥
तस्मा द्विष्णुपदं धीर गन्तव्यं पदभूषितम् ॥
मुरारेर्दिवसं राजन् उपोष्य स्नानमाचरेत् ॥३॥
गङ्गानीरसमा धारा पतनैव सुशोभिता ॥
स्नात्वा तत्र महाराज कुण्डे विष्णुपदे शुभे ॥४॥
स्वर्गवासी भवेत्तस्य देवतुल्य समश्चिरम् ॥
तेजोवीर्य्यं बलश्चैव मानं लक्ष्मीञ्च विन्दति ॥५॥

कपिलदेव जी बोले, हे नृपोत्तम सम्प्रति मैं विष्णुपदी का माहात्म्य कहता हूं। जिसके श्रवण से भोग मोक्ष दोनों प्राप्त होता है ॥१॥ हे राजन मन्दार कुण्ड से पश्चिम दिशा में विष्णुपाद से भूषित है इसलिये उसका नाम विष्णुपदी कहलाता है। समस्त पाप को हरन करने वाली जगद्विख्यात है ॥२॥ हे धीर एकादशी तिथि में उपवास करके जो कोई स्नान करना चाहता ॥३॥ गङ्गाजल सदृश शोभायमान जल पतन से रमणीय विष्णुपद भूषित उसमें स्नान करने से देवता सदृश स्वर्ग में चिरकाल पर्य्यन्त वास करता है ॥४॥ इस लोक में तेज वीर्य्य, बल,

भीत्वा बिम्बं भगवतः सहस्रांशोः सुदीप्तिमान् ॥
स्वर्गमासाद्य राजेन्द्र तिष्ठतीन्द्रसमः पुमान् ॥६॥
सम्पूज्य चरणौ विष्णो यंत्रि श्राद्धं करोतिच ॥
नरस्तत्र तदा राजन् वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥७॥
तृप्ता भवन्ति पितरो नात्रकार्य्या विचारणा ॥
पुरा त्रेतायुगे राजन् रामो दशरथात्मजः ॥८॥
वनवास प्रसङ्गेन तीर्थयात्रा प्रसङ्गतः ॥
समागत्यच्च मन्दारे कुण्डे मन्दारसंज्ञके ॥९॥
स्नात्वा विधिविधानेन नित्य कृत्यं समाप्यच ॥
एकभूक्ताशनो धीमान् ध्यायन् विष्णुं सनातनम् ॥१०॥

मान, लक्ष्मी इत्यादि लाभ करता है ॥५॥ श्री सूर्य्यभगवान का बिम्ब भेदन कर हे राजन् स्वर्ग में इन्द्र सदृश वास करता है ॥६॥ श्रीविष्णु भगवान के चरण की पूजा कर जो कोई श्राद्ध करेगा ॥ हे राजा परीक्षित उसके पितर दश हजार वर्ष तक तृप्त होते हैं। इसमें संदेह नहीं ॥७॥ हे राजन् पहिले त्रेता युग में महाराज दशरथ जी के प्रिय पुत्र रामचन्द्र जी हुये ॥८॥

वह वनवास में तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में मन्दार पर्वत के समीप मन्दार कुण्डके समीप आकर विधियुक्त स्नानादिक कर नित्य कृत्य, समाप्त करनेपर सनातन विष्णुका ध्यान करते हुये एक सन्ध्या भोजन कर कुछ काल तक ठहरे ॥९॥

ततो विष्णुपदीन् धीर गत्वा रामोमहामतिः ॥
उवास दिनमेकन्तु प्रभाते रघुनन्दनः ॥११॥
समाहूय वाशिष्ठादीन कुलवृद्धगुरुन्न नृप ॥
स्नात्वाच विष्णुपद्यांस पितृश्राद्ध ञ्चकारह ॥१२॥
वैदिकान् ब्राह्मणांस्तत्र भोजयित्वा ततोविभुः ॥
प्रचुरन् दत्तवांस्तेभ्यो द्विजेभ्यो भुरिभोजनम् ॥१३॥
ततो गम्भीर कुण्डञ्च गाम्भीर्य्यं फलदायकम् ॥
विष्णुपद्याः प्रतीच्याञ्च जगाम पुरुषोत्तमः ॥१४॥
त्रिस्रोधारा श्यामवर्णा यत्रगच्छन्ति वैनृप ॥
यत्र स्नात्वा जगन्नाथं समभ्यर्च्यांति भक्तितः ॥१५॥
सप्तद्वीप पतिर्भूत्वा चान्ते स्वर्गं वसेच्चिरम् ॥
उपोष्यैकदिनं तत्र प्रातःकाले समाहितः ॥१६॥

॥१०॥ हे धीर अनन्तर विष्णुपदी गये वहां पर महा मतिमान रघुनन्दन श्री रामचन्द्रजी एक दिन रह कर ॥११॥ प्रातःकाल कुलवृद्ध गुरुवशिष्ठादिक को बुलाकर विधियुक्त स्नानादिक कर तब विष्णुपदी गङ्गा में श्राद्ध किये ॥१२॥ अनन्तर वैदिक ब्राह्मणादिक को बुला कर भोजन करा दीन ब्राह्मणादिक को भोजन तथा प्रचूर दान दिये ॥१३॥ अनन्तर गम्भीर फलको देनेवाला विष्णुपदी से पश्चिमदिशा में पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी गये ॥१४॥ यहां पर तीन धारा श्यामवर्ण परगिरती है । हे नृप यहां पर स्नानकर धेय श्री जगन्नाथजी का पूजनकर भक्ति भावसे ॥१५॥ अनन्तर सात द्वीपका अधिपति होकर अन्तमें

समभ्यर्च्य जगन्नाथं भोजयित्वा द्विजान्ततः ॥
सोमकुण्डन्ततो राजन् जगाम राघवो महान् ॥१७॥
स्नात्वा तत्र विधानेन् नित्यकृत्यं समाप्यच ॥
तस्थिवान् कतिचित्कालान् ध्यायन् ब्रह्मसनातनम् ॥१८

परीक्षित उवाच

सोमकुण्डस्य माहात्म्यं विस्तरेण द्विजोत्तम
श्रोतुमिच्छामि विप्रेन्द्र कथयस्वानु कम्पया ॥१९॥

ऋषिरुवाच

कथयामि महाराज सेतिहासम् पुरातनम् ।
शंकरेणच सम्वाद स्कन्दस्यच महामते ॥२०॥

स्कन्द उवाच

सोमकुण्डस्य माहात्म्यं वदमे वदताम्बर ॥
त्वत्प्रसादादहं श्रोतुं इच्छामिपुरुषोत्तम् ॥२१॥

स्वर्गवास चिरकाल पर्य्यन्त। करता है॥ वहां पर एक दिन उपवास कर प्रातः कालमें सयत्न होकर ॥१६॥

श्री जगन्नाथ जी की पूजाकर तथा ब्राह्मण श्रेष्ठको भोजन करा अनन्तर राघव श्री रामचन्द्रजी सोमकुण्ड गये ॥१७॥ वहां पर विधिपूर्वक भक्तिभावसे स्नानकर नित्यकृत्य समाप्त करके सनातन परब्रह्मका ध्यान करते हुये बहुत काल तक रहे ॥१८॥ परीक्षित बोले, हे विप्रेन्द्र सोमकुण्ड का माहात्म्य विस्तार पूर्वक कृपा कर हमे कहिये ॥१९॥ कपिल मुनि बोले, हे महाराज परीक्षित इतिहासपूर्वक मैं सोमकुण्ड का माहात्म्य कहता हूं सुनिये ॥ यही बात श्री कार्तिकेय जी महादेव से पूछा

शंकर उवाच ॥

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि सोमकुण्डस्य वैभवम् ॥
कथयामि समासेन सेतिहासं पुरातनम् ॥२२॥
पुरात्रितनयः श्रीमान् सोमः सम्प्राप्य यौवनम् ॥
श्रुत्वा स्वर्गाविनां सौख्यं गन्धर्वेभ्यो मुहुर्मुहुः ॥२३॥
तदा स्वपितरम्प्रायात् प्रष्टुन्तं लभते कथम् ॥

सोम उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ करुणा मृत सागर ॥२४॥
कथम्वा लभ्यतेस्वर्गं सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥
ग्रहनक्षत्र ताराणा मोषधीनाम्पतिः प्रभो ॥२५॥
स्यामहं येन तयत्न कृपया वदमे पितः ॥

अत्रिरुवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि ह्युपायन्तस्य धीमते ॥२६॥

था ॥२०॥ स्कन्द बोले, हे परमेश्वर आपके मुख से मैं सोम कुण्डका माहात्म्य सुनना चाहता हूं सो कृपाकर कहिये ॥२१॥ शंकरजी बोले ॥ हे पुत्र मैं सोमकुण्ड का माहात्म्य कहता हूं सावधान मनसे सुनो ॥२२॥ पूर्व समय में अत्रिनन्दन श्री चन्द्रमा युवा अवस्था पाकर गन्धर्वों के मुखसे स्वर्गवासियों का सुख सुनकर ॥२३॥ अपने पिता अत्रि मुनि से स्वर्ग लाभ कैसे होता है यह पूछने के लिये गये ॥ सोम बोले हे सब धर्म्म के जानने वाले करुणाके समुद्र ॥२४॥ सब से श्रेष्ठ स्वर्ग कैसे लाभ होता ग्रह नक्षत्र तारागण का तथा औषधिगण का अधिपति जिस से

कथयाम्यविशेषेण सावधान मनाश्रव ॥
यदि चेच्छसि स्वर्गाणा माधिपत्यं द्विजोत्तम ॥२७॥
गच्छ मन्दार शिखरं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥
तपसा राध्यगोविन्दं शमैर्वा नियमैः सुत ॥२८॥
किंदुर्लभन्तु साधूना मिहलोके परत्र च ॥
येषामन्तःस्थितो विष्णु भगवान् मधुसूदन ॥२९॥
ततोगत्वा च मन्दारं सानन्दो भगवान् विधुः ॥
तपसा राधयामास विष्णुं श्री मधुसूदनम् ॥३०॥
जजाप परमं मन्त्र मष्टाक्षर विधानतः ॥
वायव्यां दिश माश्रित्य कुमुदानन्द वर्द्धनः ॥३१॥

इस होवें उसका उपाय कहिये ॥२५॥ अत्रि मुनि बोले, हे पुत्र उसका उपाय मैं कहता हूं, सावधान मन से सुनो ॥२६॥ हे द्विजोत्तम, यदि आप स्वर्ग का आधिपत्य चाहते हैं तो मन्दार शिखर पर जाइये, वहां पर श्री मधुसूदन भगवान हैं ॥२७॥ तपस्या संयम से तथा नियम से गोविन्द की आराधना करो ॥२८॥ जिसके अन्तःकरण में भगवान हैं उसको सत् पुरुष के लिये इस लोक में तथा परलोक में कोटि पदार्थ दुर्लभ नहीं है ॥२९॥ अत्रि मुनि के बात को सुनकर चन्द्रमा ने मन्दार पर्वत पर आनन्द पूर्वक तपस्या से श्री मधुसूदन देव जी की आराधना की ॥३०॥ तब कुमुद का आनन्द वर्द्धक श्री चन्द्रमा जी मन्दार का वायु कोण में अष्टाक्षर मन्त्र जप करने लगे ॥३१॥

अष्टाशीति सहस्राणि वर्षाणि मधुसूदनम् ।
तपस्तेपेऽति विपुलं सर्वलोक भयावहम् ॥३२॥
ततस्तुष्टः स भगवान् समागत्य विधुम्प्रति ॥
वरन्दातुं महाराज प्रत्युवाच रमापतिः ॥३३॥

श्री भगवानुवाच ॥

प्रसन्नोऽहं महाभाग तपसा तेऽत्रिनन्दन ॥
वरम्वरय भद्रन्ते दास्यामि नात्रसंशय ॥३४॥
ततः सोमः समुत्थाय नमस्कृत्य रमापतिम् ॥
याचयामास राजेन्द्र वरंस्वमनसि स्थितम् ॥३५॥

सोम उवाच

यदि प्रसन्नो भगवन् यद्यनुग्राह्यते मयि ॥
तदामे वाञ्छितं कामं देहिमे कमला पते ॥३६॥

अठासी हजार वर्ष श्री मधुसूदन भगवान् के निकट कठिन तपस्या की ॥३२॥ अनन्तर भगवान् उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर चन्द्रमाको वर देने के लिये बोले ॥३३॥ श्री भगवान बोले, हे महाभाग अत्रिनन्दन आप की तपस्या से मैं प्रसन्न हूं वर मांगिये, मैं निश्चय दूंगा इसमें संशय नहीं ॥३४॥ हे राजेन्द्र श्री भगवान का वाक्य सुनकर अत्रिनन्दन श्री चन्द्रमा ने उठकर भगवान को नमस्कार कर मानसिक वर मांगा ॥३५॥ चन्द्रमा बोले, हे भगवान यदि मेरे ऊपर आप प्रसन्न हैं तो मेरा मनोवाञ्छित फल मुझे दीजिये ॥३६॥ हे कमलापते

ग्रहनक्षत्र ताराणा मोषधीनां महस्पतिः ॥
द्विजाना मपिसर्वेषां भूयासन्ते प्रसादतः ॥३७॥

श्री भगवानुवाच

दुर्लभम्प्रार्थितम्वत्स वितरामि तथाप्यहम् ॥
एवमस्तु ततः सर्वे समागत्य दिवौकसः ॥३८॥
चक्रुः सर्वेऽभिषेकञ्च सोमं राजान माहुताः ॥
ततो विमान मारूढो स्थेन शुभ्रवाससा ॥३९॥
अभिष्टु तोऽभूदमरै स्ततः स्वर्गं गतोविधुः ॥
ततः प्रभृति तीर्थन्तत् सोम कुण्ड मितिप्रभो ॥४०॥
विख्यातं त्रिषुलोकेषु दुर्लभम्भुवि मानद ॥
यद्दृष्टिमात्रान्मनुजा गत दोषा भवन्तिहि ॥४१॥

ग्रह, नक्षत्र, तारागण का तथा औषधीगण का और द्विजातियों का अधिपति आप के प्रताप से मैं होना चाहता हूं सो दीजिये ॥३७॥ श्री भगवान बोले, हे वत्स तुमने बहुत दुर्लभ वस्तुकी प्रार्थना किया वह भी देता हूं ॥३८॥ एवमस्तु कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये । तब देवता लोगों ने आकर चन्द्रमा को स्वर्ग का राज्याभिषेक किया । अनन्तर स्वच्छ वस्त्रादिक से युक्त होकर देवता लोगों से स्तुति करते हुए चन्द्रमा श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर स्वर्ग गये । ॥३९॥ उस दिन से इस कुण्ड का नाम सोमकुण्ड पड़ा । तीनों लोकों में विख्यात मनुष्यों के लिये दुर्लभ है ॥४०॥ हे मानद, जिसको देखने से मनुष्य

यत्स्पर्शनाद्यान्ति सोम लोकं विनिन्दिताः ॥
यत्र स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः॥ ॥४२॥
सोमलोकं विनिर्भिद्य विष्णु लोकं प्रपद्यते ॥
उपवास त्रयङ्कृत्वा पूजयित्वा रमापतिम् ॥४३॥
नतेषामपुनरावृत्तिः कल्पकोटि शतैरपि ॥
त्रिरात्रेण स्थितो भूत्वा पूजयित्वा जनार्द्दनम् ॥४४॥
जपन् कुर्वन् विशेषेण मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥
कर्म्मणा मनसा वाचा यत्कृतंपातकं नृभिः ॥४५॥
तत्सर्वं क्षय माप्नोति सोम कुण्डेन मज्जनात् ॥
अन्ते सोम पदंप्राप्य चन्द्रवन्मोदते दिवि ॥४६॥

सब दोषों से छूट जाता है ॥४१॥ जिसके स्पर्श मात्र
प्राणीगण सुयश पूर्वक चन्द्रलोक प्राप्त करता है
यहाँ पर विधि पूर्वक स्नान कर पितृ तर्पण कर ॥४
सोम लोक को भेदन कर विष्णु लोक प्राप्त करता है
तीन दिन उपवास करके जो कोई रमापति श्री वि
भगवान की पूजा करता है । वह सतकोटि कल्प पर्य
संसार में नहीं आता है ॥४३॥ तीन रात्रि उपवास करके
करते हुये समय व्यतीत करने से मन्त्र की सिद्धि होती है ॥४
कर्म्म से, मन से, वाणी से, जो प्राणी महा पाप करता है वह
पाप सोमकुण्ड में मज्जन मात्र से छूट जाता है ॥४५॥
सोम लोक पाकर चन्द्रमा के ऐसा स्वर्ग में वास करता है ।

कपिलदेव उवाच

इति ते कथितं राजन् सोमकुण्डस्य वैभवम् ॥
श्रुत्वा पाप व्यथां हन्ति दृष्ट्वा सोम पुरंव्रजेत् ॥४७॥
स्पृष्ट्वा सद्गति माप्नोति सत्यं नात्यत्र संशयः ॥४८॥

मुनिरुवाच

ततो जगाम सविभू रामो धर्म्म भृतांवरः ॥
कपिलाख्ये महाकुण्डे वृक्षच्छाया समन्विते ॥१॥
ऋषिभिः सेविते रम्ये फलमूल समावृते ॥
उवास कतिचित्कालान् भक्तिभाव समन्वितः ॥२॥

कपिल मुनि बोले, हे राजा परीक्षित यह मैं सोमकुण्ड का माहात्म्य आपसे कहा जिस का श्रवण से पाप कि व्यथा नष्ट होती है ॥ देखने से चन्द्रलोक प्राप्ति होती है। स्पर्श करने से उत्तम गति मिलती है यह मैं सत्य कहता हूँ, इसमें संशय नहीं ॥४७॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये कपिल परीक्षित सम्वादे सोमकुण्डस्य माहात्म्य कथनन्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

मुनि बोले, अनन्तर धार्म्मिकों में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी कपिल कुण्ड गये ॥ वहाँ पर वृक्षकी छाया से युक्त फल मूल से वेष्टित ऋषिगण से सेवित कपिल कुण्ड के पास कितने काल तक भक्ति भाव से वास किये ॥१,२॥

शौनक उवाच

वद सूत महाभाग कपिलाख्यस्य वैभवम् ॥
कुण्डस्यास्य महाराज श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥३॥

सूत उवाच

साधु पृष्टस्त्वया साधो माहात्म्यञ्चाति पावनम् ॥
कपिलाख्यस्य कुण्डस्य सर्वप्राणि सुखावहम् ॥४॥
अत्रते कथयिष्यामि चेतिहासं पुरातनम् ॥
वानरी येनपुण्येन ह्यभूद् गन्धर्व कन्यका ॥५॥
आसीत्पुरा महाराज सौराष्ट्रनगरे महान् ॥
सुमन्तु र्नाम विप्रोऽसौ धार्म्मिकोऽति विशुद्धधीः ॥६॥
भिक्षावृत्तिपरो दान्तो देवब्राह्मण पूजकः ॥
तस्य पत्नी महाक्षुद्रा मालुरानाम कर्कशा ॥७॥

शौनक जी सूत जी से पूछे, हे महा भाग सूत जी सम्प्रति कपिल कुण्ड का माहात्म्य कहिये ॥३॥ सूत जी बोले हे शौनक आपने बहुत पवित्र कपिल कुण्ड का माहात्म्य पूछा ॥४॥ इस विषय में मैं एक पुराना इतिहास कहता हूं जिस पुण्य से वानरी गन्धर्वी हो गयी ॥५॥ हे महाराज सौराष्ट्र देश में धार्मिकों में श्रेष्ठ विशुद्ध बुद्धि वाला महान सुमन्त नामका एक ब्राह्मण था ॥६॥ भिक्षा वृत्ति से निर्वाह करने वाला देवता तथा ब्राह्मणों को का पूजन करने वाला था ॥ उसकी स्त्री महाक्षुद्र मालूरा नाम की कर्कशा महा चण्डी थी ॥७॥

बभूव भार्गव श्रेष्ठ दुःशीला बहुभक्षिका ॥
मिष्टान्नभुक्यमाशासा स्वामिनोऽरिष्ट कारिका ॥८॥
एकदातु पतिन्दृष्ट्वा निरन्नमलिनन्द्विजम् ॥
चुकोप क्रोध ताम्राक्षी महाकटुक भाषिणी ॥९॥
रेदुष्ट नमयाद्देयं भोज्यं स्वादुतरं यतः ॥
अतोऽहञ्च मरिष्यामि तवाग्रे नात्रसंशयः ॥१०॥
इत्युक्त्वा ब्राह्मणीदुष्टा विषंभुक्त्वा ममारह ॥
मृते यमपुरीं साधा गताद्दूतैः समावृता ॥११॥
यम स्तां पापिनीं दृष्ट्वा चित्रगुप्त मुवाचह ॥

यम उवाच

चित्रगुप्त महाबाहो ह्यस्याःकर्म्म फलाफलम् ॥१२॥

हे भार्गवश्रेष्ठ वह मालूरा दुःशीला व्यभिचारिणी नित्य मिष्टान्न भोजन करने वाली तथा स्वामी का अरिष्ट करने वाली थी ॥८॥ एक दिन अपने स्वामी को निरन्न तथा मलिन देखकर क्रोध से आग बबूला होकर कटु बोलने वाली ॥९॥ प्रचण्ड क्रोधसे स्वामी को कहने लगी रे दुष्ट तुमने स्वादु युक्त भोजन हमें नहीं दिया, इसलिये मैं तेरा समक्ष प्राणत्याग करती हूं । इसमें संशय नहीं ॥१०॥ ऐसा स्वामी को कहकर विष खाकर प्राणत्याग किया ॥ मरने के पश्चात्यमदूत उसे यम लोक को लेगये ॥११॥ यमराज उस पापिनी को देखकर चित्र-गुप्त के प्रति बोले, हे चित्रगुप्त इसका कर्म का फल।

कृत्वा विचारं देव दीयतां यमशासनम् ॥
इत्युक्तो यमराजेन चित्रगुप्तो महीपते ॥१३॥
उवाच पापराशिंच ब्राह्मण्या सुव्यक्तमति ॥
तदीयस्यवचनं श्रुत्वा यमो वाक्य मुवाच ह ॥१४॥
एतास्यापरतान्दृष्ट्वा मालूरान्देव किङ्कराः ॥
क्षिपध्वं कुण्डके घोरे कुम्भीपाकेऽतिदारुणे ॥१५॥
षष्टी वर्षसहस्राणि तत्र तिष्ठतु पापिनी ॥
ततस्तु वानरीयोनीं मालूरा प्राप्नुयात्पुनः ॥१६॥
द्वादशाब्दन्तु तद्योनीं भुक्त्वैवं स्थास्तु पापिनी ॥
इति सौरेर्वचः श्रुत्वा यमदूताः भयानकाः ॥१७॥
कुण्डे निक्षिप्तवां घोरे ह्यागता ह्यन्तिकं ॥
ततः षष्टिसहस्रञ्च भुक्त्वा नरकयातनाम् ॥१८॥

फल ॥१२॥ विचार कर यम शासन दीजिये । महीपति राजा परीक्षित यमराज से ऐसा कहे जाने पर चित्रगुप्त के प्रति ब्राह्मणी का फलाफल कहा ॥१३॥ उसका वाक्य सुनकर यमराज बोले, हे चित्रगुप्त इस पापिनी को कुम्भी पाक नामका कठिन नरक में फेंक दो ॥१५॥

साठ हजार वर्ष नरक की यातना भोग करें तब वानरी योनि यह मालुरा प्राप्त करे ॥१६॥ बारह वर्ष वानरी योनि को यह पापिनी भोग करे, यह यमदूत का वाक्य सुनकर भयङ्कर यम-दूत ॥१७॥ घोरकुण्ड में इसको फेंक कर हाटके समीप आया ॥ अनन्तर साठ हजार वर्ष तक नरक का भोग भोग कर ॥१८॥

बभूव वानरीदुष्टा विप्रपत्नी मुनीश्वरः ॥
वनाद्वनान्तरं गत्वा क्षुत्पिपासा च वानरी ॥१९॥
दैवात् समागता साधो मन्दारं गिरिकानने ॥
रमयामास तत्रैव बहुकालन्ततो मुने ॥२०॥
एकदा ग्रीष्मकालेच प्रातःकालेच वानरी ॥
सिंहस्य सुमहच्छब्दं श्रुत्वा भूमौ पपात ह ॥२१॥
वृक्षाधः कपिलं कुण्डं मन्दारस्योत्तरे मुने ॥
दैवात्तत्रैव पतिता भयार्त्ता चाति निर्मला ॥२२॥
तत्कुण्डस्य प्रभावेण ह्यभूद् गन्धर्व कन्यकाः ॥
मालिशा नामविख्याता पवित्रा चारुहासिनी ॥२३॥
अतिलज्जा सुलाक्षीच सदा तिष्ठति तन्वी ॥
विष्णुध्यानैक निरता रागद्वेष विवर्जिता ॥२४॥

हे ऋषीश्वर पश्चात् वह विप्रपत्नी वानरी योनि में वास किया । एक वन से दूसरा वन क्षुधा तथा पिपासा से व्याकुल होकर घूमा करती थी ॥१९॥ हे साधो दैववशात् वह मन्दार पर्वतके वन में आई ॥ वहाँ पर बहुत काल पर्य्यन्त रही ॥२०॥ ग्रीष्म ऋतु में प्रातःकाल में एक दिन वह वानरी सिंह का महान शब्द सुन कर भूमि पर गिर गई ॥२१॥ दैववशात् मन्दार से उत्तर भाग में कपिल कुण्ड में गिर गई ॥ उस कुण्ड के प्रभाव से निर्मल सुन्दर हास्ययुक्त अत्यन्त पवित्र मालिशा नाम से विख्यात एक गन्धर्वी हो गयी ॥२२,२३॥ अति लज्जा से युक्त सुन्दर साध्वी विष्णु ध्यान में निरत

ततःप्रसन्नो भगवान् वालिशायै महामुने ॥
वरन्दातुं समुद्युक्तो भगवान् मधुसूदनः ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

प्रसन्नोऽहं महाभागे तवभक्त्या सुचिस्मिते ॥
वरन्वरय भद्रन्ते दद्यामो नात्रसंशयः ॥२६॥

॥ वालिशोवाच ॥

धन्योऽहं कमलाकान्त दर्शनात्ते रमापते ॥
तव पादाम्बुज द्वन्दे रतिरस्तु वरोमम ॥२७॥

श्री विष्णुरुवाच

दास्यामिते दृढ़ाभक्ति निजपादाम्बुजेऽनघे: ॥
अन्यच्चापि प्रदास्यामि तवभक्त्या शुचिस्मिते ॥२८॥
मत्स्थानाद्दक्षिणे भागे निवासं कुरु सुव्रते ॥
त्वन्नाम्नाच सुविख्याता नगरीच भविष्यति ॥२९॥

राग द्वेष से रहित हो तपस्या करने लगी ॥२३॥ उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर श्री मधुसूदन भगवान् वर देने के लिये आये ॥२४॥ श्री भगवान बोले, हे शुद्ध आचरण वाली हे महाभागे आपके ऊपर मैं प्रसन्न हूं वर मांगो। मैं निश्चय दूंगा ॥२५॥ वालिशा बोली ॥ हे कमलाकान्त आपके दर्शन से मैं धन्य हूं आपके चरण युगल में मेरी भक्ति हो मैं यही वर मांगता हूं ॥२६॥ श्री भगवान बोले, हे पाप रहिते, मेरे चरण युगल में तेरी अचल भक्ति हो और अन्य भी वर देता हूं ॥ मेरा स्थान जो मन्दार है उससे दक्षिण दिशामें आप वास करें और आपके ही नाम से वह नगरी

अहमप्यागमिष्यामि वालिशा नगरेऽनघे ॥
निवसिष्यामि तत्रैव प्रबलेच कलौचिरम् ॥३०॥
इत्युक्त्वाच महाविष्णु र्मौनमाश्रित्य तस्थिवान् ॥
प्रबलस्य कलेश्चिह्नं हरिम्पप्रच्छ वालिशा ॥३१॥

वालिशोवाच ॥

प्रबलस्य कलेर्नाथ लक्षणम्ब्रुहि साम्प्रतम् ॥
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं कृपयाते मुखाम्बुजात् ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

कथयामि महाप्राज्ञे कलेर्लक्षण मुत्तमम् ॥
पार्वत्यैच यथाशम्भुः कथितञ्च पुरातथा ॥२॥

विख्यात होगी ॥२८॥ मैं भी प्रबल कलिकाल होने पर तेरे नगर में चिरकाल पर्यन्त वास करूँगा ॥२९॥ ऐसा कह कर भगवान् चुप मार कर खड़े रहे वालिशा भी फिर प्रबल कलि का लक्षण भगवान से पूछा ॥३०॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे मन्दारमधुसूदनमाहात्म्ये त्रयो विंशोऽध्यायः ॥२३॥

वालिशा बोली, हे नाथ प्रबल कलि काल के विषय में सम्प्रति कहिये आपके मुख रूपी कमल से सुनना चाहती हूँ ॥१॥ श्री भगवान बोले, हे प्राज्ञे; प्रबल कलि काल के विषय में कहता हूं श्रद्धा पूर्वक सुनो यहिवात

कथयामि समासेन शृणुष्वाप्रमादतः ॥

पार्वत्युवाच ॥

श्रुतञ्च त्वन्मुखान्नाथ वृत्तान्तं परमाद्भुतम् ॥३॥
इदानीं त्रिदशे शम्भो कलेर्लक्षण मुत्तमम् ॥
यद्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुः कलौ कल्मष बन्धनात् ॥४॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्वानु कम्पया ॥

शंकर उवाच ॥

शृणु सुश्रोणि यत्नेन प्रवलस्य कलेरहम् ॥५॥
लक्षणं कथयिष्यामि सावधान मनाभव ॥
यदातु वैदिकी दीक्षा दीक्षापौराणिकी तथा ॥६॥

श्री पार्वती देवी ने शंकर भगवान से पूछी थी ॥२॥ पार्वती बोलीं, हे नाथ आपके मुख से परमाश्चर्यजनक वृत्तान्त मैं ने सुना ॥३॥ सम्प्रति कलियुग का लक्षण कहिये जिस के श्रवण से प्राणी गण कलियुग के कठिन पापरूपी बन्धन से छुटेगा ॥४॥ यह सब सविस्तर मैं आप के मुख से सुनना चाहती हूं ॥ शंकर जी बोले, हे सुन्दर श्रोणी वाली पार्वती मैं प्रवल कलि का लक्षण कहता हूं सावधान मन से सुनो ॥५॥ जब वैदिकी दीक्षा तथा पौराणिकी दीक्षा संसार से उठ जायगी तब प्रवल कलि जानना ॥६॥

नश्यास्यति वरारोहे तदैव प्रवलः कलिः ॥
यदातु पुण्य पापानां परीक्षा वेदसम्भवा ॥७॥
नश्यास्यति शिवेशान्ते तदैव प्रवलः कलिः ॥
क्वचिच्छिन्नाः क्वचिद्भिन्ना यदासुर तरङ्गिणी ॥८॥
भविष्यन्ति शिवे शान्ते तदैव प्रवलःकलिः ॥
यदा स्त्रीयोऽति दुर्दान्ताः कर्कशा कलहेरताः ॥९॥
भर्त्तवज्ञां करिष्यन्ति तदैव प्रवलः कलिः ॥
यदातु म्लेच्छजातीया राजानो धनलोलुपाः ॥१०॥
भविष्यन्ति महाप्राज्ञे तदैव प्रवलः कलिः ॥
यदातु मानवा भूमौ स्त्रीजिताः कामकिङ्कराः ॥११॥

हे शिवे, हे शान्तस्वरूपे जब वेद सम्बन्धी पुण्य पाप का विचार संसार से उठ जायगा तब प्रवल कलि जानना ॥७॥ हे सुर तरङ्गिनी जब कहीं पर कुछ २ ऐसी मनमानी व्यवहार होने लगेगी तब प्रवल कलि जानना हे शिवे हे शान्ते जब स्त्रीगण अत्यन्त दुर्दान्त होगी कर्कशा सदा कलह में रत होगी और स्वामी का आज्ञा उलंघन करेंगी तब प्रवल कलि जानना ॥९॥ जब म्लेच्छ जाति धन में अत्यन्त लोलुप राजा होंगे तब महा प्रज्ञावली प्रवल कलि जानना ॥१०॥ जब मनुष्यादिक संसार में काम के वशवर्ती होकर स्त्रीगण के वशवर्ती होकर गुरु तथा मित्रादिक से द्रोह करने वाला होगा तब प्रवल कलि जानना ॥११॥ जब पृथ्वी थोड़ा उपज देने लगेगी

द्रुह्यन्ति गुरुमित्रादीन् तदैव प्रबलः कलिः ॥
यदाक्षीर्णा स्वल्पफला तोयदा स्तोयवर्षिणः ॥१२॥
असम्यक् फलिनोवृक्षाः स्तदैव प्रबलः कलिः ॥
भ्रातरः स्वजना मत्यान् यदाधन फलेच्छया ॥१३॥
मिथः सम्प्रहरिष्यन्ति तदैव प्रबलः कलिः ॥
प्रकटे मद्य मांसादौ निन्दारम्भ विवर्जितः ॥१४॥
गूढ़ पानं प्रकुर्वन्ति तदैव प्रबलः कलिः ।
इति ते कथितं देवि कलेः प्राबल्य लक्षणम् ॥१५॥
इदानीं कथयिष्यामि कलि कल्मष नाशनम् ॥
उपायञ्च वरारोहे शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ॥१६॥
ये कुर्वन्ति कुलाचारं सत्यपूता जितेन्द्रियाः ॥
व्यक्ताचार सदाशीला नहितान् बाधतेकलिः ॥१७॥

मेघ अल्प जल वृष्टिकों देंगे वृक्षगण अल्प फलको देने वाले होंगे तब प्रबल कलि जानना ॥१२॥ जब भाई २ स्वजन वर्ग तथा मनुष्यगण धन के लोभ से परस्पर सम्प्रहार अर्थात् परस्पर युद्ध करेंगे तब प्रबल कलि जानना ॥१३॥ जब निन्दा से रहित होकर प्रकट रूप से मद्य मांसादिक प्राणिगण भक्षण करने लगेंगे तब प्रबल कलि जानना। हे देवि यह मैं प्रबल कलिका लक्षण कहा ॥१४,१५॥ सम्प्रति कलियुग में पाप से कैसे प्राणीगण मुक्त होंगे उसका उपाय कहता हूं हे वरारोहे यत्न पूर्वक सुनिये ॥१६॥ जो कोई सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय होकर अपना कुलाचार से विशुद्धाचरण करेंगे उन्हें कलि बाधा नहीं दे

गुरुशुश्रूषणे युक्ता भक्ता मातृपदाम्बुजे ॥
अनुरक्ताः स्वदारेषु नहितान् बाधते कलिः ॥१८॥
सत्यव्रताः सत्यनिष्ठाः सत्यधर्म परायणाः ॥
कुलसाधन युक्ता ये नहितान बाधते कलिः ॥१९॥
✓बीजसेकादि संस्काराः पितृश्राद्धादिकाः क्रियाः ॥
ये कुर्वन्ति सदाचारै र्नहितान् बाधते कलिः ॥२०॥
कौटिल्या नृतहीनानां स्वच्छानां कुलधर्मिणाम् ॥
परोपदेश व्रतिनां साधूनां कलिकिङ्करः ॥२१॥
एवं शम्भुमुखाद्देवि कलेः प्राबल्य लक्षणम् ॥
निशम्यापि गिरिजा कलेः श्रुत्वाति हर्षिता ॥२२॥

सकेंगे ॥१७॥ गुरु शुश्रूषा में रत माता तथा पिता के चरण कमल में भक्ति करेंगे अपना स्त्री ही में अनुरक्त रहेंगे उन्हें कलि बाधा न देंगे ॥१८॥ सत्यरूपी व्रत तथा सत्य ही में निष्ठा सत्य धर्म में परायण तथा अपने कुलका मर्यादा पालन में जो रत रहेंगे उन्हें कलि बाधा नहीं करेंगे ॥१९॥ पितृश्राद्धादिक क्रिया जो कोई सदाचार पूर्वक करेंगे उन्हे कलिबाधा नहीं देगा ॥२०॥ कुटिलता तथा मिथ्या भाषण से रहित होकर स्वच्छ हृदय से रहने वाले तथा दूसरों के उपदेश में निरत कुल धर्म पालन करने वाले को कलि किंकर है ॥२१॥ हे कालिके इस प्रकार कालिका लक्षण सुन कर पार्वती बहुत आनन्दित हुई ॥२२॥ हे साध्वि तुमने जो कलि का

इति ते कथितं साध्वि यत्पृष्टोऽहं त्वयानघे ॥
प्रबलस्य कलेश्चिह्नं कलि कल्मष नाशनम् ॥२३॥

सूत उवाच

इत्येवं कथयित्वाथ वालिशायै जगद्गुरुः ॥
स्वयमन्तर्दधे साध्वी भगवान् मधुसूदनः ॥२४॥
वालिशापि ततोऽधीमन मन्दाराद्दक्षिणे ततः ॥
स्वनाम्ना निर्मितानाम्ना वालिशानगरी शुभा ॥२५॥
तदारभ्यच तत्रैव विष्णुध्यानैक तत्परा ॥
नृत्यगीतादिकैं बाला वालिशा तोषयद्धरिम् ॥२६॥
एवं बहुतरे काले व्यतीतेच ततोमुने ॥
साविरासी त्तनोद्दिव्यं स्यन्दनं विष्णुप्रेरितम् ॥२७॥

लक्षण पूछा वह तथा कलि जन्य पापों छुटने के उपाय भी मैं तुमसे कहे ॥२३॥ सूत जी बोले हे शौनक जगत के गुरु श्री मधुसूदनजी वालिशा को कह कर स्वयं अन्तर ध्यान हो गये ॥२४॥ हे धीमन अनन्तर वालिशा भी मन्दार से दक्षिण दिशा मे कोश भर पर अपने नाम पर वालिशा नामकी नगरी बसाई ॥२५॥ उस दिन से उसी नगरी मे श्री मधुसूदन भगवान का ध्यान मे तत्पर होकर नृत्य और गीतादिकों से अर्चना करने लगी ॥२६॥ इस प्रकार बहुत दिन बित गये तब श्री विष्णु भगवान से भेजा हुआ पार्षदों से युक्त कोटि चन्द्रमा तथा कोटि सूर्य के समान प्रकाश मान दिव्य रथ आया ॥२७॥ अनन्तर भगवान का पार्षदों

पार्षदैः सहसंयुक्तं कोटिचन्द्रार्क सन्निभम् ॥
समाहूय ततोबालां वालिशां विष्णुकिंकराः ॥२८॥
एहि बाले समारुह्य रथस्योपरि वालिशे ॥
प्रेषिता विष्णुना भद्रे त्वामानेतुं वयंप्यतः ॥२९॥
गच्छ गोलोक मधुना विष्णोः कारुण्य भाजनम् ।
भविष्यसि ततो भद्रे नूनंनास्त्यत्र संशयः ॥३०॥

सूत उवाच

श्रुत्वा दूतमुखाद्वाक्यं दृष्ट्वाच दिव्य स्यन्दनम् ॥
समारुह्य रथं दिव्यं गोलोकञ्च जगाम सा ॥३१॥
अहो महत्वं कुण्डस्य कपिलाख्यस्य वै मुने ॥
यस्य प्रसादान्मालुरा गान्धर्वीत्व मवाप्तिता ॥३२॥

वाली अवस्था में प्राप्त वालिशा को बुलाया ।२८॥ हे वालिशे आओ, यह विष्णु भगवान के भेजे हुए रथ पर चढ़ो, आप ही को ले जाने के लिये श्री विष्णु भगवान के भेजे हुए हम लोग आये हैं ॥२९॥ सम्प्रति गोलोक चलो । हे वालिशे वहाँ पर निश्चय श्री विष्णुभगवान की करुणा पात्र बनोगी इसमें संशय नहीं ॥३०॥ सूत जी बोले, हे शौनक इस प्रकार दूत के मुख से वाक्य सुन कर दिव्य रथ को देख कर रथ पर चढ़कर गोलोक गई ॥३१॥ अहा ! ऐसा कपिल कुण्डके माहात्य का कौन वर्णन कर सकता है। जिसमें अज्ञानवशात् पड़ने से मालुरा नाम की वानरी गान्धर्वी हो गयी ॥३२॥ उसमें भी

विष्णोःप्रियतमा जाता गोलोकेच महामुने ॥
शक्यते के नवक्तुम्वै माहात्म्यं कपिलाविधे ॥३३॥
कपिलदेवउवाच
इति ते कथितं राजन् माहात्म्यं कपिलस्यच ॥
कुण्डस्यच महाराज सर्वपाप प्रनाशनम् ॥३४॥
य इदं श्रृणतेऽध्यायं श्रावयेद्वापि भक्तितः ॥
सर्वान् कामान प्राप्नोति चान्ते विष्णु पुरंव्रजेत् ॥३५॥

ऋषिरुवाच
ततोगत्वा महाराज रामो दशरथात्मजः ॥
विनायक कथालापे स्ताम्रपर्णी महामते ॥ १॥

गोलोक जाकर श्री विष्णु भगवान की प्रियतमा हो गया। ऐसा जो कपिल कुण्ड का माहात्म्य उसे कौन वर्णन कर सकता है ॥३३॥ कपिलदेव जी बोले, हे राजा परीक्षित यह मैंने कपिल कुण्ड का माहात्म्य कहा, जिसके श्रवण मात्रसे समस्त पाप नष्ट हो जाता है ॥३४॥ जो इस अध्यायका माहात्म्य सुनेगा अथवा भक्ति पूर्वक सुनावेगा, वह इस लोक में समस्त कामना को पाकर अन्त में विष्णु लोक को जायगा ॥३५॥
इति श्रीस्कन्दादि महापुराणे कपिल परीक्षित सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये कपिलकुण्डस्य माहात्म्य वर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

कपिल देवजी बोले, हे महाराज परीक्षित अनन्तर विनायक के विषय में कथा लाप करते हुये दशरथात्मज श्री राम

तत्र स्नात्वा विधानेन नित्यकृत्यं समाप्यच ॥
ततोऽन्येष्वपि कुण्डेषु जगाम पुरुषोत्तमः ॥ २॥
गत्वा गत्वाच तत्कृत्यं कृत्वा विधि विधानतः ॥
पुनर्मन्दार कुण्डञ्च सम्प्राप्य राघवोमहान् ॥३॥
स्नात्वा पूर्वोक्त मार्गेण प्रार्थयामास तंगिरिम् ॥
मन्दाराद्रे नमस्तुभ्यं बहुपुण्य विवर्धनम् ॥ ४ ॥
ब्रह्मविष्णु महेशाद्यैः सर्वदा सेवितः शुचिः ॥
तवमस्तक मारूढुमिच्छा माक्रमेहं नगोत्तमम् ॥५ ॥
क्षमस्व तदघं मेद्य दयया पापचेतसः ॥
त्वन्मूर्ध्नि कृतावासं माधवं मधुसूदनम् ॥ ६ ॥
दर्शयस्व नगाधीश मन्दार पुरुषोत्तमम् ॥
एवं सम्प्रार्थ्य रामोऽसौ मन्दार प्रवरं तोत्तमम् ॥ ७ ॥

चन्द्रजी ताम्रपर्णी गये ॥१॥ वहाँ पर विधि पूर्वक स्नानादि कर नित्य कृत्य समाप्त कर तब अन्यान्य कुण्ड में गये ॥ २ ॥ उन कुण्डों में जा २ कर विधिपूर्वक नित्य कृत्यादि कर फिर मन्दार कुण्ड जाकर महान श्रीरामचन्द्रजी ॥३॥ पूर्व निर्दिष्ट मार्ग से स्नानादिक कर मन्दार पर्वत की प्रार्थना की। हे बहुत पुण्यको बढ़ाने वाले मन्दार ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि से सर्वदा सेवित तथा विशुद्ध ऐसे आपके शिखर पर मैं पैदल चढ़नेके लिये चेष्टा करता हूं। हे नगोत्तम वह मेरा पाप आप क्षमा करें, मुझे शिखर पर वास करने वाले माधव श्री मधुसूदनका दर्शन कराईये ॥६॥ इस प्रकार श्री

आरुरोह ततो धीमान् भक्त्या परमया मुने ॥
चक्रावर्तं महाकुण्डं गत्वा रामो महामतिः ॥ ८॥
स्नात्वा विधिविधानेन भक्ति भाव समन्वितः ॥
शेषशय्या समासीनं योगमाया समावृतम् ॥९॥
शंख चक्र गदा पद्म धारिणं दैत्यसूदनम् ॥
सम्पूज्यच ततो रामो वियद्गंगातटे शुभे ॥१०॥
गत्वा तत्र जले स्नात्वा गुहायाम्पुरुषोत्तमम् ॥
नृसिंहं पूजयामास वामनञ्च ततःपरम् ॥११॥
पूजयित्वा ततोरामः शंख कुण्डञ्चगामह ॥
स्थित्वा तत्र कियत्कालं शंखंसम्प्रार्थ्य भक्तितः ॥१२॥
स्नात्वा कुण्डेऽति धर्म्मात्मा रामोधर्म्म भृताम्वरः ॥
नित्य कृत्यादिकं कृत्वा तोषयित्वाच ब्राह्मणान् ॥१३॥

रामचन्द्र जी मन्दार पर्वत की प्रार्थना कर ॥७॥ हे मुने, तब परम भक्ति से शिखर पर आरोहण किये ॥ अनन्तर महामतिमान् श्री रामचन्द्र जी चक्रावर्त्त नाम के महाकुण्डके निकट जाकर ॥८॥भक्ति भाव से विधि पूर्वक स्नानादि कर योगमाया से सेवित शेषशायी ॥९॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, को धारण किये हुये दैत्य सूदन का पूजन कर तब आकाश गङ्गा के सुन्दर तट पर गये ॥१०॥ वहां पर आकर आकाश गंगा में स्नानादिक कर पर्वत के खोह में पुरुषोत्तम श्री नृसिंह भगवान का पूजन कर अनन्तर वामन भगवान का पूजन कर ॥११॥

ययौ सौभाग्य कुण्डञ्च रामचन्द्रो महामतिः ॥
ब्रह्मणोऽष्टदलं पद्म प्रार्थयित्वा ततःपरम् ॥१४॥
स्नात्वा सौभाग्यडेकुण्ड पद्मपत्र विभूषिते ॥
पूजयित्वा महापद्मं ब्राह्मणाध्युषितञ्च यत् ॥१५॥
तोषयित्वा ततो विप्रान् भक्ष्य भोज्यादिकै नृप ॥
ततो वाराणसीं गत्वा शर्म्मो वाराणसी समाम् ॥१६॥
पूजयित्वा च विश्वेशं सगणं गिरिजापतिम् ॥
रामोधर्म्म भृतांश्रेष्ठो वाराहञ्च ततो ययौ ॥१७॥
तत्र स्नात्वा विधानेन वराहं कृत्तिनं हरिम् ॥
पूजयित्वा महाराज भक्ति भाव समन्वित ॥१८॥

तब शंख कुण्ड गये, वहां पर शंख की प्रार्थना कर ॥१२॥ अनन्तर शंख कुण्ड में स्नानादिक कर तब धर्मात्मा श्री रामचन्द्र जी नित्य कृत्यादिक कर ब्राह्मणादिक को तृप्ति कर ॥१३॥ अनन्तर सौभाग्य कुण्ड गये । अनन्तर ब्रह्मा जी के अष्टदल पद्म की प्रार्थना कर ॥१४॥ पद्मपत्र से शोभित ब्रह्माजी के सौभाग्य कुण्ड में स्नान कर ब्रह्मा जी के कमल का पूजन कर ब्राह्मणादिक को भक्ष्य ,भोज्यादिक से प्रशन्न कर ॥१५॥ अनन्तर शंकर जी की काशी दूसरी वाराणसी जाकर वहां पर सगण श्री शंकरजी की पूजा कर तब धार्म्मिकों में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी वाराह कुण्ड गये ॥१७॥ वहांपर भक्ति भाव से स्नानादिक कर श्री वाराह

ततः शृङ्गं समारुह्य त्रिपुरारीश्वरं शिवं ॥
प्रार्थयित्वा महाराज राघवो दीनवत्सलः ॥१९॥
ततो जगाम धर्मात्मा यत्रासीन्मधुसूदनः ॥
ब्रह्मणा राधितः श्रीमान् चतुर्वर्ग फलप्रदः ॥२०॥
तत्र नाना प्रकारैस्तु भक्ष्य भोज्यादिकैर्नृप ॥
पूजयामास धर्मात्मा रामो धर्म भृतांवरः ॥२१॥
तस्थिवान् कतिचित्कालान् परमानन्द माधवम् ॥
मधुसूदन देवेशं मन्दारेशं जगद् गुरुम् ॥२२॥
स्तूयमानं वशिष्ठाद्यैः साङ्गोप निषदैं नृप ॥
प्रणम्य पुरतस्तस्य तोषयित्वा च ब्राह्मणान् ॥२३॥

भगवान का पूजन कर ॥१८॥ तब हे महाराज परीक्षित दीन वत्सल राघव श्री रामचन्द्र जी शिखर पर अरोहण कर त्रिपुरारीश्वर श्री शंकर भगवान की प्रार्थना कर ॥१९॥ अनन्तर धर्मात्मा श्री रामचन्द्र जी वहां पर गये। जहां पर ब्रह्मा जी से प्रतिष्ठित चारों पदार्थ को देने वाले श्री मधुसूदन भगवान विराजमान थे ॥२०॥ हे नृप वहां पर धार्मिकों में श्रेष्ठ धर्मात्मा श्री रामचन्द्र जी अनेकानेक पूजोपकरण तथा भक्ष्य भोज्यादिक से श्रीमधुसूदन भगवान का पूजन कर ॥२१॥ बहुत काल पर्यन्त वहां पर रह कर फिर परमानन्द को बढ़ाने वाले लक्ष्मीपति मन्दारेश जगत् के गुरु श्री मधुसूदन भगवान को ॥२२॥ साङ्गोपाङ्ग उपनिषदादि द्वारा वशिष्ठादिक से स्तूयमान श्री भगवान के आगे प्रणाम कर

पुनः सौभाग्य मासाद्य धर्मात्मा राघवो नृप ॥
निषसादत्र तत्रैव बहुकालान् ततो मुने ॥
सुप्रतिष्ठाप्य नं राजन् परम्ब्रह्म सनातनम् ॥
मधुसूदन देवेशं चतुर्वर्ग फल प्रदम् ॥२५॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वाच वेदशास्त्र विशारदान्
प्रार्थयित्वाथ तान्विप्रान् गङ्गासागर मन्वगात् ॥२६॥
अहो सौभाग्य कुण्डस्य महिमानन्न विद्महे ॥
यत्प्राप्य रघुशार्दूलो रामचन्द्रो महामतिः ॥२७॥
उवास कतिचित्समान् वशिष्ठाद्यैः समावृतः ॥
इति ते कथितं राजन् यत्पृष्टोहन्त्वया नृप ॥२८॥

ब्राह्मणादिक को सन्तुष्ट कर ॥२३॥ हे नृप फिर सौभाग्यकुण्ड के समीप आकर धर्मात्मा राघव श्री रामचन्द्र जी बहुत काल पर्यन्त रहे ॥२४॥ वहां पर परम ब्रह्म सनातन श्री मधुसूदन देव की प्रतिष्ठा कर अनन्तर हे राजा परीक्षित ॥२५॥ वेद शास्त्र में विशारद ब्राह्मणादिकों को भोजन करा फिर उन लोगों की प्रार्थना कर गङ्गासागर गये ॥२६॥ अहा! सौभाग्य कुण्ड की कैसी महिमा है, सो नहीं जानता हूं। जिस सौभाग्य कुण्ड पर वशिष्ठादिक से सेवित रामचन्द्र जी ने भी चिरकाल पर्यन्त वास किया था ॥२७॥ कपिलदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं हे राजा परीक्षित आपने मन्दारमें श्री रामचन्द्रजी का जो चरित्र पूछा, वह मैंने आपसे कहा ॥२८॥

रामचन्द्रस्य चरितं मन्दारे नृपसत्तम ॥
य इदं श्रुयतेऽध्यायं श्रावयेद्वापि भक्तितः ॥२९॥
सौभाग्यं वर्द्धते लोके रामचन्द्र प्रसादतः ।
रामे तस्य दृढ़ा भक्ति र्जायते नात्र संशयः ॥३०॥

शौनक उवाच

श्रुतश्च त्वन्मुखात्साधो विश्वनाथो यथा गतः ॥
रम्यां वाराणसीं त्यक्त्वा मन्दारे नृप सत्तमः ॥१॥
पुनःकदागतः काशीं त्यक्त्वा मन्दार भूधरम् ॥
तदाकिं कृतवन्तश्च मन्दारादि निवासिनः ॥२॥

जो इस अध्यायको सुनेगा या सुनावेगा उसको इस लोकमें श्री रामचन्द्रजी की कृपा से सौभाग्य बढ़ेगा और श्री रामचन्द्र जी में दृढ़ भक्ति होगी। इसमें संशय नहीं ॥२९, ३०॥

इति श्रीस्कन्दादि महापुराणे कपिल परीक्षित सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये श्रीरामचन्द्रस्य मन्दारागमनन्तच्चरित्र वर्णनन्तामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

शौनक बोले, हे सूत जी आपके मुख से जिस प्रकार रमणीय काशी को छोड़ कर शंकर जी मन्दार आये, वह मैंने सुना ॥१॥ फिर मन्दार पर्वत को छोड़ कर श्री शंकर जी कब काशी गये और उनके जानेके समय मन्दार पर्वत पर निवास करने वालों

तत्सर्वं विस्तरा द्ब्रह्मन् कथयस्वानु कृपया ॥
श्रोतुमिच्छामि विप्रर्षे पर कौतूहल मम ॥१॥

सूत उवाच

साधुपृष्टं त्वया साधो वृत्तान्तञ्चाति पावनम् ॥
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तु र्जन्म संसार बन्धनात् ॥४॥
गते बहुतरे काले सेव्यमाने महेश्वरे ॥
मन्दारे मुनिशार्दूल भुक्ति मुक्ति फलप्रदे ॥५॥
पुनःसस्मार वैकाशीं विश्वनाथो महा प्रभुः ॥
काशी विरहजं दुःखं तेन दुःखातुरोऽभवत् ॥६॥
समाहूय गणान् सर्वान् विश्वनाथो महाप्रभुः ॥
दुःखं निवेदयामास काशीस्थिरहजं मुने ॥७॥

ने क्या किया ॥२॥ सो सब सुनने को उत्कण्ठा है। कृपा कर सविस्तर कहिये ॥ ३ ॥ सूत जी बोले, हे शौनक आपने बहुत अच्छा तथा पवित्र वृत्तान्त पूछा। जिसका श्रवण मात्र से सांसारिक बन्धन से छुट जाता है ॥४॥ भोग तथा मोक्ष को देने वाले मन्दार में जब शंकर भगवान का बहुत दिन व्यतीत हो गये तो ॥५॥ हे मुनि शार्दूल फिर एक समय में काशी का स्मरण हो आया। तब विश्वनाथ प्रभु काशी विरह से पूर्ण दुःखी हुये ॥६॥ अनन्तर महा प्रभु श्री विश्वनाथ जी ने अपने समस्त गणों को बुला कर काशी विरह जन्य जो दुःख सो निवेदन किया ॥७॥

शंकर उवाच

शृणुध्वं मामका: सर्वे कश्चीदां कार्य्य साधने ॥
समर्थोऽस्ति सर्वोकाशीं गत्वा साधय सत्वरम् ॥८॥
दिवोदासस्य नृपते र्यथा विघ्नं समेष्यति ॥
यतध्वम्वौ तथायूय मेकैकः कार्य्य साधने ॥९॥
समर्थोऽस्ति तथाप्येवं प्रब्रवीमि मनोगतम् ॥
कृत्वा विघ्नं च वै राज्ञो दिवोदासस्य मामका: ॥१०॥
काश्यानिःसार्य्य नृपति सत्वरं चागमिष्यथ ॥
इत्युक्त्वा प्रेषयामास गणान् बहु विधान्नृप ॥११॥
ते शिवाज्ञां शिरोधार्य्य कौतूहल समन्विताः ।
प्रणम्य पुरतः शम्भु मोमित्युक्त्वा ततोमुने ॥१२॥

शंकर जी बोले, हे मेरे गण आपको छोड़ लोक में कौन यह कार्य्य साधन कर सकता है ? काशी जाकरशीघ्र कार्य्य साधन करें ॥८॥ यद्यपि इस काय में सभी चतुर हैं तोभी दिवोदास राजा को जिस प्रकार विघ्न उपस्थित हो ऐसा यत्न आप लोग मिल कर करें ॥९॥ हे मेरे गण यद्यपि एकाएक इस कार्य के लिये योग्य हैं तो भी मैं अपना मनोगत भाव प्रगट करते हैं कि दिवोदास को ॥१०॥ काशीसे निकाल कर शीघ्र मेरे समीप आप लोक आवें हे राजा धूर्जटि इस प्रकार अनेक गणों को कहकर भेजा ॥११॥ वे गण शंकर जी को प्रणाम कर उनका आज्ञा सिर झुका कर स्वीकार कर ओम् ऐसा कह कर ॥१२॥ श्री विश्वनाथजी की काशी आये। वहाँ पर वे सब

समाजग्मु र्महाराज काशीमर्द्धीश्वरी पुरिम् ।
तत्र गत्वाच ते सर्व पूजयन्तं नृपोत्तमम् ॥१३॥
देवादींश्च दिवोदासं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
दृष्ट्वा मुमुदिरे राजन् गणा ये शम्भु प्रेषिता ॥१४॥
विरेमु स्तेव तत्रैव यत्रास्ते नृप सत्तमः ।
दिवोदासश्च राजर्षि भक्ति भाव समन्वितः ॥१५॥
स्वस्व नाम्ना च तल्लिङ्गं स्थापयामासु राजसा ॥
पुनश्चिन्तातुरः शम्भु र्नागता मामका गणाः ॥१६॥
प्रेषितास्तेऽति यत्नेन कारणन्तन्न विद्महे ॥
कथं प्राप्स्याम्यहं काशीमित्थमाने नृपोत्तमे ॥१७॥
दिवोदासेहि धर्मिष्ठे शौर्य वीर्य समन्विते ॥
इत्येवं बहुधा शम्भु श्चिन्तयामास वै पुनः ॥१८॥

दिवोदास राजाको पूजा करते हुये देखा ॥१३॥ वहाँ पर विधि पूर्वक दिवोदास का पूजन करता हुआ देख शंकर भगवान का भेजे हुये गणसमूह बहुत प्रसन्न हुये ॥१४॥ और वे सब अपने २ नाम से एक एक शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा कर वहां पर रहने लगे फिर उन लोगों का नहीं आना देख श्री शंकर भगवान चिन्ता से व्याकुल हुये ॥१६॥ मैं बहुत यत्न से अपने गणों को भेजा था, पर अब तक नहीं लौटे हैं, नहीं जानता हूं कि वे लोग क्यों मेरे समीप अब तक नहीं आये हैं ॥१७॥ शौर्य्य वीर्य्य से युक्त अत्यन्त धर्मात्मा दिवोदास के रहते हुये मैं कैसे काशी प्राप्त

गणेशञ्च समाहूय काशी विरह कातरः ॥
कथयामास विश्वेशो वृत्तान्तञ्चाति दुःखितः ॥१९॥

विश्वनाथ उवाच

शृणुमे परमं दुःखं विद्यतेच गजानन ॥
मते त्वन्न यामिष्यन्ति दुःखानि विविधानिमे ॥२०॥
पुरा प्रेषित वन्तश्च बहवोहि गणामया ॥
नकेनापि कृतं कार्य्यं नागताश्चापि ते गणाः ॥२१॥
किंकरोमि क्वगच्छामि कथम्प्राप्स्यामहे पुरीम् ॥
काशीं पुण्यैक राशिञ्च ह्युपायो नहि विद्यते ॥२२॥

सूत उवाच

इत्येवं बहुधा लापं श्रुत्वा शम्भु मुखात्ततः ॥
गणेशोऽति प्रसन्नात्मा शङ्करम्प्रत्युवाचह ॥२३॥

करूंगा। इस प्रकार बारम्बार श्री शंकर भगवान चिन्ता करने लगे ॥१८॥ काशी के विरह से व्याकुल श्री शंकरजी गणेशजी को बुलाकर अत्यन्त दुखी हो गणेशजी से समस्त वृत्तान्त कहे ॥१९॥ विश्वनाथ बोले, हे गजानन बिना आपके मेरा दुःख नहीं दूर हो सकता है ॥२०॥ पहले मैंने बहुत से गणों को भेजा. पर अबतक भी वे लोग न कोई कार्य किये न मेरे समीप लौटकर आये ॥२१॥ कहाँ जाऊँ, क्या करूं, कैसे पुण्यकी राशि जो काशी उसको प्राप्त करूं, कोई उपाय नहीं ज्ञात होता है ॥२२॥ सूतजी बोले हे शौनक इस प्रकार महादेव के मुख से बहुधा विलाप सुन कर गणेशजी प्रसन्न होकर शङ्करजी के प्रति बोले ॥२३॥

श्रीगणेश उवाच

त्यजचिन्तां महाराज चिन्तादुःख प्रवर्द्धिनी ॥
प्रतीकारं करिष्यामि यथा शान्ति र्भविष्यति ॥२४॥
गत्वा काशीं दिवोदासं मोहयित्वाच मायया ॥
साधयित्वाच त्वत्कार्य्यं पुनराशु तवान्तिकम् ॥२५॥
आगामिष्याम्यहं शम्भो नचिन्ताङ्कर्तुं महेसि ॥
देह्यनुज्ञां पितर्मेऽद्य शीघ्रमेव व्रजाम्यहम् ॥२६॥
काशीं वैश्वेश्वरीं रम्यां स्वर्ग मोक्षप्रदायिनीं ॥

श्रीमहादेव उवाच

वत्स वत्स चिरञ्जीव कुरुकार्य्यं ममानघ ॥२७॥
पन्थानस्ते शिवाःसन्तु गच्छन्तन्त्वां शिवोऽवतु ॥
साधयित्वाच मत्कार्य्यं पुनरेहि ममान्तिकम् ॥२८॥

गणेशजी बोले, हे शम्भो आप चिन्ता न करें। चिन्ता दुःख को बढ़ाने वाली होती है ॥ विघ्न का प्रतिकार मैं करूंगा, जिससे आप को शान्ति मिलेगी ॥२४॥ काशी जाकर दिवोदास को मोहन प्रयोग कर आप का कार्य सम्पन्न कर फिर आप के पास शीघ्र आऊंगा ॥२५॥ हे पिताजी हमें आज्ञा दिजिये कि स्वर्ग मोक्ष को देने वाली काशी में शीघ्र जाऊं ॥२६॥ श्री महादेव जी बोले, हे पाप रहित, हे वत्स आप चिरजीवी हों मेरा कार्य्य सम्पादन कर फिर मेरे समीप आईये और जाते हुये आप को शंकर रक्षा करें ॥२७,२८॥

कपिल उवाच

शम्भोराज्ञां शिरोधार्य्यं काशीङ्गत्वा गजाननः ॥
धारयित्वा द्विजाकारं रुचिरं सुमनोहरम् ॥२९॥
सोऽधारीत् छत्रदण्डञ्च कमण्डलु समन्वितम् ॥
जगाम यत्र वैराजा दिवोदासःप्रतापवान् ॥३०॥
दृष्ट्वाति रुचिरम्वेषं भासयन्तं चतुर्दिशम् ॥
मोहयन्तं जनंसर्वं दिवोदासोऽति धार्म्मिकः ॥३१॥
प्रणनाम गणाधीशं द्विजवेषधरं विभुम् ॥
पाद्यमर्घ्यादिकं दत्वा कुशलञ्चापि पृष्टवान् ॥३२॥

दिवोदास उवाच

धन्योऽहङ्कृत कृत्योऽहं दर्शनात्ते द्विजोत्तम ॥
पूतां मद्भवनमद्य निवसस्व सुखेनच ॥३३॥

कपिल जी बोले, हे राजा पराक्रमी शंकर भगवान की आज्ञा मस्तक पर धारण कर गणेशजी काशी जाकर सुन्दर ब्रह्मचारी वेष में दण्डी तथा छाता दण्ड—कमण्डल लेकर जहाँ पर दिवोदास प्रतापी राजा था वहाँ पर गये ॥२९॥ ३०॥ चारों दिशाओं को प्रकाश करते हुये तथा सम्पूर्ण प्राणी को मोहित करते हुये गणेशजी को देख कर धार्मिक राजा दिवोदास ॥३१॥ द्विज वेषधारी गणेश जी को प्रणाम किया। पादप्रक्षालन तथा अर्घ्यादिक देकर कुशल पूछे ॥३२॥ दिवोदास बोला, हे द्विजोत्तम आपका आगमन से मैं कृतार्थ हूँ और मेरा गृह पवित्र कीजिये जो सुख पूर्वक वास

नैतावद्दिन पर्य्यन्तं दृष्टं त्वत्सदृशं द्विजम् ॥
मन्येत्वां विश्वगोप्तारं शंकरं विष्णु मेववा ॥३४॥
यथा बलिगृहे जातो हरिर्वामन रूपधृक् ॥
तथैवानुमिनोमि त्वां तथ्यमेतद् ब्रवीमिते ॥३५॥
कस्मात् समागतः साधो किमर्थं द्विजसत्तम ॥
ब्रूहि तत्साधयिष्यामि कार्य्यन्ते ब्राह्मणोत्तम ॥३६॥

ब्राह्मण उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यदर्थमिह मागतः ॥
कथयामि महाबाहो सावधान मनाभव ॥३७॥
अहं मन्दारशिखरं गतश्च दृष्टवान् शिवम् ॥
तन्मुखात्ते यशो राजन् बहुधा श्रुतवान्पुनः ॥३८॥

कीजिये ॥३३॥ आज तक आपके ऐसा ब्राह्मण मैं कभी नहीं देखा। मैं मानता हूँ कि संसार की रक्षा के लिये आप शंकर हैं या विष्णु भगवान हैं ॥३४॥ जैसे बलि के घर श्री विष्णु भगवान ब्राह्मण बन कर गये थे उसे जैसा ही आप में अनुभव होता है। मैं सत्य कहता हूँ ॥३५॥ हे द्विज श्रेष्ठ किस कार्य्य के लिये आप आये हैं सो कहिये, मैं वह कार्य्य सम्पादन करूंगा ॥३६॥ विप्र वेषधारी श्री गणेश जी बोले हे राजा सुनो मैं मन्दार पर्वत पर गया था, वहाँ पर श्री शंकर जी के मुख से आपकी प्रशंसा बहुत बार सुना और आपके दर्शनार्थ आया हूँ ॥३७,३८॥

तदा प्रभृत्यहं राजन् काशीदर्शन लालसा ॥
आगतोऽस्मि महाराज काशीमीश्वेश्वरी पुरीम् ॥३९॥
तत्र दृष्ट्वा भवन्तश्च सभामण्डप मण्डितम् ॥
शोभयन् ससुरैर्यद्व द्वेष्टितः पाकशासनः ॥४०॥
नैतावद्दिन पर्यन्तं दृष्टं क्वापि नृपोत्तमम् ॥
शौर्य वीर्य्य तपोदार्ढ्य दया दाक्षिण्य मेवच ॥४१॥
दृष्ट्वाहं त्वद्गुणं राजन् यथाशम्भु मुखाच्छ्रुतम् ॥
कृत कृत्योऽह मेवात्र दर्शनात्त नृपोत्तम ॥४२ ॥
वयंज्योतिर्विदो राजन् वृत्तान्तं कथयामहे ॥
वर्तमान मतीतञ्च भविष्य ञ्चापि वै नृप ॥४३॥
सूत उवाच
ब्राह्मणस्य मुखात्साधो स्वसुदन्त मनोगतम् ॥
श्रुत्वाति रुचिरं राजा दिवोदासोऽति हृष्टधिः ॥४४॥

उसी दिन से काशी दर्शन की लालसा से यहाँ पर आया हूं ॥३९॥ यहाँ पर आपको देख कर तथा सभा मण्डप को देख देवताओं से सेवित जिस प्रकार इन्द्र रहते हैं मैं उसी प्रकार आप को भी देखता हूं ॥४०॥ आज तक मैं भी शौर्य्य वीर्य्य दया चतुराई में आपके ऐसा राजा कभी नहीं देखा था ॥४१॥ हे नृपोत्तम आपका गुण देख कर जैसा महादेव के मुख से आप की प्रशंसा सुना था वैसा ही आपको देख कर मैं कृत कृत्य हूं ॥४२॥ हे राजा मैं ज्योतिषी हूं भूत भविष्य वर्त्तमान समस्त वृत्तान्त कहता हूं ॥४३॥

कृत कृत्य मिवात्मानंममन्यत नृपोत्तमः ॥
पृष्टवान् निजवृत्तान्तं भविष्यञ्चाति गोपनम् ॥४५॥
दिवोदास उवाच
ज्योतिर्विदर्य्य महाभाग कथयस्वानु कम्पया ॥
गोपनीयञ्च वृत्तान्तं भविष्यं ममकञ्च यत् ॥४६॥
ब्राह्मण उवाच
शृणुराजन् प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तञ्चाति गोपनम् ॥
भविष्यं नृपशार्दुल कथयामि तवाग्रतः ॥४७॥
नभवत् त्वदृशोराजा भुवि कुत्रापि दृश्यते ॥
स्वतपो बलदर्पेण जितमिन्द्रादिकं त्वया ॥४८॥
तपसा निर्जिता काशी पुरीगौश्वेश्वरी नृप ॥
भैाग्यं मुक्तं त्वया राजन् यद्देवैरपि दुर्लभम् ॥४९॥

सूत जी बोले हे शौनक ब्राह्मण के मुख से अपने मनोगत वृत्तान्त को सुन कर दिवोदास अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥४४॥ और अपनी आत्मा को कृत कृत्य माना और आपने भविष्य का अत्यन्त गोपनीय वृत्तान्त पूछा ॥४५॥ दिवोदास बोला हे ज्योतिषियों में श्रेष्ठ मेरा अत्यन्त गोपनीय भविष्य वृत्तान्त कहिये ॥४६॥ ब्राह्मण बोले हे राजा आप सुनिये आपका अत्यन्त गोपनीय भविष्य वृत्तान्त कहता हूं ।४७। हे राजा आपके ऐसा संसार में भी आज तक राजा नहीं देखा आप अपने तपो बल से इन्द्रादि क देवताओं को जीता ।४८। आपने अपनी तपस्या से विश्वेश्वर की पुरी काशी को जीता

परन्विश्वेश्वरो देवो काशी विरह कातरः ॥
आस्ते मन्दारशिखरे तवार्थे यत्नवान् भवः ॥५०॥
त्वदर्थं प्रेषिता देवा बहुविघ्नार्थं मेवहि ॥
जानाम्यहं भविष्यञ्च महोत्पातं नृपोत्तम ॥५१॥
भविष्यति च काश्यां वै प्रति कारश्च तस्य वै ॥
दृश्यते नृप शार्दूल तस्मात्वं यत्नवान् भव ॥५२॥
अस्मादष्टादशे राजन् दिवसे द्विजसत्तमः ॥
आगमिष्यति काश्यां वै सर्वशास्त्र विचक्षणः ॥
स यथोपदिशेद्वाक्यं ग्राह्यं तद्वै नृपोत्तम ॥
सर्वं साधयेत्सोऽपि तव नास्त्यत्र संशयः ॥५४॥

जो देवताओं को भी दुर्लभ है ऐसा भोग भी आपने को ॥४९॥ परन्तु दुःख इतना ही है कि विश्वेश्वर काशी के विरह में दुःखी हो कर मन्दार पर्वत पर आपके लिये यत्नवान हैं ॥५०॥ तेरे लिये देवतागणों को विघ्न करने के लिये भेजा है भविष्य में महान उत्पात का सम्भव काशी में है सो मैं जानता हूं ॥५१॥ उसका प्रतिकार भी नहीं है हे नृप शार्दूल इस लिये आप यत्नवान होइये ॥५२॥ आज से १८ में दिन एक ब्राह्मण आवेगा वह सर्व शास्त्र विशारद ब्राह्मण जो आप को उपदेश करेगा सो आप ग्रहण करेंगे ॥ वह आप का सब साधन करेगा ॥५३,५४॥

इत्युक्त्वान्त विमोह्याथ यथेष्टं गतवान् प्रभुः ॥
दिवोदासोऽपि हर्षेण पूजयित्वा द्विजोत्तमम् ॥५५॥
राज कार्येऽप्युदासीनो द्विजागमन काङ्क्षया ॥
प्रतीक्षन्ते महाराज गजानन विमायया ॥५६॥

सूत उवाच

मोहयित्वा दिवोदासं काश्याञ्चैव गजानन ॥
समागत्य च मन्दारे यत्र विश्वेश्वरो विभुः ॥१॥
कथयामास वृत्तान्तं परङ्कौतूहलेन च ॥
शंकरोऽपि प्रसन्नात्मा मन्दारेशं श्रियः पतिम् ॥२॥

ऐसा कह कर अन्तः करण में मोहन कर अपने इच्छित देश को गये ॥ दिवोदास भी हर्ष से ब्राह्मण की पूजा कर राज कार्यं में उदासीन होकर ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे ॥५५॥५६॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे कपिल परीक्षित सम्वादे मन्दार गणपति माहात्म्ये काश्यां गजाननेन दिवोदासस्य मोहन नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सूत बोले हे शौनक, गजानन श्री गणेश जी काशी में दिवोदास राजा को मोहित कर मन्दार आकर जहाँ पर विश्वेश्वर थे ॥१॥ वहाँ पर परम कुतूहल के साथ काशी का वृत्तान्त कहने लगे शंकर भगवान भी प्रसन्न हो कर मन्दारेश

समाहूय परब्रूतं गजाननं विचैष्टितम् ॥
कथयामास वैशस्तु परङ्कौतूहलेनच ॥३॥

विश्वनाथ उवाच

शृणुविष्णो महादुःखं स्मृत्वा काशीं प्रजायते ॥
तदर्थन्तुण नाथस्त्व प्रेषितश्च पुरामया ॥४॥
गत्वा वाराणसीं सोऽपि दिवोदासं विमोह्यच ॥
राज्यं कार्येऽप्युदासीनं कृत्वा सत्वर मागतः ॥५॥
प्रतीक्षमाणो विप्रेन्द्रं दिवोदासो रमापते ॥
तिष्ठतिस्म जगन्नाथ वाराणस्यां नृपोत्तम ॥६॥
अतस्त्वं ब्राह्मणो भूत्वा वाराणस्यां समेत्यच ॥
मोक्षमार्गोप देशेन दिवोदासं नृपोत्तमम् ॥७॥

लक्ष्मी पति को ॥२॥ बुला कर श्री गणेश जी का काशी का कर्त्तव्य बहुत कुतूहल के साथ कहने लगे ॥३॥ श्री विश्वनाथ बोले हे विष्णु काशी स्मरण जन्य हमें बहुत दुःख इसी काशी के लिये श्री गणेश जी को भेजा था ॥४॥ श्री गणेश जी काशी जा कर दिवोदास राजा को मोहित कर तथा राज्य कार्य्य से उदासीन कर शीघ्र मेरे पास आये हैं ॥५॥ हे रमापते काशी में दिवोदास राजा ब्राह्मण श्रेष्ठ की प्रतीक्षा कर रहे ॥६॥ इसी लिये हे जगन्नाथ, आप काशी जाकर दिवोदास के भवन जा वह श्रेष्ठ राजा दिवोदास को मोक्ष मार्ग के उपदेश से ॥७॥

प्रेषयित्वा दिवं शश्च मुक्तां काशीं नृपेणच ॥
कृत्वात्मत्वञ्च मन्दारे सत्वरञ्च ममान्तिकम् ॥८॥
सुखिनं कुरु मांविष्णो मदर्थं क्लेश मानभव ॥
ततश्चाहं गमिष्यामि वाराणस्यां रमापते ॥९॥
काशींविना नकुत्रापि रतिर्मे जायते हरे ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा विरराम्राथ शंकरो भगवान्प्रभुः ॥१०॥
ओमित्युक्त्वा महाविष्णुर्गत्वा काशीं मनुत्तमाम् ॥
विप्रवेषोथ वैलाथो दिवोदास निकेतनम् ॥११॥
जगाम भगवांस्तत्र कार्य्यार्थं शंकरस्यच ॥
रुचिरं वेषमास्थाय मोहयन्तं जगत्त्रयम् ॥१२॥

कपिल उवाच ॥

दृष्ट्वा तत्र जगन्नाथो विप्रवेष धरन्नृप ॥
दिवोदासोऽति धर्म्मात्मा परमानन्द मासवान् ॥१३॥

उसको स्वर्ग पठा उस से काशी को विमुक्त कर फिर शीघ्र मन्दार आकर मेरे पास आइये ॥८॥ हे विष्णो मेरे लिये क्लेश कर हमें सुखी कीजिये हे रमापते तब मैं भी काशी जाऊंगा ॥९॥ हे हरे काशी बिना हमें कहीं पर मन नहीं लगता है ॥ सूत जी बोले हे शौनक ऐसा कहकर शंकर भगवान् चुप हो गये ॥१०॥ महाविष्णु भी ओम् ऐसा कहकर सर्वश्रेष्ठ काशी जाकर ब्राह्मण के वेष में दिवोदास के भवन गये ॥११॥ श्री शंकर जी के कार्य्यार्थ रुचिर वेष बनाकर तीनों लोक को

पाद्यमर्घ्यादिकं दत्वा कुशलञ्चापि पृष्टवान् ॥
निजवृत्तञ्च विप्रेन्द्रं कथयामास वै नृप ॥१४॥

दिवोदास उवाच

खिन्नोऽस्मि विप्रवर्य्याहं राज्यभारं समुद्वहन् ॥
खेदोनास्त्यैवहि परं वैराग्य मिवजायते ॥१५॥
किङ्करोमि कगच्छामि कथंशान्ति र्भवेन् मम ॥
पक्षक्षरे व्यतीतेऽपि ममचिन्तयतो द्विज ॥१६॥
असीमं सुखसन्तानं भुक्तं राज्यं मयाद्विज ।
परिक्षीण विपक्षश्च व्यक्षं स्वयं मिवस्फुटम् ॥१७॥
स्वसामर्थ्या दहंजातः पर्ज्जन्या न्यग्निलात्मकम् ॥
प्रजाश्च पालिताः सम्यक् निजपुत्रानिवौरसान् ॥१८॥

मोहित करते हुये गये ।।१२।। कपिलदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे हे नृप वहांपर जगन्नाथ को देखकर दिवोदास राजा परमानन्दित हुये ।।१३।। धर्मात्मा दिवोदास नामका राजा विप्र वेषधारी पुरुषोत्तम को पाद प्रक्षालनादिक कर कुशल पूछे ।। और अपना वृत्तान्त भी ब्राह्मण श्रेष्ठ से पूछा ।।१४।।

दिवोदास बोले, हे विप्रश्रेष्ठ इस राज्य भार से मैं खिन्न हूं। और कोई विषयको हमें शोचनीय नहीं है अब वैराग्य के ऐसा हमें प्रतीत होता है ।।१५।। हे द्विज मैं कहां जाऊँ, क्या करूँ कैसे हमें शान्ति मिलेगी, इस विषय में चिन्ता करते २ हमें पन्द्रह दिन हो गये ।।१६।। असीम सुख सन्तान को मैंने भोगा तथा राज्य भी भोगा। अपने विपक्ष

तर्पिताश्चापिभूदेवा वसुभिश्च दिने दिने ॥
एक मेवापराधश्च मया राज्यप्रशासता ॥१९॥
देवास्तिरस्कृताः सर्वे स्वतपोबल दर्पितः ॥
तच्च प्रजोपकारार्थं न स्वार्थं भवतः शपे ॥२०॥
अधुना गुरुरेषि त्वं ममभाग्या दुपागतः ॥
किमप्युपदिश प्राज्ञ धर्मवासोपि शान्तये ॥२१॥
करिष्यामि तदेवाहं त्वदाज्ञप्त गौरवात् ॥
त्वद्विलोकन मात्रे ण सर्वएव मनोरथाः ॥२२॥
अन्येषा मपि जायन्ते जात प्राया मनैवतुः ॥
जाने देव विरोधेन केकेन प्रलयं गताः ॥२३॥

को मैंने निःशेष कर दिया। शंकर जी के समान स्वतन्त्र राज्य किया ।।१७।। अपने तपोबल से मैं मेघ, वायु तथा अग्नि होकर और निज पुत्र के ऐसा पालन किया ।।१८।। और दिनानुदिन भूदेव ब्राह्मणों को धन देकर तृप्त किया ॥ मेरे राज्य शासन करते हुये एक ही अपराध हमें ज्ञात होता है ।।१९।। कि देवता लोक को मैंने अपना तपोबल से तिरस्कार किया सो भी प्रजापालन के लिये नहीं स्वार्थ के लिये आपका शपथ पूर्वक मैं कहता हूं ।।२०।। हे प्राज्ञ सम्प्रति धर्म निवृत्यर्थ कुछ उपदेश कीजिये। मेरा भाग्य से आप उपस्थित हुये हैं ।।२१।। आपके दर्शन ही से मेरा समस्त मनोरथ पूरा हुआ और मैं आपका उपदेश अवश्य ग्रहण करूंगा ।।२२।। और अन्य व्यक्तियों का भी मनोरथ सिद्ध हो के

इदानीं दिशमे तात कर्म निर्मूलन क्षमम् ॥
उपायस्त्व मुपायज्ञ येन निर्वृति माप्नुयात् ॥२४॥

श्रीविष्णुरुवाच

साधु साधु महाभाग नृप चूडामणि भवान् ॥
मया यदुपदेष्टव्यं त्वयैव निरूपितम् ॥२५॥
स्वभावादेव निवृत्तः परमे मानसोऽसि ॥
क्षालितेन्द्रिय पङ्कश्च सुतपःस्वच्छ वारिभिः ॥२६॥
यदुक्तं भवता भूप तत् सर्वं तथ्य मेवच ॥
तव शक्तिश्च जानामि विरक्तिश्चापि भूपते ॥२७॥
त्वमवत्सदृशो राजा भुवि भूतो भविष्यति ॥
राज्यं भुक्तं त्वयाजापि युक्तं यत् मुमुक्षसि ॥२८॥

ऐसा ज्ञात होता है। मैं जानता हूं की देवता के विरोध से किस २ पर विपत्ति नहीं पड़ी ।२३॥ हे तात सम्प्रति कर्म निर्मूलन का उपदेश कीजिये। हे उपाय को जानने वाले जिस से हमें निर्वृत्ति होय ।२४॥ श्री विष्णु भगवान बोले, हे महाराज, हे राजाओं के चूड़ामणि आपने बहुत अच्छी बात पूछी, मैंने जो उपदेश करता सो आप ही कहा ॥२५॥ आप पहले ही निवृत्ति मार्ग से मन लगाया अब एव इन्द्रीय जन्य जो पाप उसको सुन्दर तपस्या रूपी स्वच्छ जल से विशुद्ध किया ॥२६॥ हे राजा आपको शक्ती मैं जानता हूं और आपकी विरक्ति भी मैं जानता हूं । आपने जो कहा सो सब सत्य है ॥२७॥ आप के ऐसे राजा न हुये न हैं न होंगे। राज भी आप न्याय पूर्वक

विरोधेऽपिहि देवानां त्वया नाप कृतं क्वचित् ॥
धर्मेतर प्रवेशश्च तव राष्ट्रेऽपि नोऽभवत् ॥२९॥
प्रवर्तिताभि भवता प्रजाभि र्यदनुष्ठितम् ॥
धर्मं धर्म स्वधर्मज्ञ तेनतुष्टा दिवौकसः ॥३०॥
एक एवास्ति दोषः हृदि मे प्रतिभासते ॥
काश्यां विश्वेश्वरो दूरं यत्कृतं भवता किल ॥३१॥
महांस्त्व मपराधस्ते जाने भूपाल सत्तम ॥
इमं तदपराधशान्त्यर्थं मुपायस्त्वभिम भूपते ॥३२॥
संख्याऽस्ति यावती देहे देहिनो रोम सम्भवा ॥
तावन्तो ऽप्यपराधास्य यान्ति लिङ्गप्रतिष्ठया ॥३३॥

भोग किया सम्प्रति मोक्ष की इच्छा जो आप कर रहे हैं सो बहुत युक्त है ॥२८॥ आप देवता लोक का भी विरोध करके कुछ अपराध नहीं किया धर्म से इतर मार्ग में आप की प्रजा की प्रवृत्ति नहीं है ।२९। हे धर्म को जाननेवाले आपने जो प्रजा के लिये अनुष्ठान किया है उसी से देवता लोग भी आपके ऊपर प्रसन्न हैं ॥३०॥

आप का एक ही अपराध हमें ज्ञात होता है कि काशी से विश्वेश्वर को आपने दूर कर दिया है ॥३१॥ हे भूपाल सत्तम एक यही बड़ा अपराध आपका हमें ज्ञात होता है । हे भूपति इस अपराध का शान्त्यर्थ मैं एक उपाय आपको बताता हूँ ॥३२॥ प्राणी की देह में जितने रोम हैं, उतने अपराध की शान्ति एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा से होती है ॥ ३३॥

एकं प्रतिष्ठितं येन लिङ्गमत्रेश भक्तितः ॥
तेनात्मनात्मसं विश्वं जगदेतत् प्रतिष्ठितम् ॥३४॥
रत्नाकरे रत्नसंख्या संख्याविद्भि रपीष्यते ॥
लिङ्ग प्रतिष्ठा पूण्यस्य नतुसंख्येतिलिख्यते ॥३५॥
तस्मात्सर्वे प्रयत्नेन कुरुलिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥
तयालिङ्ग प्रतिष्ठित्या कृत्य कृत्यो भविष्यसि ॥३६॥
इत्युक्त्वा ब्राह्मणोदध्यौ क्षणंनिश्चल मानसः ॥
उवाचच प्रहृष्टात्मो राजानं पाणिना स्पृशन् ॥३७॥

श्रीविष्णुरुवाच

अन्यत्तत्र किञ्चित्पश्यामि भूपाल ज्ञान चक्षुषा ॥
शृणुष्वा वहितो भूत्वा तदपि प्राज्ञ सत्तम ॥३८॥

जिसने काशी में एक भी शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित किया है, उन्होंने जगत्प्रतिष्ठा का फल लाभ किया है ॥३४॥ समुद में जितनी संख्या रत्न का है उसको संख्या का जानने वाले संख्या कर सकते पर शिवलिङ्ग कि जो प्रतिष्ठा है उसकी संख्या नहीं है ॥३४॥ इसलिये आप यत्न पूर्वक एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा कीजिये उससे आप कृतकृत्य होंगे ॥३५॥ ऐसा कह कर ब्राह्मण क्षण भर चुप होकर फिर राजा को हाथ से स्पर्श करते हुये प्रसन्न होकर बोले ॥३६॥ श्रीविष्णु भगवान बोले ॥ हे भूपाल दूसरा भी मैं ज्ञान दृष्टि से जो देखता हूं। हे प्राज्ञसत्तम वह भी आप से कहता हूँ ॥३७॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि मान्योऽसि महतामपि ॥
जप्यश्च फलनामेह प्रातः फल शुभेच्छया ॥३९॥
दिवोदास त्वदध्यासा दापधन्य तरावयम ॥
तेऽपि धन्यतरा मर्त्ये ये त्वादाख्याम् प्रचक्षते ॥४०॥
स्मायं स्मायं जगौ विप्रो मौलि मन्दोलयन्मुहुः ॥
हृद्येव बहुशो हृष्टः सम्प्रहृष्ट तनू रुहः ।४१॥
अहो भाग्यो दयज्ञास्य अहो नैर्मल्य मस्यवै ॥
पदेन मनसि ध्यायन् ध्येयो विश्वेश्वरोऽखिलः ॥४२॥

ब्राह्मण उवाच

राजं स्तवाद्य फलितो मनोरथ महाद्रुमः ॥
अनेनैव शरीरेण त्वंगन्तासि परमपदम् ॥४३॥

हे राजा आप धन्य २ कृत्य कृत्य हैं तथा महान पुरुषों से भी माननीय हैं और कल्याण की इच्छा करने वाले से आप प्रातस्मरणीय हैं ॥३८॥ हे दिवोदास आप के यहां आने से मैं भी धन्य हुआ और वह भी संसार में धन्य होगा जो आप का गुणानुवाद करेगा ॥३९॥ बारम्बार मुस्कुराते हुये मस्तक को हिलाते हुये हृदय में आनन्दित होते हुये प्रसन्न शरीर रूपी वृक्ष से ॥४०॥ मन ही मन धन्यवाद देने लगे धन्य! दिवोदास का भाग्य तथा धन्य मानसिक निर्मलता; क्योंकि जगत् का ध्येय श्री विश्वेश्वर इसका अहर्निशि ध्यान करते हैं ॥४१॥ ब्राह्मण बोले, हे राजा दिवोदास आज आप का मनोरथ रूपी वृक्ष-

यथा विश्वेश्वरं देवो नित्यं त्वं ध्यायसाग्रतः ।
तथा स्मदादीनपि न द्विजास्त्वत्पाद लोचनात् ॥४४॥
कृतलिङ्ग प्रतिष्ठस्त्वं सप्तमे ह्य वासरे ॥
दिव्यं विमान मागत्य नेतुमेष्यति शाम्भवम् ॥४५॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स राजर्षि र्दिवोदासः प्रतापवान् ॥
ब्राह्मणाय सशिष्याय प्रादात्सोऽपि वाञ्छितम् ॥४६॥
अथ सम्प्रीणित विप्रं प्रणम्य च मुहु र्मुहुः ॥
प्रोवाच राजा संहृष्ट स्तारितोऽस्मि भवार्णवात् ॥४७॥

फलित हुआ। इसी शरीर से आप परम पदको पाने वाले हैं ॥४३॥ जिस प्रकार विश्वेश्वर आप का अहर्निशि ध्यान करते हैं वैसा हम लोगों का नहीं ॥४३॥ आप शिवलिङ्ग का प्रतिष्ठा कीजिये। आज के सातवा रोज आप को शङ्कर जी का दूत दिव्य विमान पर चढ़ा कर शिवलोक ले जायगें ॥४४॥ सूत जी बोले हे शौनक ब्राह्मणके मुख से यह वृत्तान्त सुन कर प्रतापी राजा दिवोदास सशिष्य ब्राह्मण को इच्छित दान दिया।४५॥ ब्राह्मण को प्रसन्न कर बारम्बार प्रणाम कर कहने लगे हे ब्राह्मण आप संसार रूपी समुद्र से हमें आज तार दिया ॥४६॥ ब्राह्मण भी प्रसन्न होकर पूर्ण मनोरथ हो राजा से आज्ञा लेकर अपने अभिमत देश को गये ॥४७॥

ब्राह्मणोऽपि प्रहृष्टात्मा परिपूर्ण मनोरथः ।
समापृच्छ्य महीनाथं स्वेष्ट देशं जगाम ह ॥४८॥
दिवोदासोऽपि विप्रेन्द्रं वर्णयन् बहुशो गुणान् ॥
आहूय प्रकृतिः सर्वाः सामात्यान् मण्डलेश्वरान् ॥४९॥
अध्यक्षानपि सर्वांश्च कोशाश्वेभादि दर्शितान् ॥
पुत्रान् पञ्च शतस्याग्र्यं सुतञ्च समरञ्जयम् ॥५०॥
पुरोहित प्रतीहार मृत्युजो गणकान्द्विजान् ॥
सामन्तान्राज पुत्रांश्च सूपकारांश्चिकित्सकान् ॥५१॥
औदेशिकानपि बहून् नानाकार्यं समागतान् ॥
सान्तः पुराङ्गन महिषीं वृद्ध गोपाल बालकान् ॥५२॥
सर्वान् प्रोवाच हृष्टात्मा प्रबद्धकरसम्पुटः
यथा सब्राह्मणः प्राह दिनसप्तावधि स्थितिम् ॥५३॥

दिवोदास भी ब्राह्मण के अनेकों गुण वर्णन करते हुये अपना समस्त प्रजागण तथा मन्त्रीगण मण्डलेश्वर राजा गणको और जितने जिस २ कार्य में नियुक्त थे उन सब को बुला करके ॥४८॥ पाँच सौ पुत्रों में सब से श्रेष्ठ समरञ्जय नामके पुत्र को ॥४९॥ पुरोहित दूत यागकराने वाले ऋत्विज को ज्योतिषी लोगों को रसोई करने वाले चिकित्सक तथा विदेशी व्यापारी लोक के अन्तः पुरमे रहने वाली पट्ट रानीयों को बुड्ढे गोरक्षक तथा बालक को बुलाकर ॥५०,५१॥ सभों को बुलाकर हाथ जोर सिर झुका कर प्रसन्न चित्तसे कहने लगे ॥ जैसाकि सात दिन कि स्थिति ब्राह्मण ने कहा था सो उन लोगों से सुनाया ॥५२॥

आश्चर्य्यन्तेषु शृण्वत्सु विषण्ण वदनेषु च ॥
स्वयं राजगृहं गत्वा कुमारं समरञ्जयम् ॥५४॥
अभिषिच्य महाबुद्धिः पौरान् जानपदानपि ॥
प्रसादी कृत्य पुण्यात्मा पुनः काशी मगान्नृप ॥५५॥
तत्र लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य पूजयित्वा विधानतः ॥
दिव्यं स्यन्दन मास्थाय शाम्भवं धाम संययौ ॥५६॥

सूत उवाच

दिवोदाशो गते स्वर्गे मन्दारेश जनार्द्दन ॥
समागत्य निजं वृत्तं कथयामास शङ्करम् ॥१॥

सुनने वाला आश्चर्य के साथ विदीर्ण हृदय होकर म्लान मुख हो गया। स्वयं राजगृह जाकर समरञ्जय नाम के पुत्र को ॥५३॥ राज्याभिषेक देकर जितने पुरवासी थे उन सबको प्रसन्न कर पुण्यात्मा वह राजा फिर काशी गये ॥५४॥ काशी में एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा कर विधिपूर्वक पूजन कर दिव्य विमान पर चढ़ कर शंकर जी का कैलाश धाम है वहाँ गये ॥५५॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे काशी खण्डे कपिल परीक्षित सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥

सूत जी बोले हे शौनक जब दिवोदाश स्वर्ग गये तब जनार्दन भगवान मन्दार आकर शंकर जी के प्रति समस्त वृत्तान्त

श्री विष्णुरुवाच ॥

शृणु शम्भो यथावृत्तं दिवोदाश विचेष्टितम् ॥
कथयाम्य विशेषेण वाराणस्या मुमापते ॥२॥
गतेमयि यदाकाश्यां दिवोदाशस्य वेश्मनि ॥
दृष्ट्वा मांचाति हर्षेण दिवोदाशः प्रतापवान् ॥३॥
पाद्य मर्घ्यादिकन्दत्वा भक्ष्यभोज्यादिकन्ततः ॥
प्रणम्य पुरतो राजा निज वृत्तान्त मादितः ॥४॥
कथयित्वा ततो राजा याचते मुक्ति मुत्तमाम् ॥
ततस्तस्मै प्रसन्नोऽहं मुक्ति मार्गोपदेशतः ॥५॥
विरक्तिं कारयामास राज्य कार्य्यादिकेषु च ॥
त्यक्त्वा काशीन्ततः शम्भो गत्वा राजगृहन्नृप ॥६॥
तत्र कृत्वा राजधानीं ज्येष्ठ पुत्राय भूपतिः ॥
समरञ्जय नाम्नेच दत्वा राज्यादिकन्ततः ॥७॥

सुनाया ॥ १ ॥ श्री विष्णु भगवान बोले हे शंकर जी काशी में दिवोदास का समस्त वृत्तान्त मैं कहता हूं आप सुनिये ॥२॥ मैं काशी जाकर दिवोदास के घर गया तब मुझे देख कर प्रतापी राजा दिवोदाश ॥ ३ ॥ पाद्य तथा अर्घादिक देकर तथा भक्ष्य भोज्यादिक भी देकर आगे जाकर प्रणाम कर, अपना समस्त वृत्तान्त सुनाया ॥४॥ अनन्तर उत्तम जो मुक्तिमार्ग उसका याचना कि तब मैं प्रसन्न होकर मुक्ति मार्ग का उपदेश देकर ॥५॥ राज कार्य्य में उदास कर तब हे शम्भो वह प्रतापी राजा काशी छोड़ कर राजगृह जाकर ॥ ६ ॥ वहाँ पर राजधानी बना कर

वाराणस्याञ्च ते लिङ्गं स्थापयित्वा दिवङ्गतः ॥

ततः काशीन्विहायात्र मन्दारे गिरिजापते ॥ ८ ॥

आगतोऽस्मि यथा शांतां दातुमर्हसि शंकरः ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णु र्मौन मालम्ब्य सस्थिवान् ॥९॥

शङ्करोऽति प्रसन्नात्मा वृत्तान्तं चाति हर्षितः ॥

श्रुत्वा विष्णु मुखात्साधो तुष्टाव मधुसूदनम् ॥१०॥

शंकर उवाच

जय विष्णो महा भाग जय भक्तार्ति नाशन ॥

जयाखिल जगद्वन्द्य मन्दारेश नमोऽस्तुते ॥११॥

समरञ्जय नाम का पुत्र को राज देकर ॥७॥ तब वाराणसी में आपका लिङ्ग प्रतिष्ठा कर स्वर्ग गया ॥ तब हे गिरिजापते मैं काशी छोड़कर मन्दार आया हूं ॥८॥ हे शंकर जी अब आप क्या आज्ञा देते है ॥सूत जी बोले हे शौनक ऐसा श्री विष्णु भगवान शंकर जी को कह कर मौन हो कर स्थिर रह गये ॥९॥ शंकर जी भी भगवान के मुख से समस्त वृतान्त सुन कर अत्यन्त हर्ष से मधुसूदन जी की स्तुति करने लगे ॥१०॥ शंकर जी बोले हे विष्णो हे महा भाग हे भक्त के दुःख नाश करने वाले हे अखिल जगत के वन्दनीय आप की जय हो हे मन्दारेश आप को मैं प्रणाम करता हूं ॥११॥

जय विश्वम्भरा शेष जय पापौघ नाशन ॥

जय विश्वसमुत्पत्तौ बीज भूतं सनातन ॥१२॥

जय भक्त प्रियो नाथ जय दैत्यौघ नाशन ॥

सुरा सुर वरस्तस्मै मधुसूदन ते नमः ॥१३॥

त्वत्प्रसादा दहं विष्णो पुनः प्राप्स्यामि तांपुरीम् ॥

काशी मुक्ति प्रदान्देव दिवो दासोर्पितां हरे ॥१४॥

सूत उवाच

एवंस्थित्वा ततः शम्भु रनुज्ञां प्राप्य शौरेः ॥

समाहूय गणान् सर्वान् गमने कृत निश्चयः ॥१५॥

वाराणस्यां महाराज सगणो गिरिजा पतिः ॥

वर्णयश्चरितं विष्णोः शंकरो हृष्ट मानसः ॥१६॥

हे अशेष विश्व को भरण करने वाले हे समस्त पाप समूह को नाश करने वाले हे विश्व समुत्पत्ति में सनातन बीज स्वरूप आप का जय हो ॥१२॥ हे भक्त का प्रिय करने वाले हे समस्त दैत्य समूह को नाश करने वाले आप का जय हो हे सुर तथा असुरों में श्रेष्ठ हे मधुसूदन ऐसे आप को मैं प्रणाम करता हूं ॥१३॥ हे विष्णो आप के प्रसाद से मैं फिर भुक्ति और मुक्ति को देने वाली काशी को दिवोदास से प्राप्त करूंगा ॥१४॥ सूत जी बोले हे शौनक इस प्रकार स्तुति कर फिर विष्णु भगवान की आज्ञा पाकर अपना समस्त गणों को बुला कर फिर काशी जाने का निश्चय किये ॥१५॥ श्री विष्णु भगवान का गुणगान हर्ष

श्रुत्वा चैतज्जनाः सर्वे मन्दाराद्रि निवासिनः ॥
व्याकुलाश्च ततो राजन् बभूवुस्तत्र ये स्थिताः ॥१७॥
शोक सागर मग्नाश्च शम्भो विरह कातरा ॥
स्तुतिञ्चक्रु महाराज शङ्कर भ्राति भक्तितः ॥१८॥

जना ऊचुः

जय शम्भो दयासिन्धो जय दुःखौघ नाशन ॥
जय भक्त प्रियोदेव विश्वनाथ नमोऽस्तुते ॥१९॥
नमस्ते पार्वतीनाथ नमस्ते चन्द्रशेखर ॥
नमस्ते सर्वेईशान विश्वनाथ नमोस्तुते ॥२०॥

से करते हुये समस्त वृत्तान्त सुनाया ॥१६॥ कपिल देव जी परीक्षित से कहने लगे हे राजा परीक्षित यह वृत्तान्त मन्दार निवासी गण सुन कर व्याकुल हुये ॥१७॥ शंकर भगवान के वियोगजन्य शोक सागर में निमग्न होकर अधीरता से अत्यन्त भक्ति पूर्वक स्तुति करने लगे ॥१८॥ जन समूह बोला हे शम्भो हे दया के समुद्र हे दुःख समूह को नाश करने वाले हे भक्त के प्रियकरने वाले विश्व के नाथ, आप को हम लोग प्रणाम करते है और आपकी जयहो ॥१९॥ हे पार्वती नाथ हे चन्द्रशेखर, हे सर्व ईशान हे विश्वनाथ

नमःकैलाशनाथाय नमस्ते वृषभध्वज
नमः पिनाक हस्ताय विश्वनाथ नमोस्तुते ॥२१॥
नमोभक्तार्त्ति संहर्त्रे नमस्ते भक्तवत्सल ॥
गङ्गाधर नमस्तेऽस्तु विश्वनाथ नमोऽस्तुते ॥२२॥
नमःकाशी निवासाय त्रिपुरघ्नाय तेनमः
विहायास्मान् कथंशम्भो काशीङ्गन्तुत्वमिच्छसि ॥२३॥
त्वांविनात्र कथं शम्भो स्थास्यामि गिरिकानने ॥
अतस्त्वंतिष्ठ मन्दारे पालयास्मान् महेश्वर ॥२४॥

आपको हम लोक प्रणाम करते हैं ॥२०॥ हे कैलाश के नाथ हे वृषभध्वज हे पिनाक को हाथ में लेने वाले हे विश्वनाथ आपको हम लोक प्रणाम करते हैं ॥२१॥ भक्त के आर्त नाशक, हे भक्त वत्सल, हे गङ्गाधर हे विश्वनाथ आप को हम लोग प्रणाम करते हैं ॥२२॥ हे काशी में निवास करने वाले हे त्रिपुरा सुर को मारने वाले हे शम्भो हम लोगों को छोड़कर आप कैसे काशी जाने का इच्छा करते हैं ॥२३॥ हे शम्भो आप के बिना इस पर्व्वत के वन में हम लोग कैसे रहेंगे इस लिये आप मन्दार में रह कर हम लोगों का पालन कीजिये ॥२४॥

सूत उवाच

श्रुत्वाचेत्थं स्तुतिन्तेषां मन्दाराद्रि निवासिनाम् ॥
प्रसन्नः स्तानुवाचेदं वाक्यं वाक्य विशारद ॥२५॥

शङ्कर उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे तथ्य मेतद् ब्रवीम्यहम् ॥
स्वांशे नैवात्र तिष्ठामि न चिन्ताङ्कर्त्तुमर्हथ ॥२६॥
काशीतोऽप्यधिकं स्थानं मन्दारम्मम शोभनम् ॥
प्रियश्चाति न सन्देहो जानन्तु मुनिसत्तमाः ॥२७॥
यत्र सन्निहितो विष्णु र्भगवान् मधुसूदनः ॥
तस्मात्स्थानादधिकं स्थानं त्रिषुलोकेषु वै मुने ॥२८॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा पार्वती नाथः सम्बोध्याद्रि निवासिनम् ॥
प्रान्ते सौभाग्य कुण्डस्य दक्षिणस्यामहामुने ॥२९॥

सूत जी बोले हे शौनक इस प्रकार मन्दार निवासी की स्तुति सुन कर तथा प्रसन्न होकर उन लोगोंके प्रति वाक्यों मे विशारद श्री शङ्कर जी बोले ॥२५॥ हे समस्त मुनिगण आप लोग सुनिये मैं सत्य कहता हूं आप लोग चिन्ता न करें मैं एक अंश से निश्चय रहूंगा ॥२६॥ काशी से भी अधिक मन्दार मेरा प्रिय है। इसमें सन्देह नहीं है मुनि सत्तम यह आप लोग जानिये ॥२७॥ यहां पर नित्य निकट वर्त्ती श्री मधुसूदन भगवान हैं इस लिये इस स्थानसे अधिक पुण्य जगत तीनों लोक में भी कोइ दूसरा स्थान नहीं है ॥२८॥ सूतजी बोले

माधवेच सिते पक्षे चाष्टम्यां गुरुवासरे ॥
प्रतिष्ठाप्य निजं लिङ्गं मन्दारे पर्वतोत्तमे ॥३०॥
जगाम गिरिजाकान्तः सगणश्च नृपोत्तम ॥
वाराणस्यां महाराज शङ्कर श्चन्द्रशेखरः ॥३१॥
तदा रभ्यैव देशोऽयं त्रिलिङ्गश्च महामते ॥
विख्यातो भुविमर्त्यानां भुक्ति मुक्ति प्रदायकः ॥३२॥
नागनाथाच्च वायव्यां मन्दारेच द्विजोत्तम ॥
विश्वनाथो महादेव स्तिष्ठतिस्म महाप्रभुः ॥३३॥
एव त्रिलिङ्ग देशोऽयं त्रिषुलोकेषु विश्रुतः ॥
भुक्ति मुक्ति प्रदन्नृणां सर्व किल्विष नाशनम् ॥३४॥
एतस्मान्नैऋते भागे चतुर्योजन तो मुने ॥
हरिद्रा पृष्ठ माश्रित्य वैद्यनाथो महाप्रभुः ॥३५॥

इस प्रकार मन्दार वासी को धैर्य अवलम्बन करा तब पार्वती नाथ शौभाग्य कुण्डके पास दक्षिण दिशामें ॥२९॥ हे महामुनि वैशाख मास शुक्ल पक्ष अष्टमी बृहस्पति को मन्दार पर्वत पर अपना लिङ्ग की प्रतिष्ठा कर ॥३०॥ गणसहित चन्द्रशेखर शङ्कर जी वाराणसी गये ॥३१॥ हे महाराज परीक्षित उसी दिन से यह देश भुक्ति मुक्ति को देनेवाला त्रिलिङ्ग देश नाम से विख्यात हुआ ॥३२॥ नाग नाथ से वायुकोण में मन्दार पर्वत पर श्री विश्वनाथ महा प्रभु रहने लगे ॥३३॥ यह त्रिलिङ्ग से प्रतिष्ठत भोग मोक्ष को देने वाला तिनो लोक में विख्यात त्रिलिङ्ग देश समस्त पाप को नाश करने वाला हुआ ॥३४। मन्दार से नैऋत कोण में

मुक्ति मुक्ति प्रदानार्थं सदा तिष्ठति शंकरः ॥
आग्नेट्यां नाग नाथश्च सर्वकाम फलप्रदः ॥३५॥

कपिलदेव उवाच

इतिते कथितं साधो विश्वनाथो यथा गतः ॥
त्यक्त्वा मन्दार शिखरं वाराणस्यां महामते ॥ ३७॥
यइदं पठतेऽध्यायं भक्तिभाव समन्वितः ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति शंकरस्य प्रशादतः ॥३८॥

हरिद्रा पृष्ठ में भोग मोक्ष को देने वाले ४ यो जनपर श्री वैद्यनाथ जी वर्तमान है ॥ ३५ ॥ आग्नेय कोण मे समस्त कामना को देने वाले नागनाथ से प्रसिद्ध श्री वासुकी नाथ वर्तमान है ॥३६॥ कपिल देव जी बोले हे साधो जिस प्रकार मन्दार को छोड़कर श्री शंकर भगवान काशी गये सो मैं ने आप से कहा ॥३७॥ जो इस अध्याय को भक्ति, भाव से श्री शंकर भगवान के समीप पाठ करेगा वह शंकर जी के प्रसाद से सम्पूर्ण मनोरथ से पूर्ण होगा ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कन्दादि महा पुराणे सूत शौनक सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये मन्दारा द्विश्वनाथस्य श्री वाराणसी गमनं मन्दारे शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा करणं परीक्षित प्रति कपिल देवस्य कथनन्नामष्टा विंशोऽध्यायः ॥२८॥

परीक्षित उवाच

श्रुतश्च त्वन्मुखान्नाथ मन्दारेच यथाहरः ॥
प्रतिष्ठाप्य निजं लिङ्गं वाराणस्यां जगामह ॥ १॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि भूधरस्य महामते ॥
रहस्यं परमं गुह्यं भविष्यं किमपि प्रभो ॥२॥

कपिल उवाच

कथयामि महाराज वृत्तान्तञ्चाति गोपनम् ॥
मन्दारस्य महाबाहो महदाश्चर्य कारकम् ॥३॥
त्वमेव पुरादेवी पार्वती भक्त वत्सला ॥
शंकरं प्रत्युवचाथ सर्वलोकोप कारकम् ॥४॥

पार्वत्युवाच

श्रुतञ्च त्वन्मुखान्नाथ मन्दारस्य च वैभवम् ॥
इदानीं गुढवृत्तान्तं भविष्यं किमपि प्रभो ॥५॥

परीक्षित जी बोले हे नाथ मन्दार में अपना लिङ्ग प्रतिष्ठा कर वाराणसी श्री शंकर भगवान गये सो मैं ने आपके मुख से सुना ॥१॥ सम्प्रति मन्दारका गुह्य भविष्य वृत्तान्त कहिये हमें सुनने की इच्छा है ॥२॥ कपिल मुनि बोले हे महाराज अत्यन्त आश्चर्य जनक अति गोपनीय मन्दारका भविष्य वृत्तान्त मैं कहता हूं ॥३॥ यही वृत्तान्त भक्त वत्सला पार्वती देवी सर्वलोको पकारार्थ पूर्व समय में श्री महादेव जीसे पूछा था ॥४॥ पार्वती बोली हे नाथ आप के मुख से मन्दार का माहात्म्य मैं सुना सम्प्रति मन्दार का गूढ़ भविष्य वृत्तान्त कहिये ॥५॥

मन्दारस्य महादेव कथयस्वानु कम्पया ॥

शंकर उवाच

श्रृणु सुश्रोणि यत्नेन भविष्यश्चाति गोपनम् ॥६॥
मन्दारस्यच वृत्तान्तं कथयामि तवाग्रतः ॥
प्राप्ते कलियुगेघोरे जनाचार विवर्जिते ॥७॥
स्वेच्छाचारात्तु वर्तन्ते नरास्तत्र यदानघे ॥
तदा मन्दारशिखरं त्यक्त्वाच कमलापतिः ॥८॥
वालिशानगरे वासं करिष्यति नसंशयः ॥

पार्वत्युवाच

कथयस्व महाराज रहस्यं परमात्मनः ॥९॥
मधुसूदनदेवस्य चरित्रं पुण्यवर्धनम् ॥
कथं मन्दारशिखरं रुचिरं सुमनोहरम् ॥१०॥
परित्यज्य महाविष्णु र्वालिशानगरे विभुः ॥
आवासञ्च महाराज करिष्यति जगद्गुरु ॥११॥

शंकर जी बोले हे सुश्रोणि मैं अत्यन्त गोपनीय भविष्य वृत्तान्त मन्दार का कहता हूं सो सुनिये ॥६॥ हे पार्वति जब घोर कलियुग होगा तब प्राणीगण शिष्टाचार से रहित होगा अपना २ इच्छानुकूल आचरण करेगा ॥७॥ उसी समय में कमला के पति श्री विष्णुभगवान मन्दार पर्वतको छोड़ कर वालिशा नगरमें वास करेंगे ॥८॥ पार्वती बोली हे महाराज परमात्मा श्री मधुसूदनदेव का पुण्य वर्द्धक अत्यन्त गोपनीय चरित्र कहिये ॥९॥ सुन्दर तथा मन को हरणे वाले मन्दार पर्वत को छोड़कर वालिशा नगर में क्यों श्री विष्णुभगवान

तत्सर्वंच महादेव कथयस्वानु कम्पया ॥

महेश्वर उवाच

श्रृणु चार्वाङ्गि यत्नेन कथयामि तवाग्रतः ॥१२॥
गमिष्यति यथाविष्णु र्वालिशानगरे शुभे ॥
द्वापरान्ते महाविष्णु र्देवैः सम्प्रार्थितायदा ॥१३॥
भू भार हरणार्थाय मथुरायां जनिष्यते ॥
देवकी जठराज्जातो यशोदानन्द वर्द्धनः ॥१४॥
अनेकाद्भुत लीलाश्च कृत्वा लोकसुखायच ॥
निहत्य दैत्यरक्षांसि भू भारञ्च हरिष्यति ॥१५॥
त्यक्त्वा भूमिञ्च गोलोक गमिष्यति यदानघे ॥
ततः कतिपये वर्षे व्यतीते तस्य सुन्दरि ॥१६॥

वास करेंगे। सो सब हमें कृपाकर कहिये ॥१०॥११॥ महादेव बोले हे सुन्दर अङ्गवाली जिस प्रकार वालिशा नगर श्री विष्णु- भगवान जायेंगे सो मैं कहताहूं यत्न पूर्वक आप सुनिये ॥१२॥ द्वापर के अन्तमें देवता लोगों से प्रार्थना करने पर पृथ्वी का भार उतारने के लिये जब मथुरामें जन्म लेंगे ॥१३॥ देवकी के गर्भ में उत्पन्न होकर यशोदाको आनन्द बढ़ाने वाले लोक सुखार्थ अनेक प्रकार की अद्भुत लीलाकर ॥१४॥ दैत्य तथा राक्षसों को मारकर पृथ्वी का भार उतार कर पृथ्वी को छोड़कर जब गोलोक जायेंगे ॥१५॥ हे सुन्दरि अनन्तर कुछ दिन के बाद महा पाखण्डी बौद्ध

उत्पन्नाश्च भविष्यन्ति बौद्धाः पाखण्डिनः प्रिये ॥
दुष्यन्ति वेदमर्य्यादां यज्ञादींश्च विशेषतः ॥१७॥
अहिंसामात्रं करताः स्वेच्छाचार विहारिणः ॥
विजीत्य विविधान् देशान् मन्दारंच यदाप्रिये ॥१८॥
आगमिष्यन्ति कालेन पर्वते सुमनोहरे ॥
तवेमं रुचिरं क्षेत्रं दृष्ट्वा लुभ्यन्ति खेखलाः ॥१९॥
आरुह्य शिखरं रम्यं वनञ्चोप वनन्ततः ॥
पश्यन्त स्तत्र दैवादीव निनिन्द्य बहुधाःखलाः ॥२०॥
देवलास्तत्र निःकाश्य तस्थिवांसोऽति हर्षिताः ॥
ततः कतिपये वर्षे गते बौद्धे ततोऽनघे ॥२१॥
समेष्यन्ति ततो जैनाः जैनधर्म्मानु वर्त्तिनः॥
तेऽपि तद्वद्विनिन्दन्ति यथा बौद्धा स्तथाप्रिये ॥२२॥

धर्म्मावलम्बी उत्पन्न होंगे ॥१६॥ वेदिकी मर्य्यादा का दुखित करेंगे विशेष कर यज्ञादिक को भी केवल अहिंसा मात्र को धर्म्म मान कर स्वेच्छाचारी होगा ॥१७॥ हे प्रिये विविध देश को जीत कर जब मन्दार आवेगा ॥१८॥ तब यह रुचिर तथा मनोहर मन्दार पर्वत को देख कर वह खल लालच से इस पर्वत पर चढ़ कर सुन्दर वन तथा उपवन ॥१९॥ देखते हुये वहां का देवता समूहों को निन्दा कर वह खल देव पूजकों को मन्दार से निकाल कर स्वयं स्थान जमावेगा ॥२० हे पाप रहिते बौद्ध के जाने पर कुछ दिन के बाद जैन धर्म्मावलम्बी जैन लोग

ब्राह्मणाः कुलवृद्धाश्च गुरवश्च विशेषतः ॥
कुर्वन्ति यद्य लोकेऽस्मिन्तन्न कार्य्यं विशेषतः ॥२३॥
इत्थन्तस्योपदेशञ्च तत्र ये सन्ति मानवाः ॥
जगृहु र्निजमर्य्यादां त्यक्त्वा तत्रैव सुन्दरि ॥२४॥
नग्नोदण्ड जितःक्रोधी मौनीभोज्य जितेन्द्रियः ॥
स्वस्थानञ्च करिष्यन्ति मधुसूदन सन्निधौ ॥२५॥
दक्षिणस्याञ्च तत्पार्श्वे मन्दिरञ्च करिष्यति ॥
तद्दृष्ट्वा भगवान् विष्णु र्जैनधर्म्म विगर्हितम् ॥२६॥
निजस्थाने पदन्यस्य वालिशायाः सरोवरे ॥
निमज्जयामास ततो भगवान् मधुसूदनः ॥२७॥
दृष्ट्वा तत्र हरेः पाद मदृष्ट्वा तत्कलेवरम् ॥
व्याकुलाश्च ततो धीमन् सन्ति ये तत्र मानवाः ॥२८॥
स्तुतीं नाना विधैर्वाक्यैः कारयामासु रंजसा ॥

गा ॥२१॥ वे भी बौद्ध के ऐसा निन्दा करेंगे "ब्राह्मण वृद्ध जो कहेंगे वह विशेष कर नहीं करना चाहिये ॥२३॥ और वे लोक यों २ करेंगे विशेष कर के ये नहीं ना चाहिये" इस प्राकार उसके उपदेश सुनकर वहां के मनुष्य थे ॥२३॥ वे सब अपना २ मर्य्यदा छोड़ कर वहां हो कर अत्यन्त क्रोधी इन्द्रिय लम्पट होंगे ॥२४॥ मधुसूदन देव के समीप दक्षिण दिशा में मन्दिर कर वास करेगा ॥२५॥ अनन्तर जैनधर्म निन्दनीय कर अपने स्थान में पादन्यास कर स्वयं वालिशा

देवपूजका ऊचुः

जयदेव जगन्नाथ जय भक्तार्ति नाशन ॥२९॥
जय विश्वम्भरा शेष मन्दारेश नमोस्तुते ॥
नमस्ते जगदाधार नमस्ते कमलापते ॥३०॥
नमस्ते कमलाकान्त मन्दारेश नमोस्तुते ॥
नमो देवाधि देवाय मधुकैटभ मर्दिने ॥३१॥
ब्रह्म विष्णु महेशाय मन्दारेशाय ते नमः ॥
नमोनित्याय शुद्धाय सृष्टिस्थित्यन्त कारिणे ॥३२॥
नमस्ते परमेशाय मन्दारेशाय ते नमः ॥
नमो भक्तार्ति संहर्त्रे हव्य कव्य स्वरूपिणे ॥३३॥

सरोवर में श्री मधुसूदन भगवान निमग्न हो गये [illegible] अनन्तर श्री मधुसूदन भगवान के स्थान में उनका चरण [illegible] कर भगवान को नहीं देख कर वहां पर जितने देव पूजक गण [illegible] वे सब व्याकुल होकर अनेक प्रकार से श्री मधुसूदन भगवान [illegible] स्तुति करने लगे ॥२७।२८॥ हे देव हे जगन्नाथ हे [illegible] का दुःख नाश करने वाले हे अशेष विश्व को पालन [illegible] वाले आपकी जय हो ॥२९॥ हे जगत के आधार हे [illegible] पति हे मन्दारेश आपको प्रणाम करता हूं ॥३०॥ हे [illegible] के अधि देव हे मधुकैटभ को मारने वाले हे ब्रह्मा [illegible] महेश आप को प्रणाम करता हूं ॥३१॥ हे नित्य शु[illegible] सृष्टि की स्थिति तथा अन्त करने वाले हे मन्दारेश [illegible] आपको प्रणाम करता हूं ॥३२॥ हे भक्त का दुःख [illegible]

प्रणत क्लेश नाशाय मधुघ्नाय नमोनमः ॥
इत्थं वै बहुधास्तुत्वा व्याकुली भूत मानसाः ॥३४॥
निराहारा स्ततः सर्वे मरणे कृत निश्चयाः ॥
दृष्ट्वा चेत्थं ततस्तेषां करुणा पूर्ण मानसः ॥३५॥
दर्शयामास स्वप्नेषु भगवान् मधुसूदनः ॥
शृणुध्वं मानवाः सर्वे नचिन्तां कर्तुं मर्हथ ॥३६॥
अहं तावन्निमग्नोस्मि बालिशायाः सरोवरे ॥
पूर्वमेव वरं दत्तो बालिशायै तदन्यथा ॥३७॥
कथं कर्तुं यतोऽहं वै सत्य संकल्पवान् खलं ॥
प्राप्ते कलियुगे दुष्टे सदाचार विनिन्दिताः ॥३८॥

[illegible] हव्य कव्य स्वरूप प्रणत जनका क्लेश दूर करने वाले और [illegible]मधुकैटभ को नाश करने वाले ऐसे आपको प्रणाम करता हूं ॥३३॥ [illegible] प्रकार स्तुति कर व्याकुल चितसे भोजनादिक [illegible]ड़ कर मरने का निश्चय किया ॥३४॥ इस प्रकार उन [illegible]लोगों का निश्चय देख करुणा पूर्ण होकर श्री मधुसूदन [illegible] भगवान स्वप्न मे दर्शन दिये ॥३५॥ हे समस्त मनुष्य गण [illegible] आप लोग सुनते जाईये । मैं बालिशा सरोवर में निमग्न हूं [illegible] आप लोग चिन्ता न करें ॥३६॥ मैं पहले ही बालाशा को वर [illegible] दिया था वह मै अन्यथा नहीं कर सकता क्यों की मैं सत्य संकल्प [illegible] हूं ॥३७॥ यह मैं उस से कहा था कि जब कलियुग आवेगा तब [illegible] सदाचार का निन्दा करने वाला पाखण्डी, बौद्ध, तथा जैन [illegible] आदिवलम्बी उत्पन्न होगा जब वे लोग यहां आवेगें तब

बौद्धाः पाखण्डिनो जैनाः समेष्यन्ति यदानघे ॥
तदाहं शिखरेरम्ये मन्दारे सुरपूजिते ॥३९॥
निजस्थाने पदंन्यस्य दक्षिणस्यां शुचिस्मिते ॥
वालिशानगरे वासं करिष्यामि निरन्तरम् ॥४०॥
सज्जनानां विनोदाय भक्ति सम्वर्द्धनायच ॥
सोऽयं काल समाजात स्तस्मात्खिन्नोऽस्मि भूधरे ॥४१॥
विषण्ण वदनो भूत्वा वालिशायाः सरोवरे ॥
निमग्नोऽस्मि जना सर्वे जानीत नान्यकारणम् ॥४२॥
यूयञ्चापि परित्यज्य मन्दारं पर्वतोत्तमम् ॥
नीत्वा मां वालिशाक्षेत्रे वासं कुर्वन्तु निर्भयाः ॥४३॥
अहमप्यागमिष्यामि निवसामि चिरम्पुनः
कलावन्ते गमिष्यामि मन्दार शिखरे पुनः ॥४४॥

है पाप रहिते ॥३८॥ मैं रामणीय तथा देवताओं से पूजित मनोहर मन्दार पर्वत को छोड़ कर अपना स्थान प[र] पाद न्यास कर दक्षिण दिशा में ॥३९॥ वालिशा नगर से सज्ज[न] लोके विनोदार्थ तथा भक्ति बढ़ाने के लिये निरन्तर वा[स] करूँगा ॥४०॥ वह काल अब उपस्थित हो गया इस लि[ये] मैं मन्दार पर्वत से खिन्न हूँ और मलीन मुख कर वालिश[ा] सरोवर में निमग्न हूँ और कोई कारण नहीं है आ[प] लोग भी मन्दार पर्वत को छोड़ कर ॥४१, ४[२॥] हमको वालिशा नगर पहुँचा कर आप लोग भी निर्भय [हो]

मर्य्यादां स्थापयिष्यामि सदाचारान्तथैव हि ॥
इत्युक्त्वा च ततोविष्णु रन्तर्ध्यानङ्गतस्ततः ॥४५॥
प्रभाते देवलाः सर्वे मन्थयित्वा सरोवरम् ॥
दृष्ट्वा तत्र जगन्नाथं माधवं मधुसूदनम् ॥४६॥
गृहीत्व त्वाति हर्षेण गमने कृत निश्चयाः
एहिनाथ कृपासिन्धो शरणागत वत्सल ॥
वालिशा नगरे वासं कुरुष्व कृपया विभोः ॥
पुनीहि कुलमस्माकम् वयन्ते शरणागताः ॥४८॥
निवसाहि त्वयः शाकं त्वमाज्ञादत्तवान् पुराः
इत्युक्त्वा देवलाः सर्वे गृहीताज्ञा ततो मुने ॥४९॥

कर वालिशः नगरमें वास करते जाइये मैं भी वहाँ पर आकर चिरकाल पर्य्यन्त वास करूंगा ॥४३॥ फिर कलियुगके अन्तमें मन्दार शिखर पर जाऊँगा वहाँ जाकर सदोचार तथा मर्य्यादा [स्]थापन करूंगा ॥४४॥ ऐसा कह कर श्री मधुसूदन भगवान [अ]न्तर्ध्यान हो गये अनन्तर प्रातः काल में देव पूजक लोक सरो-[व]र को मन्थन कर ॥४५॥ मन्थन करने पर श्री मधुसूदन भग-[व]ान उन लोगों को मिल गये तब वे लोग अत्यन्त हर्षसे माधव [श्र]ी मधुसूदन देवको लेकर वालिशा नगर जानेका निश्चय [क]िया ॥४६॥ पहिले इस प्रकार प्रार्थनाकी कि हे नाथ कृपा के [स]ागर शरणागत वतसल हे विभो आइये और वालिशः नगर मे [व]ास कर ॥४७॥ हम लोगोंका कुल पवित्र कीजिये हम लोग [आ]पके शरणागत हैं और आप पहिले ही आज्ञादेचुके हैं अतः

स्नापयित्वा ततो विष्णुं पूजयित्वा विभक्तितः ।
वीणा वाद्यादिके घोषै निर्नाय वालिशापुरीम् ॥५०॥
प्रतिष्ठां कृतवाँस्तत्र रुचिरे मन्दिरोत्तमे ॥
तदारभ्यैव देवेशो भगवान् मधुसूदनः ॥५१॥
निवासं कृतवाँस्तत्र यत्नतैः सुप्रतिष्ठितम् ॥
तदारभ्यैव विख्याता वालिशानगरी शुभा ॥५२॥
भुक्ति मुक्ति प्रदानार्थं यत्र सन्निहतो हरिः ॥

सूत उवाच

इतिते कथितं साधो वालिशानगरे यथा ॥५३॥
त्यक्त्वा मन्दारशिखरं ह्यावासं कृतवान् विभुः ॥
यइदं पठतेऽध्यायं पाठयेद्वापि भक्तितः ॥५४॥

इस लोक में आपके साथ निवास करेंगे ॥४८॥ ऐसा कह कर उनसे प्रसन्नता रूपी आज्ञा लेकर समस्त देव पूजक गण उन को भक्ति भावसे स्नानादिक तथा पूजनादिक कर ॥४९॥ वीणा आदि अनेक प्रकार का यन्त्रादिक बजाते हुये तथा विविध प्रकार का गान इत्यादिक करते हुये बहुत आनन्दसे वालिशापुरी लाये तथा सुन्दर मन्दिर में उनकी प्रतिष्ठाकी ॥५०॥ उसी दिन से श्री मधुसूदन भगवान वालिशा नगरमें वास करने लगे ॥५१॥ उसी दिनसे भोग तथा मोक्ष का देनेवाली वालिशा पुरी विख्यात हुई जहाँ पर मुक्ति भुक्ति को देनेवाले नित्य श्री मधुसूदन भगवान वास करते हैं ॥५२॥ सूत जी बोले हे शौनक मन्दार पर्वत को छोड़ कर जिस प्रकार श्री मधुसूदन देव वालि-

नतस्य दुःखदारिद्र्यं भविष्यति कदाचन ॥
राज्यार्थी लभते राज्यं कामार्थी लभते रतिम् ॥५५॥
विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥५६॥

शौनक उवाच

वद सूत महाभाग जैनधर्मं सविस्तरम् ॥
कश्चोत्पादयिता चास्य कीदृशन्तद्विगर्हितम् ॥१॥
यन्दृष्ट्वा त्यक्तवान् विष्णुर्मन्दारपर्वतोत्तमम् ॥
वालिशानगरे वासं कृतवान् मधुसूदनः ॥२॥

शा नगर आये सो मैंने आपसे कहा ॥५३॥ जो इस अध्यायका पाठ करेगा या भक्ति पूर्वक पाठ करावेगा उसको कदापि भी दुःख तथा दारिद्र्य व्याप्त नहीं करेगा ॥५४॥ राज्य की इच्छा करने वाले को राज्य प्राप्त होगा, कामार्थी काम से पूर्ति होगा, विद्यार्थी विद्या लाभ करेगा और मोक्षार्थी मोक्ष लाभ करेगा ॥५५॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे सूतशौनक सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये मन्दाराद्वालिशानगरे श्री मधुसूदनदेवस्यागमनं नामोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

शौनक जी बोले, हे महाभाग सूत जी सविस्तर जैनधर्म को कहिये। कौन इस धर्म का प्रवर्त्तक हुआ और कैसे यह धर्म निन्दनीय है ॥१॥ जिसको देखकर श्री विष्णु भगवान मन्दार पर्वत को छोड़कर वालिशा नगरमें श्री मधुसूदन के रूपमें

सूत उवाच

शृणु शौनक वक्ष्यामि जैन धर्म्मं सविस्तरम् ॥
यश्चोत्पादयिता चास्य तत्सर्वं कथयामहे ॥३॥
आसीत्पुरा महाराज ऋषभो भगवान् मुने ॥
मेरुदेव्यां समुत्पन्नो वीर्येणामितविक्रमः ॥४॥
गतिम्परम हंसाख्यां गृहीत्वा च ततो मुने ॥
देशे देशे च तद्धर्मं स्थापयामास वै विभुः ॥५॥
ब्रह्मावर्ते च कार्णाटे ततोऽन्येष्वपि वै मुने ॥
स्थापयामास तद्धर्मं यत्र जैनप्रतिष्ठितम् ॥६॥
ज्ञात्वा तस्य गतिं लोका स्तत्तद्देश निवासिनः ॥
त्यक्त्वा वेदस्य मर्य्यादां धारयामासुरुन्मतम् ॥७॥
अथ कार्णाटके देशे राजा परम धार्म्मिकः ॥
हरिनाथ इति ख्यातःक्षत्रियानाम्बलान्तकः ॥८॥

वास किये ॥२॥ सूत जी बोले, हे शौनक सविस्तर जैनधर्म्म मैं कहता हूं तथा जो इस धर्म्म को प्रचार किया सो भी मैं कहता हूं ॥३॥ हे महाराज पूर्व समय में मेरु देवी से उत्पन्न अमित पराक्रमी श्री ऋषभदेव हुये ॥४॥ वे परम हंस मार्ग को अवलम्बन कर देश देश में उस धर्म्म को फैलाया ॥५॥ ब्रह्मावर्त, कार्णाटक तथा अन्यान्य देश में भी उस धर्म्म को फैलाया ॥६॥ उस मार्ग को जानकर तत्तद्देश निवासी लोक ने मर्य्यादा को छोड़ कर उस मत को ग्रहण किया ॥७॥ अनन्तर कार्णाटक देश में परम धार्मिक क्षत्रियों का

तस्य सेनापति र्वृद्धो जीनो नाम महामतिः ॥
श्रुत्वा परम हंसाख्यं धर्म्मं यत्सुप्रतिष्ठितम् ॥९॥
ऋषभेण ततः साधो धारयामासु रोजसा ॥
कृत्वा स्वसंहितां सोऽपि वेद बाह्यरतो मुने ॥१०॥
देशाद्देशान्तरं गत्वा जैन धर्म्मं प्रदर्शयन् ॥
ऋषभेन समं सोऽपि तन्मार्गस्य प्रदर्शकः ॥११॥
बभूव भार्गवश्रेष्ठ नारकी वेद निन्दकः ॥
ऋषभस्य मतिं ज्ञात्वा जीनस्य संहितांस्वकाम् ॥१२॥
हरिनाथश्च राजर्षिः स्वस्मिन्देशे ततो मुने ॥
स्थापयामास तद्धर्मं गेहेगेहे जने जने ॥१३॥
तदारभ्यैव लोकेऽस्मिन् जैन मार्गं प्रवर्द्धते ॥
ऋषभेनसमं तेऽपि नरकास्तन्मार्ग दर्शकाः ॥१४॥

बलान्तक हरिनाथ नाम का राजा हुआ ॥८॥ उसका सेनापति वृद्ध जीन नाम का महा बुद्धिमान था। वह परम हंस मार्ग को सुन कर जैन धर्म्मों में प्रतिष्ठित है ॥९॥ हे साधो उस धर्म्म को ऋषभ देव से ग्रहण कर, वह भी वेद विरुद्ध जैन सम्प्रदाय का अपना संहिता बनाया ॥१०॥ अनन्तर जीन भी देश २ में जा २ कर ऋषभदेव के ऐसा अपना मार्ग फैलाया ॥११॥ हे भार्गवश्रेष्ठ शौनक वह नारकी वेद निन्दक जीन भी ऋषभ के ऐसा जैन धर्म्म का प्रवर्त्तक हुआ। ऋषभ की मति जान कर तथा जीन को संहिता देख ॥१२॥ वह हरिनाथ नाम। का राजर्षि अपना देश में जैन धर्म्म

निन्दन्ति वेद मर्य्यादां यज्ञादींश्च विशेषतः ॥
भुञ्जन्ति नयनकन्ते ज्वालयन्ति न दीपकम् ॥१५॥
न कुर्वन्ति सदारेऽपि भोजनं नष्ट मेधसः ॥
भुञ्जन्ति च द्विजो यान्ते संध्यायां खल मूर्त्तयः ॥१६॥
तेषाम्तद्व्यवहारञ्च दृष्ट्वाऽधर्म्म कदम्बकम् ॥
नास्तिका क्रान्त भुवनं भगवान् सत्य नन्दनः ॥१७॥
पराशरस्य वीर्य्येण सत्यवत्यां बभूवह ॥
व्यासो नाम महायोगी धर्म्म शास्त्र प्रवर्त्तकः ॥१८॥
स्वर्कोवेद तरोशाखां दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥
स्वसंहितायाम् भगवान् निर्णयामास तत्पुरा ॥१९॥

फैलायः ॥ घर २ में समस्त प्राणी में उसने मत फैलाया ॥१३॥ उसी दिन से लोक में जैन धर्म्म उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। ऋषभ देव ही के ऐसा जैन मार्ग का प्रदर्शक नग्न रहने लगे ॥१४॥ वेद मर्य्यादा की तथा विशेष रूप से यज्ञादि की निन्दा करने लगे॥ वे लोग रात्रि में भोजन नहीं करते हैं न तो रात्रि में दीपक जलाते हैं ॥१५॥ वे नष्ट बुद्धि वाले जैन स्त्री सहित रात्रि में भोजन नहीं करके केवल संध्या समय में वह खल जैन धर्म्मावलम्बी भोजन करता है ॥१६॥ उन नास्तिकों का वैसा व्यवहार देख तथा अधर्म्म समूह को देख कर तथा नास्तिकों से आक्रान्त संसार को देख सत्यवती को आनन्द बढ़ाने वाले ॥१७॥ पराशर के वीर्य्य से सत्यवती के गर्भसे उत्पन्न होकर धर्म्म शास्त्र का प्रवर्त्तक

जिनश्च जिनगेहश्च न द्रष्टव्यं कदाचन ॥
गतास्त्र ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण च शौनक ॥२०॥
दृष्ट्वा तत्संहितावाक्यं जैन मार्गं विगर्हितम् ॥
विनिन्दन्ति नरास्तत्तद् देशे देशेव धार्म्मिकाः ॥२१॥
पापिना जिनमार्गस्था नवोढां कामिनीं शुभाम् ॥
द्विरागमनकं कृत्वा प्रेषयन्ति जिनालये ॥२२॥
तत्रतु कन्यका बाला ह्येक रात्रिश्च तिष्ठति ॥
स्वयोनो पाश्वं लिङ्गञ्च स्पृष्ट्वा प्रातस्ततो मुने ॥२३॥
मन्दिरात्स्वगृहं गत्वा हर्षेण महता रतिम् ॥
स्वामिना कुरुते नित्यं गर्भार्थेव न संशयः ॥२४॥

व्यास नाम का महायोगी ॥१८॥ अल्प बुद्धि प्राणिगण को देख वेदरूपी वृक्ष का शाखा अपनी संहिता बनाकर अपनी संहिता में भगवान् व्यासदेव जी धर्म्म का निश्चय किया ॥१९॥ हे शौनक जिनका मुख तथा जिनका घर ब्राह्मण तथा गौ को विशेष रूप से नहीं देखना चाहिये ॥२०॥ उस संहिता में जैन धर्म्म निन्दनीय देख कर देश २ में धार्मिक लोक जैन धर्म्म की निन्दा करने लगे ॥२१॥ वह महापापी जैन धर्म्मावलम्बी गण नवीन विवाहिता स्त्री को द्विरागमन कर जैन का मन्दिर में पहिला रात्रि में भेजता है ॥२२॥ वहाँ पर वह नवीन बाला स्त्री जैनके समीप एक रात्रि उस मन्दिर में रहकर अपना योनि में जैनका लिङ्ग स्पर्श करके रहती है। प्रातःकाल में आनन्द से मन्दिर से निकल कर बहुत हर्ष के साथ अपना घर आकर रात्रि में स्वामी के साथ मैथुन

जिन मार्गे च द्वौ प्रोक्तौ वष्टविश्वक संज्ञकौ ॥
वष्ट कीर्तिश्च प्रोक्ता विश्वकीर्तिस्तथापरे ॥२५॥
पुन्नाद्यौजन्मरात्रौव रात्रौ जैनस्य सन्निधौ ॥
मन्दिरे स्थापयामास प्रात रानीय तास्पुनः ॥२६॥
वरेण बालिकोद्वाहं कुर्वन्ति जैन पूजका ॥
विवाहान्ते पुनर्बाला जातिर्वै जैन मन्दिरम् ॥२७॥
एकरात्रौ च तत्रैव तुष्टा तिष्ठति शोभना ॥
स्वयोनौ पार्श्वलिङ्गञ्च करोति स्पर्शनं मुदा ॥२८॥
प्रातःकाले पुनर्बाला गृहमागत्य स्वामिनम् ॥
रमनं कुरुते नित्यं देवमाया विमोहिता ॥२९॥
नग्नः यतिर्यद्गेहं समायाति ऋषीश्वर ॥
यतिलिङ्गञ्च तानार्यो सेवां वाद्यादिभिस्तनः ॥३०॥

करती है ॥२३,२४॥ जिन मार्ग दो हैं, वष्ट और विश्व नाम से प्रसिद्ध है, यह मैं वष्ट मार्गीयों का कीर्ति तथा अब मैं विश्वसंज्ञकी कहते हैं ॥२५॥ स्त्री पुरुष की जन्म पत्री मन्दिर में भेजी जाती है। फिर प्रातः कालमें वह जन्मपत्री लाकर ॥२६॥ जैन पूजक लोक वर के साथ बालिका को विवाह कराते हैं। विवाह के अन्तमें फिर वह नवीना बाला स्त्री जैन के मन्दिर जाती है ॥२७॥ एक रात्रि वहाँ पर मन्दिर में वह बाला स्त्री आनन्द के साथ रहती है। फिर रात्रि में अपने योनी में वह जैन का लिङ्ग देकर आनन्द पूर्वक स्पर्श करती है ॥२८॥ प्रातः कालमें वह स्त्री अपने स्वामी के साथ देव माया से युक्त होकर मैथुनादिक क्रिया करतीहै ॥२९॥

पूजयन्ति च कामिन्यः सर्वाभरण भूषिताः ॥
पतित्वं लभते कामी तस्या भाग्य महोदयम् ॥३१॥
भवेच्छीघ्रञ्च लोकेऽस्मिन् किमनिन्द्यमतः परम् ॥
इति ते कथितं साधो जैन धर्म विगर्हितम् ॥३२ ॥
यद्दृष्ट्वा भगवान् विष्णुस्त्यक्त्वा मन्दार भूधरम् ॥
बालिशा नगरे वासं कृतवान् मधुसूदनः ॥३३॥

हे ऋषीश्वर नग्न यति जिस स्त्री के पास घर आता है, तब वह स्त्री गण अनेक आयोजन के साथ यति के लिङ्ग को ॥३०॥ अनेक प्रकार के अलङ्करणादिक पहिर कर स्त्री लिङ्ग का बहुत आनन्द के साथ पूजन करती है ॥३१॥ जिसको कामी स्वामी मिलता है ॥ वह अपना महान् भाग्योदय समझती है। इस लोक में बहुत शीघ्र भाग्योदय होता है। इससे बढ़कर और निन्दनीय क्या होगा ॥३२॥ हे साधो जैन धर्म जैसा निन्दनीय है सो मैं आपको कहा। जिस को देख कर सुन्दर मन्दार पर्वतको छोड़ कर बालिशा नगर में आकर श्री मधुसूदन भगवान वास किया ॥३३॥ वहाँ पर ऐसा इतिहास है कि जिस स्त्री के घर पर नग्न यति अर्थात् सन्यासी जाता है वह उस सन्यासी के लिङ्ग को बहुत उत्साहके साथ पकड़ कर पूजन किया करती है और अपना बहुत भाग्य समझती है ऐसा प्रवाद है।

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे बृहद्विष्णु पुराणान्तर्गते [illegible] शौनक सम्वादे मन्दार माहात्म्ये जैन धर्म कथनन्नाम [illegible]ऽध्यायः ॥३०॥

शौनक उवाच

श्रुतश्च त्वन्मुखात्सूत्यो जैनधर्मं सविस्तरम् ॥
इदानीं श्रोतु मिच्छामि वनान्युपवनानि च ॥१॥
यानि सन्तीह मन्दारे तानिनो वद विस्तरात् ॥

सूत उवाच

शृणु शौनक वक्ष्यामि वनान्युपवनानि च ॥२॥
यानि सन्तीह मन्दारे पावनानि मनीषिणाम् ॥
प्राच्यां मन्दारतो श्रीमन् रेणुका वदर्यावनम् ॥३॥
नानापुष्पलता कीर्णं शोभनं सर्वतो दिशम् ।
यत्र तिष्ठति कल्याणी कामधेनुः सुरेश्वरी ॥४॥
पूजनात्स्मरणात्तस्याः पापराशि र्विनश्यति ॥
सर्वान् कामान वाप्नोति चान्तेगोलोकमाव्रजेत् ॥५॥

शौनक जी बोले, आपके मुख से सविस्तर जैन धर्म मैंने सुना । सम्प्रति मन्दार में जितने वन तथा उपवन हैं उनका महत्वपूर्ण वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ सो कृपा कर कहिये ॥१॥ सूत बोले, हे शौनक मन्दार में जितने वन तथा उपवन हैं जिसके दर्शन से पण्डित गण भी पवित्र हो जाते हैं, वैसा पात्र वन मैं कहता हूँ आप सुनिये ॥२॥ हे श्रीमन् मन्दार से पूर्व दिशा में रेणुका वदरी वन बहुत पवित्र है ॥३॥ अनेक प्रकार की लताओं तथा पुष्पों से आक्रान्त वह वन है। वहाँ पर प्राणि गण का कल्याण करने वाली देवता मूर्ति कामधेनु वर्त्तमान हैं ॥४॥

ध्यानन्तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ।
पुष्पमेकं गृहीत्वा च बद्धाञ्जलिपुटस्ततः ॥६॥
ध्यायेत्तां भक्ति भावेन कामधेनुं सुरेश्वरीम् ॥
वन्दितासि वशिष्ठेन विश्वामित्रेण धेनुः ॥७॥
तद्देवी हरमे पापं कामधेनो नमोऽस्तुते ॥
कार्त्तिकस्य शितिपक्षे चाष्टम्यां मुनिसत्तम ॥
पूजनाद् भक्तिभावेन सर्वान् कामान वाप्नुयात् ॥८॥
कामदोऽपि शिवस्तत्र कान्तानाथश्च राजते ।
भक्ता भीष्टप्रदाराजन् भुक्ति मुक्ति प्रदायकः ॥९॥
श्रावणे च शिते पक्षे चतुर्दश्यान्नृपोत्तम ॥
कोमलैर्बिल्वपत्रैश्च दूर्वा पुष्पादिकैस्तथा ॥१०॥

जिसका पूजन तथा स्मरण मात्र से प्राणी गण का पाप समूह नष्ट हो जाता है तथा समस्त कामना सिद्ध होकर अन्त में गोलोक प्राप्ति होता है ।५॥ उनका मैं ध्यान कहता हूँ जिससे सुख प्राप्ति होगा ॥ एक फूल लेकर हाथ जोड़ कर ध्यान करके ।६॥ भक्ति भावसे इस प्रकार ध्यान करे, हे धेनो आप वशिष्ठ से तथा विश्वामित्रादिक से वन्दनीया हैं इस हेतु हे देवि मेरे पाप को दूर कीजिये आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥७॥ हे ऋषिसत्तम कार्त्तिक मास शुक्ल पक्ष अष्टमी तिथि को भक्ति भाव से जो कोई पूजा करते हैं । सो सम्पूर्ण कामना से पूर्ण होता है ॥८॥ हे राजा परीक्षित वहां पर भोग मोक्ष के देने वाले कान्तानाथ नामसे प्रसिद्ध शङ्कर भगवान भी हैं ॥९॥

कान्तानाथं शिवं यश्च पूजयेद् भक्ति भावतः ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति चान्ते शैवपुरम्व्रजेत् ॥११॥
तत्राहित त्वाम्बिका देवी शम्भोरर्द्धाङ्ग वासिनी ॥
नाशिनी शत्रु संघानां सर्व विघ्न विनाशिनी ॥१२॥
यश्चैनां पूजयेद् भक्त्या ह्यागमोक्तेन वर्त्मना ॥
न तस्य दुःखदारिद्र्यं भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥१३॥
तत्स्थानात् दक्षिणे भागे गुह्यं किमपिकाननम् ॥
यत्र साक्षान्महामाया महिषा सुरमर्द्दिनी ॥१४॥
दुर्गा देवीति विख्याता विष्णोः प्रीतिविवर्द्धिनी ।
दक्षिणाभि मुखीदेवी प्रसन्नास्या चतुर्भुजा ॥१५॥

श्रावण मास शुक्ल पक्ष चतुर्दशी तिथि में जो कोई कोमल बेलपत्र तथा दुर्वा पुष्पादिक से इनका भक्ति भाव से पूजन करता है उनको कान्तानाथ शङ्कर भगवान की कृपा से सम्पूर्ण मनोरथ से पूर्ण होकर अन्त में शिव लोक प्राप्त होता है ॥९,१०,११॥ वहाँ पर शङ्कर भगवान की अर्द्धाङ्गिनी श्री अम्बिका देवी हैं वह शत्रुसंघ को नाश करने वाली तथा समस्त विघ्न को नाश करने वाली है ॥१२॥ जो कोई इनका तन्त्र मार्गसे पूजा करता है उसको जन्म २ में दुःख तथा दारिद्र्य नहीं व्याप्त करता है ॥१३॥ उस स्थान से दक्षिण दिशा में अव्यक्त कोई वन है वहां पर साक्षात् महिषासुरमर्द्दिनी भगवती हैं दुर्गा देवी नामसे प्रसिद्ध श्री विष्णु भगवान से प्रेम बढ़ाने वाली चतुर्भुजा प्रसन्नवदना दक्षिणाभि मुखी वर्त्तमान हैं ॥१४,१५॥

सर्वैश्वर्यप्रदात्रीच सर्वविघ्नौघ हारिणी ॥
तारिणी सर्व लोकानां दैत्यसंघ विदारिणी ॥१६॥
हारिणी दुःख दारिद्र्यं सर्वमङ्गल कारिणी ॥
यश्चैतां पूजयेद्भक्त्या ह्यागमोक्तेन वर्त्मना ॥१७॥
सर्वान् कामान वाप्नोति चण्डिकायाः प्रसादतः ॥
मन्दाराद्दक्षिणे भागे मालूरं वनमुत्तमम् ॥१८॥
यत्रशासयिता देवो धर्म्म राजः प्रतापवान् ॥
प्रच्छन्न भावमाश्रित्य गुण दोषौ विविच्य च ॥१९॥
शास्यते सर्वलोकांश्च मन्दारेशस्य चाज्ञया ॥
मन्दारात्पश्चिमे भागे माधवं वनमुत्तमम् ॥२०॥

समस्त सम्पत्ति को देने वाली तथा समस्त विघ्न को हरण करने वाली तथा समस्त लोक को तारण करने वाली तथा दैत्य समूह को विदारण करने वाली ॥१६॥ दुःख दारिद्र्य को नाश करने वाली समस्त मङ्गल को देने वाली हैं ॥१६॥ जो इनका तन्त्रोक्त मार्ग से पूजन करता है ॥१७॥ उन्हें समस्त कामना श्री चण्डिका देवी के प्रसाद से पूर्ण होता है । मन्दार से दक्षिण भाग में मालूर वन है ॥१८॥ वहां पर शासन कर्ता महा प्रतापी धर्मराज हैं ॥ प्रच्छन्न भाव से गुण दोष विचार कर श्री मन्दारेश मधुसूदन की कृपा से समस्त लोक को शासन करते हैं । मन्दार से पश्चिम भाग में माधव वन है ॥१९,२०॥ जहां पर विहार के लिये साक्षात्

यत्र साक्षाद्विहारार्थं माधवो मधुसूदनः ॥
प्रच्छन्न भावमाश्रित्य रमया सहमोदते ॥२१॥
यदाज्ञासर्वे देवाश्च वृक्षभूतादिसर्वदा ॥
शुश्रूषार्थंश्चतिष्ठन्ति फलपुष्प समन्विताः ॥२२॥
तद्वनालोकनात्तस्यो माधवे जायते रतिम् ॥
मन्दारस्योत्तरे भागे भारतीवन मुत्तमम् ॥२३॥
भारत्यास्तत्रतिष्ठन्ति पादपा नतकन्धराः ॥
फलपुष्पलताकीर्णा नयनानन्द वर्द्धनाः ॥२४॥
तद्वनालोकनात्तस्यो मूर्खत्वञ्च विनश्यति ॥
अल्पायासेन राजेन्द्र मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥२५॥
अहो विचित्रं खलु भारतीवनं ।
मनोहरे श्चारु सुचारुपङ्कजैम् ॥
विभूषितंपुष्पलतादिसङ्कुलं ।
विधूष्यं मानं भ्रमरै रहर्निशम् ॥२६॥

श्री मधुसूदन भगवान गुप्त भाव से लक्ष्मीजी के साथ आमोद करते हैं ॥२१॥ जिनके आज्ञा से देवता लोक वृक्ष भाव से फल पुष्प युक्त होकर उनकी शुश्रूषा के लिये वर्त्तमान हैं ॥२२॥ उस वन का अवलोकन मात्र से श्री भगवान में प्रेम बढ़ता है ॥ मन्दार से उत्तर दिशा में भारती वन है ॥२३॥ वहाँ पर फल तथा पुष्प से युक्त नेत्र को आनन्द देने वाला भारती वृक्ष भारती की शुश्रूषार्थ वर्त्तमान हैं ॥२४॥ उस भारती वन का दर्शन मात्र से मूर्खत्व नष्ट हो जाता है ॥ हे राजेन्द्र थोड़ा " परिश्रम से वहाँ पर मन्त्र

जातीजपाबकुलमालति केतकीभिः ।
श्रृङ्गार हार करवीरसचम्पकाद्यैः ॥
अन्यैर्वनोद्भवमनोहर चारुपुष्पै ।
र्मन्दानिलैस्सहसुवासित मद्भुतन्तत ॥२७॥
कदम्बकङ्कोल कपित्थकोमलै ।
रशोकचूतादिहरीतकीद्रुमैः ।
विभीत की चामलकी समेतैः ।
सुसेवितश्चारुसकन्दरम्वनम् ॥२८॥
सहंसकारण्ड मयूर सारसै ।
सुकोमलैः कीरसुधीरकोकिलैः ॥
मनोहरैश्चारुचकोरचञ्चलैः ।
सुसेवितन्तद्वनमद्भुतम्मुने ॥२९॥

की सिद्ध होता है ॥२५॥ अहा! कैसा यह विचित्र भारती वन है जहाँ पर मनोहर सुन्दर कमल पुष्प तथा सुन्दर पुष्प लतादिक से सम्पन्न अहर्निशि भ्रमर से शब्दायमान है ॥२६॥ जहाँ पर जाती बांदुल, बकुल, मालती, केतिकी, श्रृङ्गारहार, करवीर, चम्पा तथा अन्यान्य भी सामयिक विविध प्रकार का मनोहर पुष्प से तथा मन्द २ वायु से सुगन्धित यह भारती वन है ॥२७॥ यहाँ पर कदम्ब, कङ्कोल कथ तथा कोमल अशोक आम्र आदि हरितकी विभीतकी आमला अर्थात् धात्री आदि वृक्ष से तथा सुन्दर कन्दरा से युक्त कैसा शोभायमान यह भारती वन है ॥२८॥ हे मुने जिस वन में हंस करण्ड,

हंसपादोऽपितत्रैव वर्त्तते तीर्थं मुत्तमम् ।
दर्शनात्पूजनात्तस्य प्रसन्नाहंसवाहिनी ॥३०॥
भविष्यति न सन्देहो भारती वचनं यथा ॥
इशाने भृङ्ग राजञ्चवनस्परमशोभनम् ॥३१॥
दर्शनात्तस्य नीरूज्यं प्राप्नुवन्ति नरा भुवि ।
अवाच्यान्तस्य विप्रेन्द्राः कौवेर्यां कामधेनुतः ॥३२॥
कमला वनमाख्यातं शोभनं सर्वतो दिशम् ॥
दर्शनाद्यस्य कमला गृहे तिष्ठति सर्वदा ॥३३॥

मयूर सारस से तथा सुन्दर सूगा तथा सुन्दर धीर शब्द वाले कोयल से मनोहर सुन्दर चञ्चल चकोर से सेवित फैला विचित्र यह भारती वन है ॥२९॥ वहाँ पर उत्तम एक हंस पाद नाम का तीर्थ है जिसका दर्शन तथा पूजन से हंस वाहिनी श्री सरस्वती देवी प्रसन्न होती हैं ॥३०॥ इसमें संशय नहीं मन्दार से ईशान कोण में भृङ्ग राज नाम का वन है उसके दर्शन से प्राणी आरोग्य लाभ करता है ॥३१॥ हे विप्रेन्द्र भृङ्गराज वन से दक्षिण कामधेनु से उत्तर कमलावन है उस परम सुन्दर कमला वन के दर्शन से कमला नित्य गृह में वास करती है ॥३२,३३॥ सूत जी बोले

॥ सूत उवाच ॥
इति संक्षेपतः धीमन् वन संख्यान मेवच ॥
कथितञ्च मया तुभ्यं किमन्यच्छ्रोतु मिच्छसि ॥३४॥

शौनक उवाच
श्रुतञ्च त्वन्मुखात्तात मन्दारस्यच वैभवम् ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि पूजनं परमात्मनः ॥१॥
मधुसूदन देवस्य भक्ताभीष्ट प्रदस्यच ॥
कथयस्व महाधीमन् परङ्कौतूहलस्य च ॥२॥
सूत उवाच
सम्यक् पृष्टन्त्वया साधो पूजनं परमात्मनः ॥
मधुसूदन देवस्य भुक्ति मुक्ति फलप्रदम् ॥३॥

हे शौनक यह मैं संक्षेप रुप से वन की संख्या कही और दूसरा क्या सुनना चाहते हैं ॥३४॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे बृहद्विष्णु पुराणान्तर्गते सूत शौनक सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये मन्दारेवनोपवन वर्णनन्नामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

शौनक जी बोले, हे सूत जी आपका मुख से मन्दार का माहात्म्य मैंने सुना। सम्प्रति भक्तोंका परमात्मा अभीष्ट सिद्धि करने वाले श्री मधुसुदन देव जी का पूजन हमें सुनने की इच्छा हैं सो हे धीमन् कृपा कर कहिये ॥ हमें परम उत्कण्ठा है ॥१,२॥ सूत जी बोले, हे शौनक योग

कोऽस्य पूजयितुं शक्तो यस्य रूपमगोचरम् ॥
यत्र ब्रह्मादयोदेवा मुह्यन्ते तत्र का गतिः ॥४॥
मनुष्याणाञ्च विप्रेन्द्र मायामोहित चेतसाम् ॥
तथापि कथयिष्यामि यथोक्तं शास्त्रकोविदैः ॥५॥
पूजाधिकारिणः सर्वे ब्रह्मक्षत्र विशस्ततः ।
अन्येषां दर्शनभक्त्या तेषां नामानु कीर्त्तनात् ॥६॥
पूजयेन्मन्त्रराजेन सूक्तेन पुरुषस्य च ।
द्वादशाक्षर मन्त्रेण यत्रवा जायते रुचिः ॥७॥
पूर्वस्मिन्दिवसे साधो नखलोमादिकृन्तनम् ॥
कृत्वा स्नानादि कर्मपश्चात् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥८॥

मोक्ष को देनेवाला परमात्मा श्री मधुसूदन देव जी का पूजन परम पवित्र आपने पूछा ॥३॥ जिन का रूप अगोचर है जिनका चरित्र देख ब्रह्मादिक देवता भी मोहको प्राप्त करते हैं ऐसे परमात्मा श्री मधुसूदन देव जी का पूजन देवता भी नहीं कर सकते हैं ॥४॥ तब मायासे मोहित मनुष्यादिक की क्या गति है ॥ तौ भी जैसा शास्त्रकारों ने लिखा है वैसा मैं कहता हूं ॥५॥ पूजाधिकारी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हैं अन्य वर्ण केवल उनके दर्शन तथा नाम के अनुकीर्त्तन कर सकता है ॥६॥ पूजा मन्त्र राज से अथवा पुरुष सूक्त से अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र से जिसमें अपना प्रेम हो उससे पूजा करनी चाहिये ॥७॥ पहला दिन नख लोमादिक कटवा कर शास्त्र में कहा हुआ मार्ग से स्नानादिक करे ॥८॥

श्री मधुसूदनदेव जी

नियमानाचरेत्तत्र जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥
एकभुक्तादिकं कृत्वा हरे र्ध्यानपरायणः ॥९॥
अन्यस्मिन् दिवसे साधो पूर्ववृत्तेन वर्त्मना ॥
नित्यकृत्यादिकं कृत्वा शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः ॥१०॥
भूतशुध्यादिकं कृत्वा हरे र्ध्यानैक तत्परः ॥११॥
आवाह्यचिन्तयेद्देवं बहिः संस्थित मात्मनः ॥
रत्नसिंहासनन्दत्वा तत्रासीनं विचिन्तयेत् ॥
पादपद्मद्वले दद्यात् पाद्यंश्यामाक पङ्कजैः ॥१२॥
दूर्वापराजिताभ्याञ्च संस्कृतं मूलमन्त्रतः ॥
सौवर्णे राजतेवापि ताम्रेवा शंख एवच ॥१३॥
अर्घ्यं संस्कृत्य विधिना वारिचन्दन पुष्पकैः ॥
यवदुर्वा कुशाग्रैश्च फलसिद्धार्थकैस्तिलैः ॥१४॥

क्रोध तथा इन्द्रिय को जीतकर नियम करे भगवान का ध्यान में परायण होकर एक भुक्तादिक कर ॥९॥ दूसरा दिन पहिले कहा हुआ मार्ग से स्नानादि कर नित्यकृत्य समाप्त करके शुचि होकर ॥१०॥ भगवानके ध्यान में तत्पर हो भूत शुद्धि कर आत्मा से बाहर आवाहन करे ॥११॥ सोना के सिंहासन पर बैठे हुये ध्यान करे तब श्यामाक तथा कमल सहित पादरूपी कमल में पाद्यार्थ जल देवे ॥१२॥ मूलमन्त्र से संस्कृत दुर्वा तथा अपराजिता पुष्प मिश्रित सोना के तथा चांदी के शंखपात्र में लेकर ॥१३॥ चन्दन तथा जल संस्कृत कर अर्घ्य देवे ॥ जव तथा दुर्वा तथा कुशके अग्रभाग

दुर्वा कुशाग्रे देवस्य मूर्ध्नि सिञ्चेत्तदग्रतः ॥
सावशेषं क्षिपेद्भूमौ वैपोऽर्घविधिरीरितः ॥१५॥
जातीफलैर्वा कङ्कोलैर् लवङ्गैः संस्कृतं जलम् ॥
दद्यादाचमनीयार्थं मधुपर्कं ततो ददेत् ॥१६॥
मधुसर्पिर्युतं गव्यां दधिकांस्येहि निर्मले ॥
पात्रे स्थितञ्च पिहितं पात्रेणान्येन तादृशा ॥१७॥
सुसंस्कृतं फलयुतं स्नापने जलमुच्यते ॥
पट्टकौशेय कार्पास निर्मिते वाससी शुभे ॥१८॥
यथाशक्ति प्रदेयैव वित्तसाठ्यं न कारयेत् ॥
हार केयूर मुकुट ग्रैवेयादिक भूषणम् ॥१९॥
यथाशक्ति यथास्थानं देवस्याग्रे निवेदयेत् ।
उपवीतं हरेर्दद्यात् पट्टसूत्रविनिर्मितम् ॥२०॥

से तिल मिश्रित से ॥१४॥ श्री भगवान के मस्तक को सि… करे उस में बचा हुआ जल भूमि में गिरावे यही अर्घ वि… शास्त्र वेत्ताओं ने कहा है ॥१५॥ जाती फल कङ्कोल लवङ्ग … संस्कृत कर आचमन के लिये देवे अनन्तर मधुपर्क देवे ॥१६॥ अनन्तर एक कांस्य पात्र में मधु गोघृत दधि निर्मल … जलादिक संस्कृत कर स्नान के लिये देय ॥१७॥ पट्ट वस्त्र … कौशेय अथवा कार्पास निर्मित वस्त्र जितनी शक्ति हो … वस्त्र देवे वित्त शाठ्य नहीं करना चाहिये ॥१८॥ हार के… मुकुट ग्रैवेय आदि भूषण यथा शक्ति देना चाहिये … यज्ञोपवीत पट्ट सूत्र से निर्मित अथवा कपास का …

कार्पाशमथवा वित्र गन्धचन्दन संयुतम् ॥
चन्द्र चन्दन कस्तूरी कुङ्कुमैरनुलेपनम् ॥२१॥
तुलसीदल मालाश्च जाती चम्पक पङ्कजैः ॥
अशोककह्लार पुन्नागैर् नागकेशर केशरैः ॥२२॥
अन्यैः सुगन्धैः कुसुमैर् माल्यं मालामथापि वा ॥
मुक्तकानि च पुष्पाणि दद्याद्देवस्य मूर्धनि ॥२३॥
मालामापपदोनान्तु माल्यं कण्ठादूरु सम्मितम् ।
गर्भांके केशमध्ये च मूर्ध्नि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥२४॥
गुग्गुल्वगरुसीर सिताज्य मधुचन्दनैः ॥
धूपं दद्यात्सुगन्धाढ्यं दीपं गोसर्पिषा शुभम् ॥२५॥
कर्पूर गर्भयावर्त्या तिलतैलेन वा ददेत् ॥
अखण्डित समुद्धौतं शालि तण्डुल निर्मितम् ॥२६॥

युत कर देना चाहिये ॥२०॥ श्रीखण्डत कस्तूरी आदि से युत अनुलेपन देवे ॥२१॥ तुलसीदल की माला जाती चम्पा कमल अशोक पुन्नाग नागकेशर तथा अन्यान्य भी ऋतूद्भव सुगन्धित पुष्प से माला निर्माण कर देनी चाहिये ॥२२॥ और केवल पुष्प मस्तक पर देवे ॥२३॥ माला कण्ठ से लेकर उरु पर्यन्त देना चाहिये मस्तक पर गर्भांक से पुष्पाञ्जली देवे ॥२४॥ गुग्गुल अगर उशीर सिता घृत मधु चन्दन मिलाकर सुगन्धित धूप देवे तथा गो घृत का दीप देना चाहिये ॥२५॥ अथवा कर्पूर गर्भवर्ती तिल तैल से आहुती को अखण्ड स्वच्छ सालि तण्डुल से निर्मित सुगन्ध

सुपक्कमन्नं सुरभि सर्पिषाच सुवासितम् ॥
क्षीरमैयदधिक्षीरं पक्वरम्भा सितायुतम् ॥२७॥
नानाव्यञ्जन संकीर्णं सोपदंशं सुपूपकम् ॥
नानाफल युतंहृद्यं सुगन्धं सुरसं नवम् ॥२८॥
नैवेद्यं देवदेवस्य प्रस्थान्यूनं न शस्यते ॥
धूपेदीपेच नैवेद्ये स्नानेऽर्घ्ये मधुपर्कके ॥२९॥
वस्त्रे यज्ञो पवीतेच दद्यादाचमनीयकम् ॥
अन्यत्र केवलं वारि संस्कृतत्वौपचारिकम् ॥३०॥
नैवेद्यान्ते त्वाचमनं दद्याच्च करशुद्धिकम् ॥
सगन्धचन्दनं विप्राः ताम्बूलञ्च ददेत्ततः ॥३१॥
सकर्पूरलवङ्गैला जाति कङ्कुकसंयुतम् ॥
अष्टोत्तरशतं जपत्वा मूल मन्त्रमनन्यधीः ॥३२॥

युक्त घृत से परिपक्व सुवासित नैवेद्य देना चाहिये ॥२६॥ गायका दही तथा दुग्ध पका हुआ केला चीनी में मिलाया हुआ ॥२७॥ अनेक व्यञ्जन से युक्त उपदंश सुन्दर अपूप नानाफल तथा हृदय को सुखदेने वाला सुगन्धित सरस नवीन ॥२८॥ नैवेद्य एकपसेरी से कम नहीं देना चाहिये । धूप-दीप-नैवेद्य स्नान अर्घ्य मधुपर्क वस्त्र-यज्ञोपवीत देने के पश्चात आचमनी देना चाहिये ॥२९॥ अन्यत्र केवल जलमात्र संस्कृत कर देना चाहिये ॥३०॥ नैवेद्य के अन्त में हाथ से आचमन देना चाहिये गन्ध युक्त ताम्बूल देना चाहिये ॥३१॥ अनन्तर अष्टोत्तर शत जप कर प्रदक्षिण करे ॥३२॥ अनन्तर

स्तुत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा प्रार्थयेत्पुरुषोत्तमम् ॥
देवदेव जगन्नाथ सर्व तीर्थ प्रवर्त्तक ॥३३॥
सर्व तीर्थमयश्चासि सर्वदेवमय प्रभोः ॥
प्रसीद कमला कान्त मधुसूदन ते नमः ॥३४॥
इत्थं प्रपूज्य देवेशं नारायण मनामयम् ॥
गवांकोटि सहस्रस्य क्रतुकोटि शतस्य च ॥३५॥
यत् पुण्यं कर्म्मिणा प्रोक्तं तदनेनहि लभ्यते ॥
क्रन्दन्ति सर्वे पापानि सम्भ्रान्ताः सर्वपातकाः ॥३६॥
यमोऽपि भीतस्तन्दृष्ट्वा प्रणिपत्य प्रपूजयन् ॥
न शक्नोति यदाऽस्थातु तस्याग्रे पुण्य कर्म्मिणः ॥
किंकरास्तस्य देवाश्च सदा कल्याण तत्पराः ॥३८॥

प्रार्थना करें हे देवादेव, हे जगन्नाथ हे समस्त तीर्थ प्रवर्त्तक हे सर्वतीर्थमय ,हे सर्वदेवमय, हे कमलाकान्त हे मधुसूदन, आपको प्रणाम करता हूँ आपप्रसन्न हों ॥ ३३,३४ ॥ इस प्रकार श्री मधुसूदन देव जी का पूजन कर कोटि-गोदान कोटिशत यज्ञ का फल तथा कोटि ब्राह्मण भोजन और कोटि महादान से जो फल प्राप्त होता है कर्म्म के करने वाले जो फल लिखा है सो सब इसी से प्राप्त होता है ॥३५॥३६॥ जो कोई भक्ति भाव से श्री मधुसूदन देव जी का पूजन करता है उस को देख कर समस्त पाप रोने लगता है और जितने पाप हैं सो सब सम्भ्रम के साथ रोने लगते हैं । यमराज भी उस को देख कर प्रणाम तथा प्रकर्ष रूप से पूजन कर ॥३७॥ उस के

इति ते कथितं साधो पूजोपक्रम मुत्तमम् ॥
मधुसूदनदेवस्य सर्वाभीष्ट प्रदस्य च ॥३९॥
इदानींकथयिष्यामि मन्त्रपूर्वेन कर्म्मणा ॥
पूजनं देवदेवस्य चतुर्वर्ग प्रदायकम् ॥४०॥

सूत उवाच

पुष्पमेकं गृहीत्वाच देवस्य पुरतो मुने ॥
बद्धाञ्जलि पुरोभूत्वा ध्यायेच्छ्रो मधुसूदनम् ॥१॥
ॐ अमृतार्णव मध्यस्थ मिन्द्रनील मणिप्रभम् ॥
शंख चक्र गदा पद्म धारिणं दैत्यसूदनम् ॥२॥

समक्ष में रह नहीं सकता है। वैसे पुण्य कर्मियों को देखकर देवत लोक उसके कल्याण में तत्पर हो किङ्कर के ऐसा परिचारक हो जाते ॥३८॥ सूत जी शौनक से कहते हैं हे साधो सर्वाभीष्ट को देने वाले श्री मधुसूदन देव जी की पूजा का क्रम कहा ॥३९॥ सम्प्रति चारों पदार्थ को देने वाला मन्त्र पूर्वक श्री मधुसूदन देव जी का पूजन कहता हूं ।४०॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे सूत शौनक सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये श्री मधुसूदन देवस्य पूजोप क्रम कथन न्नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

सूत जी बोले हे शौनक हाथ में एक फूल लेकर श्री मधुसूदन भगवान के आगे जाकर हाथ जोड़ कर ॐ अमृतार्णव

समस्त कामदं श्यामं योगमाया समावृतम् ॥
नाना विधि हरणस्वन्देऽहं मधुसूदनम् ॥३॥ इतिध्यानम् ॥
सुमेरोः पादपीठन्ते पद्म कल्पित मासनम् ॥
सर्व सत्वहितार्थाय तिष्ठत्वं मधुसूदन ॥४॥ इत्यासनम्॥
सुपाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन ॥
विष्णोः कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन ॥५॥ इतिपाद्यम् ॥
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय पुरानिर्म्मितवाञ्जलम् ॥
गृहाणार्घ्यं मयादत्तं प्रसीद मधुसूदन ॥६॥ इत्यर्घ्यम् ॥
मन्दाकिन्यास्तु ते वारि जयपाप हरं शुभम् ॥
गृहाणाचमनीयं त्वं प्रसीद मधुसूदन ॥७॥ इत्याचमनम् ॥
मधुपर्कंमहादेव ब्रह्माद्यैः परिकल्पितम् ॥
मया निवेदित भक्त्या गृहाण मधुसूदन ॥८॥ इतिमधुप०॥
स्नानार्थं ते प्रदास्यामि निर्मलं सुजलम्भमो ॥
स्नापयस्व जगन्नाथ प्रसीद मधुसूदन ॥९॥ इतिस्नानम्

…ध्यस्थ मित्यादि मन्त्र से ध्यान करें ॥१॥२॥३॥ आसन लेकर "सुमेरोः पादपीठन्ते इत्यादि मन्त्र से आसन देना चाहिये ॥४॥ …थ में जल लेकर ! सुपाद्यमित्यादि मन्त्र से पाद्य …ना चाहिये ॥५॥ फिर जल लेकर त्रैलोक्यस्य हितार्थाय इस …न्त्र से अर्घ देना चाहिये ॥६॥ फिर जल लेकर "मन्दा किन्या-…स्तु ते वारि" इत्यादि मन्त्र से आचमन करावे ॥७॥ …मधुपर्कं महदेव' इत्यादि मन्त्र से मधुपर्क देवे ॥८॥ फिर

देव वस्त्रं समायुक्तं स्वर्णवर्ण विभूषितम् ॥
वस्त्रं ददामि देवेश प्रसीद मधुसूदन ॥१०॥ इतिवस्त्रम् ॥
ऋग्वेदादिषु मन्त्रेण शोधितं पद्मयोनिना ॥
सावित्री ग्रन्थसंयुक्त सुपर्वाण सयाक्षरम् ॥११॥
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण मधुसूदन ॥ इतियज्ञोप०
यदङ्ग स्पर्शिमरुतः सङ्क्रान्मलय जद्रुमाः ॥१२॥
सुगन्ध रस सम्पन्ना स्तस्मै गन्धानुलेपनम् ॥
प्रीयते कमला कान्त गृहाण मधुसूदन ॥१३॥ इतिचन्दनम्
पुष्पं नाना विधंदेव त्वदर्थं सञ्चितं मया ॥
प्रीत्या गृहाणदेवेश प्रसीद मधुसूदन ॥१४॥ इति पुष्प
दीव्यवर्णं समायुक्तं वह्निसानु समन्वितम् ॥
अलङ्कारम्प्रदास्यामि गृह्यतामधुसूदन ॥१५॥ इत्यलङ्कारम्
वनस्पति रसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ॥
भक्त्या ददामिते धूपं गृहाण मधुसूदन ॥१६॥ इतिधूपः

जल लेकर 'स्नानार्थं तेप्रदास्यामि' इस मन्त्र से स्नान करावे ॥९॥ वस्त्र लेकर 'देव वस्त्रं समयायुक्त मित्यादि' मन्त्र से वस्त्र देवे ॥१०॥ जनेउ लेकर ऋग्वेदादिषु मन्त्रेण इत्यादि मन्त्र से जनेउ देना चाहिये ॥११॥ चन्दन लेकर 'यदङ्ग स्पर्शि मरुत' इत्यादि मन्त्र से चन्दन देवे ॥१२॥१३॥ पुष्प नाना विधं देव इस मन्त्र से पुष्प देना चाहिये ॥१४॥ अलङ्कार लेकर अलङ्कारम्प्रदास्यामि इस मन्त्र से अलङ्कार देवे ॥१५॥ धूप लेकर 'वनस्पति रसो दिव्यो इत्यादि मन्त्र से धूप देवे ॥१६॥

सूर्यश्चन्द्रश्च विद्युच्च त्वमेवाग्निर्महाप्रभो ॥
भक्त्या निवेदितो दीपो गृह्यतामधुसूदन ॥१६॥ इति दीपः॥
अन्नं चतुर्विधञ्चैव रसैः षड्भिः समन्वितम् ॥
मया निवेदितम्भक्त्या गृहाण मधुसूदन ॥१७॥ इति नैवेद्यम् ॥
यदाय मुखरागेण वासितेन सुगन्धिना ॥
मोहिताः सुरसुन्दर्य स्तस्मै ताम्बूलमुत्तमम् ॥१८॥
मया निवेदितम्भक्त्या गृह्यतामधुसूदन ॥ इति ताम्बूलम्
प्रदक्षिण मकम्पणाद्भवार्णव विवर्तनम् ॥१९॥
हन्तिव: करुणाम्भोधि स्त्वामहमासि जगद्गुरुम् ॥ इति प्रदक्षिणम्
अनेन विधिना धीमान् पूजयेन्मधुसूदनम् ॥२०॥
तस्मै भुक्तिञ्च मुक्तिञ्च ददाति मधुसूदनः ॥
ततस्तोत्रं पठेद्धीमान् मार्कण्डेयेन यत्कृतम् ॥२१॥
भक्त्या परमया साधो मधुसूदन सन्निधौ ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति चान्ते सायुज्य माप्नुयात् ॥२२॥

दीप लेकर सूर्यश्चन्द्रश्चेत्यादि मन्त्र से दीप देवे ॥१६॥ नैवेद्य लेकर अन्नं चतुर्विधं इत्यादि मन्त्र से नैवेद्य देना चाहिये ॥१७॥ पान लेकर-यदायमुखरागेण इत्यादि मन्त्र से ताम्बूल देना चाहिये ॥१८॥ प्रदक्षिण० इत्यादि मन्त्र से प्रदक्षिण करे ॥१९॥ हे धीमन इस विधि से जो कोई श्री मधुसूदनदेव की पूजा करते हैं उन्हें भोग तथा मोक्ष श्री मधुसूदन देव देते हैं ॥२०॥ अनन्तर परम भक्ति भाव से मार्कण्डेय मुनि से किया हुआ स्तोत्र पाठ करने से समस्त कामना से

इति ते कथितांसाधो पुजाविधि मनुत्तमाम् ॥
मधुसूदनदेवस्य भुक्ति मुक्ति प्रदायिनीम् ॥२३॥
इदानीङ्कथयिष्यामि मार्कण्डेयेन यत्कृतम् ॥
मधुसूदनदेवस्य स्तोत्रम्परम दुर्लभम् ॥१॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ असास्वतेस्द संसारे सारेते चरणाम्बुजे ॥
समुद्धारः कथन्नूर्णा त्राहिमां मधुसूदन ॥२॥
तापत्रय परिश्रान्त मनेकाज्ञान जृम्भितम् ॥
संसार कुहरेभ्रान्तं त्राहिमां मधुसूदन ॥३॥
अनेक योनि यन्त्रेषु निसृतेस्तनु वेदनाम् ॥
गर्भवास कृताभ्याप्त त्राहिमां मधुसूदन ॥४॥

पूर्ण होकर अन्त में सायुज्य मोक्ष लाभ होता है ॥२१॥२२॥ हे साधो भोग मोक्ष को देने वाला श्री मधुसूदन देव जी की पूजा मैंने आप से कही ॥२३॥ (यह भगवान का पूजन प्रकार मत्स्य सूक्त में लिखा है) । सम्प्रति मार्कण्डेय मुनि से किया जो स्तोत्र मधुसूदन देव का सो मैं कहता हूं ॥१॥ मार्कण्डेय बोले हे मधुसूदन यह असास्वत क्षणभङ्गुर संसार में आप ही का चरणारविन्द सार है । तब प्राणीका उद्धार कैसे हो सकता इस लिये हमें त्राण कीजिये ॥२॥ अधिदैविक अधिभौतिक आध्यात्मिक ताप से परिश्रान्त संसार रूपी गुफा में भ्रमण करते हुये हमको हे मधुसूदन त्राण कीजिये ॥३॥ अनेकानेक योनि यन्त्र से निकलने के समय जो मैं सारीरिक वेदना गर्भ वास जन्य जो

कृमिभक्षित सर्वाङ्गं क्षुत्पिपाशा कुल क्षुदि ॥
आन्त्रमाला कुलेगर्भे त्राहिमां मधुसूदन ॥५॥
अमेध्यादिभि र्लिप्तं निश्चेष्ट श्रममाकुलम् ॥
स्मरन्त निजकर्मोत्थं त्राहिमां मधुसूदन ॥६॥
वचनादाननिः श्वासा शक्तस्मय मुपागतम् ॥
गर्भवास महादुःखं त्राहिमां मधुसूदन ॥७॥
जरा मरण बाल्यादि दुःख संसार पीड़ितम् ॥
दुःखाब्धौ सुख बुद्धि मां त्राहि मां मधुसूदन ॥८॥
कदाचि त्कृमितांप्राप्तं कदाचित्स्वेदजन्मिताम् ॥
कदाचि दुद्भिजत्वञ्च कदाचिन्नरताङ्गतम् ॥९॥

॥ प्राप्त किया अब हे मधुसूदन उस दुःख से हमें त्राण कीजिये ॥४॥ कृमि से भक्षित सर्वाङ्ग क्षुधा तृष्णा से व्याकुल जठरानल से पीड़ित गर्भ में ऐसा हमें त्राण कीजिये ॥५॥ अमेध्यादिक से लिप्त चेष्टा रहित श्रम से व्याकुल निज कर्म जन्य पापादिक स्मरण करने वाले हमें त्राण कीजिये ॥६॥ हे मधुसूदन वचन आदान निःश्वास से अशक्त गर्भवास जन्य महादुःखको अनुभव करने वाले हम को रक्षा कीजिये ॥७॥ जरा मरण बाल्यादि दुःख से संसार में पीड़ित दुःखरूपी समुद्र में सुख मानने वाले हम को हे मधुसूदन त्राण कीजिये ॥८॥ कदाचित क्रीड़ा प्राप्त होकर कदाचित स्वेदज कदाचित उद्भिज अर्थात् लता आदि कदाचित मनुष्यत्व को प्राप्त करने वाले अनाथ हम को हे मधुसूदन रक्षा

अनाथं त्वांसमापन्नं त्राहि मां मधुसूदन ॥
एवं स्तुतस्ततः कृष्णो मार्कण्डेयेन धीमता ॥१०॥
प्रतिस्तमाह विप्रं वरदमे प्रोपकामिति ॥
मार्कण्डेय उवाच
यदि तुष्टो भवान् मह्यं भगवन् भक्त वत्सल ॥११॥
निश्चलान्देहि मे भक्तिं पूजायांदर्शने तव ।
शिलायान्तव सान्निध्य मेष एव वरो मम ॥१२॥
सूत उवाच ॥
तथेत्युक्त्वा महाविष्णु स्तत्रान्तर्हितन्द्विज ॥
मार्कण्डेय स्ततस्तुष्टा जगाम पितुराश्रमम् ॥१३॥
उपस्थान मिदम्पुण्यं सर्व पाप प्रणाशनम् ॥
शृणुयात् श्रावयेन्मर्त्यो गोविन्दे लभते गतिम् ॥१४॥

कीजिये ॥६॥ इस प्रकार पण्डित श्री मार्कण्डेय मुनि से स्तुति करने पर प्रसन्न होकर श्री कृष्ण भगवान बोले हे विप्र वर मांगिये ॥१०॥ मार्कण्डेय मुनि बोले हे भक्त वत्सल श्री मधुसूदन यदि आप मेरे उपर प्रसन्न हैं तो आप की पूजा तथा दर्शन में मेरी निश्चल भक्ति हो और आप का शिला में सान्निध्य हो मैं यही वर मांगता हूं ॥११॥१२॥ सूत जी बोले इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि के कहने पर तथास्तु ऐसा कह कर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये, मार्कण्डेय भी अपना पिता के आश्रम गये ॥१३॥ इस उपास्थान स्तोत्र को जो भक्ति पूर्वक पाठ करेगा उसको भगवान् में अचल प्रेम होगा ॥१४॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे सूत शौनक संवादे मन्दार मधुसूदन महात्म्ये श्री मधुसूदन देवस्य पूजा तथा स्तोत्र कथनन्नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ श्लो० ॥३८॥ अ० ॥३३॥

सूत उवाच
शृणु शौनक वक्ष्यामि दोलारोहणमुत्तमम् ॥
मधुसूदन देवस्य चतुर्वर्ग फलप्रदम् ॥१॥
फाल्गुने मासि कर्त्तव्यं दोलारोहणमुत्तमम् ॥
यत्रक्रीडति गोविन्दो लोकानुग्रहणाय वै ॥२॥
प्रत्यर्चा देवदेवस्य गोविन्दाख्यांतु कारयेत् ॥
प्रासाद पुरतः कुर्यात् षोड़शस्तम्भमुच्छ्रितम् ॥३॥
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारं मण्डपं वेदिकान्वितम् ॥
चारु चन्द्रामलं माल्यं चामरध्वज शोभितम् ॥४॥
भद्रासनं वेदिकायां श्रीपर्णीकाष्ठनिर्मितम् ॥
फल्गूत्सवं प्रकुर्वीत पञ्चाहानि त्र्यहानिवा ॥५॥

सूत जी बोले हे शौनक चारो पदार्थ को देने वाला श्री मधुसूदन भगवान का उत्तम दोलारोहण उत्सव कहता हूँ आप सुनिये ॥१॥ फाल्गुन मास में दोलारोहरण उत्सव करना चाहिये जहाँ पर प्राणी का अनुग्रहार्थ श्री मधुसूदन भगवान क्रीड़ा करते हैं ॥२॥ प्रतिमप्रान्त में गोविन्दायनमः ऐसा कहना चाहिये मन्दिर के आगे षोड़श स्तम्भ से युक्त उच्च चार द्वार वाला चतुः कोण वेदीकाः युक्त मण्डप करना चाहिये ॥ वेदिका से युक्त सुन्दर चन्द्रमा सदृश उज्ज्वल माला चामर तथा ध्वजा से शोभित करना चाहिये ॥३॥४॥ वेदिका के बीच में श्री पर्णी काष्ठ से निर्मित भद्रासन बनावे तब फल्गुत्सव पाँच दिन अथवा तीनदिन ॥५॥ फाल्गुनी पूर्णिमा के एक दिन पूर्व चतु-

फाल्गुन्यां पूर्वतोविप्रा श्चतुर्दश्यांनिशामुखे ॥
वह्न्युत्सवाय कुर्वीत दोलामण्डप पूर्वतः ॥६॥
गोविन्दात्तु गृहीतन्तु यत्राङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ॥
आचार्य्यं वरणं कृत्वा वह्निर्निर्मथनोद्भवम् ॥७॥
भूमिसंस्कृत्य विधिवत्तृणपालि महोच्छ्रयम् ॥
सुसमंकारयित्वाच वह्निं तत्र विनिक्षिपेत् ॥८॥
पूजयित्वा विधानेन कुष्माण्ड विधिना हुनेत् ॥
गोविन्दं पूजयित्वातु भ्रामयेत् सततं विभुम् ॥९॥
यत्नात्तं रक्षयेत् विद्धि यावद्यात्रा समाप्यते ॥
प्रातर्य्यामे चतुर्दश्यां गोविन्द प्रतिमांशुभाम् ॥१०॥
वासयित्वा हरे रग्रे पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥
उपचारावशिष्टेन्तु मध्यर्चामपि पूजयेत् ॥११॥

इ़सी के निशामुख में मण्डप से पूर्व दिशा में फल्गुत्सव कराना
चाहिये ॥६॥ यह गोविन्दके अनुग्रह से यात्रा का अङ्ग है आचार्य
का वरण करें तब अग्नि मंथन कर निकाल कर होलिका पा
करें ॥७॥ विधि पूर्वक भूमि संस्कार करके वहुत उच्चतृण
को इकट्ठाकर और उसको चौरस कर अग्नि प्रक्षेपन करें ॥
विधि पूर्वक पूजन कर कुष्माण्ड विधि से हवन
गोविन्द कि पूजा कर तब सतत भगवान को
करावे ॥९॥ जब तक यात्रा समाप्त न होय तब तक उस
रक्षा करें चतुर्दशी के प्रातः काल सुन्दर भगवान
प्रतिमा ॥१०॥ भगवान के आगे सुगन्धित द्रव्यादिक से

ततोऽवरोप्य वसनं मालाञ्च द्विजसत्तमाः ॥
आचार्य्यो विन्यसेन्मन्त्री परज्योति विभावयन् ॥१२॥
ततः सा प्रतिमा सक्षाज्जायते पुरुषोत्तमः ॥
रत्नान्दोलिकया ताम्वै नयेत्स्नानं स्वमण्डपम् ॥१३॥
तत्रनाना तुर्य्यनादैः शंखध्वनि पुरस्सरम् ॥
जयशब्दै स्तथा स्तोत्रैः पुष्पवृष्टिभिराकिरन् ॥१४॥
छत्रध्वज पताकाभि श्चामरै र्व्यजनैस्तथा ॥
निरन्तरं दीपिकाभि स्तदा कुर्य्यान्महोत्सवम् ॥१५॥
आगच्छन्ति तदादेवाः पितामहपुरोगमाः ॥
द्रष्टुं चर्षिगणैः सार्द्धं गोविन्दस्य महोत्सवम् ॥१६॥

कर तब पुरुषोत्तम की पूजा करें उपचार के अन्त में प्रति वेर
भगवान की अर्चना करें ॥११॥ अनन्तर हे द्विजसत्तम तब
वस्त्र देकर माला देवें मन्त्री अर्चा में ज्योति स्वरूप की
भावना करते हुये ॥१२॥ तब इस प्रतिमा में साक्षात पुरुषोत्तम
आजाते हैं। अनन्तर रत्न से खचित दोला पर लेकर स्नान मण्डप
लावें ॥१३॥ वहां पर अनेक प्रकार के वाजा वजाते हुवे जय
शब्द के साथ स्तोत्रादिक से पुष्प वृष्टि करें ॥१४॥ छत्र तथा
ध्वजा पताका आदि से तथा चामर वो व्यजन से और
निरन्तर दीप आदिक से महोत्सव करें ॥१५॥ उस समय
॥ ब्रह्मा आदि देवगण ऋषिगण के साथ गोविन्द-
का महोत्सव देखने के लिये आते हैं ॥१६॥ भद्रासन पर
बैठाकर षोड्शोपचारादिक से पूजा करें तथा महास्नान विधि

भद्रासनेऽधिवास्यैव पूजयेद्वपचारकैः ॥
महास्नानस्य विधिना स्नपनं तस्यकारयेत् ॥१॥
पञ्चामृतैश्च सर्वैश्च तेषामन्यतमेन वा ॥
स्नानान्तेगन्ध तोयेन श्रीसूक्तेनाभिषेचयेत्॥१८॥
सम्प्रोक्ष्यं भूषयेद्देवं वस्त्रालङ्कार माल्यकैः ॥
नीराजयित्वा सम्पूज्य प्रसादं परिवेष्टयेत् ॥१९॥
सप्तकृत्वस्तो देवं दोलामण्डप मानयेत् ॥
सुसंस्कृतायां रथ्यायां पताका तोरणादिभिः ॥२०॥
अधोदेशे मण्डपस्तं सप्तशो भ्रामयेत्पुनः ॥
ऊर्ध्वदेशे पुनः सप्त स्तम्भवेद्याञ्च सप्त वै ॥२१॥
यात्रावसाने च पुन भ्रामयेदेकविंशतिम् ॥
इयं लीला भगवतः पितामह मुखेरिता ॥२२॥

से स्नपन करावे ॥ १७॥ सब प्रकार के पञ्चामृत से अथवा उन में एक, एक से स्नान करावे स्नान के अन्त में सुन्धि युक्त जल से पुरुष सूक्त के द्वारा अभिषेक करे ॥१८॥ फिर वस्त्रादिक से पोंछकर वस्त्र तथा अलङ्करणादिक माला से भूषित करे आरती आदि से पूजन कर प्रसाद को वेष्टित करे ॥१९॥ सात वेर दोलाकर तब दोला मण्डप लावे पताका ध्वजा से सुसंस्कृत मार्ग होकर मण्डप लावे ॥२०॥ मण्डप के नीचे सातवेर भ्रमण करावे फीर ऊपर में भी सातवेर दोलावे फीर स्तम्भ दोहो पर भी भ्रमण करावे ॥२१॥ फिर यात्रा के अन्त में ॥ २१ वार भ्रमण कराओ यह भगवान की लीला ब्रह्मा जी के

राजर्षिणेन्द्रद्युम्नेन कारिता पूर्वमेवहि ॥
फलपुष्पोप नम्रैश्च शाखिभिः परिकल्पिते ॥२३॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये मत्तभ्रमर राविणि ॥
कोकिला राव मधुरे नाना पक्षिगणाकुले ॥२४॥
नानोपशोभा रचिते नाना गुरु सुधूपिते ॥
प्रफुल्ल केतकी खण्ड गन्ध मोदि दिगन्तरे ॥२५॥
मल्लिकाशोक पुन्नाग चम्पकै रूप शोभिते ॥
भूषिते माल्य वसन चामरै रुप शोभिते ॥२६॥
तत् काननान्तर्विहिते मण्डपे चारु तोरणे ॥
सद्रत्न मुकुटन्तार हार शोभित वक्षसम् ॥२७॥
रत्न खट्वान्दोलिताथां तन्मध्ये वासयेत् प्रभुम् ॥
यथा स्थानं यथाशोभां दिव्यालङ्कार मञ्जुलम् ॥२८॥

पुष्प से प्रकाशित हुआ ॥२२॥ फलपुष्प से वेष्टित मण्डप में राजा इन्द्र द्युम्न ने ब्रह्मा जी के द्वारा किया था ॥२३॥ रमणीय वृन्दावन के बीच मत्त भ्रमर के शब्द से युक्त मधुर कोकिल के शब्द से शोभायमान अनेक पक्षीगण से आकुल ॥२४॥ नाना शोभा से रचित नाना प्रकार के धूप से धूपित प्रफुल्ल केतकी दल के खण्ड से सुगन्धित ॥२५॥ मल्लिका अशोक पुन्नाग चम्पक आदि से शोभायमान माला तथा वस्त्र चामर आदि से शोभित ॥२६॥ वैसा वन में सुसज्जित मण्डप में सुन्दर पताका आदि से शोभित सुन्दर रत्नमुकुट हार आदि से खचित हार से वक्षस्थल शोभित ॥२७॥ अनेक

अनर्घ्यं रत्न घटित कुण्डलोभासित श्रुतिम् ॥
शंख चक्र गदापद्म धारिणं वनमालिनम् ॥२९॥
विकचाम्बुज मध्यस्थं विश्वधात्र्या श्रियायुतम् ॥
सुप्रसन्नं सुनासाक्ष्य पीन वक्षस्थलोज्वलम् ॥३०॥
पुरो व्योम स्थितैर्दिव्यै ब्रह्माद्यैर्नत मस्तकैः ॥
कृताञ्जलि पुटैर्भक्त्या जय शब्दै रभिष्टुतम् ॥३१॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च किन्नरैः सिद्ध चारणैः ॥
हाहा हूहू प्रभृतिभिः सत्वरन्दिव्यगायनैः ॥३२॥
अहं पूर्विकया नृत्य गीतवादित्र कारिभिः ॥
नेत्राम्बुज सहस्रैश्च पूज्यमानं मुदान्वितैः ॥३३॥

रत्न से रचित दोला पर श्री मधुसूदन देवको उपवेसन करावे जिस स्थान में जैसा जैसे शोभा होवे वैसा ही देवको शोभित करे ॥२८॥ अमूल्य रत्न से खचित कुण्डल से शोभित शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये हुये वनमाली ॥२९॥ विकसित कमलपर संसार को पालन करने वाली लक्ष्मी जी से युक्त अत्यन्त प्रसन्न सुन्दर नासिका उज्वल मांसिल वक्षस्थल से शोभित ॥३०॥ आगे में आकाशस्थ दिव्य ब्रह्मा आदि देवगणों से भक्ति पूर्वक हाथ जोड़कर जयशब्दादिक से स्तुत चतु र्दिक्षु ॥३१॥

गन्धर्व अप्सरागण किन्नर गण सिद्ध चारणों से तथा हाहा हूहू प्रभृति गणों के शीघ्रगान से मैं पहिले गाऊंगा इस प्रकार गीत वाद्यादिक से युक्त हजारों नेत्ररूपी कमल से

किरद्भिः सर्वतोदिक्षु गन्धचन्दनजं रजः ॥
उपवेश्यार्थ गोविन्दं पूजयेदुपचारकैः ॥३४॥
वल्लवी वृन्द मध्यस्थं कदम्ब तरुमूलगम् ॥
हाव हास्य विलासैश्च क्रीडमानं वनान्तरे ॥३५॥
गोपीभिश्चैव गोपालै लीलान्दोलितपान्नगम् ॥
चिन्तयित्वा जगन्नाथं विकिरेद्गन्ध चूर्णकैः ॥३६॥
सकर्पूरै रक्तपीत शुक्लैर्दिक्षु समन्ततः ॥
दिव्यैर्वस्त्रै दिव्य माल्य दिव्यैर्गन्धैः सुधूपकैः ॥३७॥
चामरान्दोलनै र्गीतैः स्तुतिभिश्च समर्चितम् ॥
आन्दोलनैर्दोलिकास्थं सप्तवारान् शनैः शनैः ॥३८॥

प्रसन्न पूर्वक पूज्यमान ॥३२॥३३॥ सर्वदिशाओं में गन्धचन्दनादिक धूलों से विकसित श्री गोविन्द को बैठा कर षोड़शोपचारादिक से पूजन करे ॥३४॥ लतासमूहों के मध्य कदम्ब वृक्ष के तल में हाव भावरूप विलास से वनान्तर में क्रीड़ा करते हुये ॥३५॥ गोपीयों से तथा गोपालों से लीला पूर्वक आनन्द से मद्यादिक पानयुत श्री जगन्नाथ मधुसूदन को ध्यान कर गन्ध चन्दनादिक छींटे ॥३६॥ कर्पूर सहित रक्त पीत शुक्लादि दिशाओं में रचित कर दिव्य वस्त्र से तथा दिव्य माल्यादिक से तथा दिव्य गन्धादिक से धूपित ॥३७॥ चामर डोलाते हुये गीत से तथा स्तुति पाठादिक से पूजित सात वार दोलापर धीरे २ श्री भगवान को डोलावे ॥३८॥ इस समय में जो कोई श्री मधुसूदनभगवान को देखता है

तदा पश्यन्ति ये कृष्णं मुक्तिस्तेषां नसंशयः ॥
ब्रह्म हत्यादि पापानां पञ्चकानांक्षयोभवेत् ॥३९॥
त्रिरेवं दोलये द्विष्णुं सर्व पापाय नोदनम् ॥
भव्यानु ग्राहकं पुंशां भुक्ति मुक्त्यैक कारणम् ॥४०॥
लीला विचेष्टितं यस्य कृत्रिमं सहजन्तथा ॥
सद्योऽघः संक्षय करं मूलाविद्यानिवर्तकम् ॥४१॥
पश्यद्वितीयं हरति गोहत्या द्युपपातकम् ॥
हरत्यशेषं पापानि तृतीये नात्र संशयः ॥४२॥
दृष्ट्वादोलार्पितं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
अध्यात्मिकैं राधि भौतैं राधि दैवैं विमुच्यते ॥४३॥

उस को निश्चय मुक्ति होती है इसमें संशय नहीं तथा ब्रह्म
हत्यादिक जो पाँच महापाप हैं उनका क्षय हो जाता है ॥३९॥
इस प्रकार जो कोई तीन वार भगवान् को डोलाते
हैं, उनका समस्त पाप नाश हो जाता है भक्ति से ऐसा
करने पर मनुष्यों के लिये भोग तथा मोक्ष का कारण
लीला पूर्वक श्री मधुसूदन भगवान् की चेष्टा से कृत्रिम तथा
सहज जो पाप समूह उसका शाक्षात नाश कर देता है
तथा अविद्या का नाश हो जाता है ॥४०॥४१॥ देखने से गो
हत्यादिक उपपातक नाश होता है। तीन बार देखने डोलाने
से समस्त पाप नाश होता है ॥४२॥ डोलते हुए श्री मधुसूदन
भगवान को देखने से आध्यात्मिक अधि भौतिक आधिदै-

इमां यात्रां कारयित्वा चक्रवर्ती भवेन्नृपः ॥
ब्रह्मणास्तु चतुर्वेदी ज्ञानवान् जायते ध्रुवम् ॥४४॥
इति ते कथितं साधो दोलारोहण मुत्तमम् ॥
मधुसूदन देवस्य सर्वकाम फलप्रदम् ॥४५॥
य इदं श्रुयतेऽध्यायं श्रावयेद्वापिभक्तितः ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति चान्ते गोलोकमाव्रजेत् ॥४६॥

विक समस्त पाप नाश हो जाते हैं ॥४३॥ इस अर्चन को
कर ने से राजा लोक चक्रवर्ती होते हैं ब्राह्मण लोक चारो
वेद का ज्ञाता हो जाते हैं ॥४४॥ सूत जी शौनक से कहते हैं
हे शौनक यह मैं मधुसूदन जी का दोला रोहण का उत्सव
आप से कहा इस से प्राणी गण की समस्त कामना सिद्ध
होती है ४५॥ जो इस अध्याय को सुनेगा या भक्ति पूर्वक सुना-
वेगा वह इस लोक मैं समस्त कामना से पूर्ण होकर अन्त मैं
गो लोक जायगा ॥४६॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे सूत शौनक सम्वादे मन्दार
मधुसूदन माहात्म्ये श्री मधुसूदन देवस्य दोलारोहणोत्सव
कथनन्नाम चतुस्त्रिं शोऽध्यायः ॥३४॥

सूत उवाच

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि द्विजेन्द्राः सत्य वादिनः ॥
मधुसूदन देवस्य मन्त्रराज मनुत्तमम् ॥१॥
ध्यात्वा पूजनाद्विष्णो जप्त्वा मन्त्र मुत्तमम् ॥
सिद्धि समधि गच्छन्ति नात्रकार्य्या विचारणा ॥२॥
यमासाद्य पुराः सर्वे ब्रह्मणो मानसाः सुता. ॥
लभन्तेस्म महाधीमन् परांसिद्धि मितोभताः ॥३॥
मन्त्रस्यास्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दो गायत्रि रुच्यते ॥
देवताऽत्र महाविष्णु मधुसूदन संज्ञकः ॥४॥
सर्वकामार्थ सिध्यर्थं विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
सर्वसर्वेश्वराय सर्वविघ्न विनाशाय ॥५॥
मधुसूदनाय स्वाहा इतिमन्त्र मुदाहृतम् ॥
चतुर्विंशति लक्षञ्च पुरश्चरण मुच्यते ॥६॥

सूत जी बोले हे सत्यवादी शौनकादि द्विजेन्द्रगण सम्प्रति मैं श्री मधुसूदन देव जी का सर्वश्रेष्ठ मन्त्रराज कहता हूँ ॥१॥ श्री विष्णुभगवान का ध्यान कर तथा उनकी पूजा कर जिस मन्त्र को जपने से प्राणिगण सिद्धि को प्राप्त कहता है इसमें संशय नहीं ॥२॥ जिस को पाकर ब्रह्मा जी का मानस पुत्र गण पुराने समय में सिद्धि पाकर परंपद को पाये ॥३॥ इस मन्त्रका ऋषि ब्रह्मा हैं गायत्री छन्द है देवता महाविष्णु श्री मधुसूदन देव हैं ॥४॥ समस्त कामना सिद्धि के लिये विनियोग है। ॐ सर्वसर्वेश्वराय सर्व विघ्नविनाशाय मधुसूदनाय

हविष्याशी जितेन्द्रीच गुरुभक्तो विशुद्धधीः
ध्यात्वादेवं महाविष्णुं परम्ब्रह्म सनातनम् ॥७॥
मधुसूदनदेवश्च प्रीत्यर्थं योजयेन्तरः ॥
तेषां पुनरावृत्ति संसारेऽस्मिन्महार्णवे ॥८॥
किंकरास्तस्य देवाश्च किमन्ये नरेजनाः ॥
यंयमिच्छति तत्सर्वं सिद्धत्येव नसंशयः ॥९॥
नकिञ्चिद्दुर्लभं तस्य त्रिषुलोकेषु विद्यते ॥
किं वक्तुं तस्यमहात्म्यं मन्त्रस्यास्य द्विजोत्तमाः ॥१०॥
नातः परतरंविष्णो मन्त्रं प्रीतिविवर्द्धनम् ॥
मन्त्रराजमिमं विष्णो भक्तिभावेन योनरः ॥११॥

स्वाहा यह मन्त्र है ॥५॥ चौबीश लाख इसका अनुष्ठान है ॥६॥ हविष्य भोजन कर तथा जितेन्द्रिय और गुरुभक्त विशुद्ध हृदय से परम सनातन ब्रह्म महाविष्णु श्री मधुसूदनदेव का ध्यान करे ॥७॥ और मधुसूदनदेव प्रीत्यर्थ सङ्कल्प वाक्य में जोड़ना चाहिये इस प्रकार करने से उस व्यक्तिको संसाररूपी महासमुद्र में फिर आना नहीं पड़ता है ॥८॥ और उस पूजक के देवता लोक दास बन जाते हैं इतर मनुष्य की कौन गिनता है और जो जो इच्छा करता है वह निश्चय प्राप्त होता है ॥९॥ उसको तिनों लोक में तथा संसार में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं होता/ हे द्विजोत्तम मैं इस मन्त्रका महात्म्य क्या कहूं इस मन्त्र से बढ़कर भगवानका प्रेम बढ़ानेवाला दूसरा मन्त्र नहीं

पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं सायुज्यं मोक्षमाप्नुयात् ।
कोटिजन्मार्जितं पापं नाशयत्येव तत्क्षणात् ॥१२॥
किञ्चैर्वा बहुनोक्तेन मन्त्रस्यास्य प्रभावतः ॥
तन्नपश्यामि लोकेस्मिन् फलंयन्न लभेन्नरः ॥१३॥
इति ते कथितं साधो मन्त्रराजस्य वैभवम् ॥
इदानीं कथयिष्यामि यात्रोत्सव मनुत्तमम् ॥१४॥
मधुसूदनदेवस्य चतुर्वर्ग फलप्रदम् ॥
अज्ञान तिमिरान्धोऽपि येन भास्वत्पदन्नयेत् ॥१५॥
वैशाखस्यामले पक्षे तृतीया पापनाशिनी ॥
स्वयमाविष्कृता बौधा प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥१६॥

है ॥२०॥ यह मन्त्र राज से भक्ति भावसे भगवान की पूजा कर जो जायेगा सो साजुज्य मोक्ष प्राप्त करेगा ॥११॥ जप करने से कोटि जन्मार्जित पाप तात्काल नाश हो जाता है मैं इस मन्त्र का प्रभाव क्या कहूं ऐसा कोई कार्य्य नहीं है जो इस मन्त्र से सिद्ध नहीं हो अर्थात् कार्य्यमात्र सिद्ध होता है ॥१२।१३॥ हे साधो यह मैं मन्त्र राज का माहात्म्य आप से कहा सम्प्रति यात्रोत्सव कहता हूं ॥१४॥ यह मधुसूदनदेव का यात्रोत्सव अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को देने वाला है । जिस यात्रोत्सव को करने से अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्ध भी प्राणीगण उज्वल स्थानको प्राप्त करते हैं ॥१५॥ वैशाख मास शुक्ल पक्ष पाप हरण करने वाली अक्षय तृतीया प्रजा पति नक्षत्र से युक्त तिथि में ब्रह्मा जी से स्वयं

तस्यां संकल्प्यनृपति राचार्य्यं वरयेच्छुचिम् ॥
एकं त्रीनथ तक्षाणं वृक्षकर्म्मणिसादरात् ॥१७॥
वृणुयाद्वनयागाय वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥
तक्ष्णा सार्द्धं वनङ्गत्वा साधुवृक्षैः समाकुलम् ॥१८॥
तन्मध्ये वह्निमाधाय मन्त्रराजेन मन्त्रवित् ॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा सम्यगाज्यं त्रिमिश्रितम् ॥१९॥
आज्यं तरूणां मूलेषु प्रत्येकमभिधारयेत् ॥
दिक्पालेभ्यो बलिन्दत्वा क्षेत्रपालपशुंस्तथा ॥२०॥
जुहुयाद्वनस्पतिभ्यश्च क्षीरोदन शतं हुतिम् ॥
ततः परशुमादाय वृक्षमूलेषु दिक्षु वै ॥२१॥

आविष्कार किया हुआ विधि से संकल्प करे ॥१६॥ शुद्धाचारी आचार्य्य को वरण करे तब रथ कर्म्म में चतुर एक अथवा तीन बढ़ई को आदर पूर्वक ॥१७॥ वस्त्र अलङ्कारादिक से भूषित कर वन याग के लिये वरण करें । कर्म कार के साथ यहाँ पर उत्तम वृक्ष समूह से युक्त वन होय वहाँ जाना चाहिये ॥१८॥ उसका मध्य में मन्त्रवित ब्राह्मण मन्त्र राज से वह्नि स्थापन करके आज्य अर्थात घृत से एक सौ आठ मरतबे होम करें ॥१९॥ घृत प्रतेक मन्त्र से वृक्ष के जड़ में देवे । दिक्पाल के लिये बलि देवे । क्षेत्र पाल के लिये पशु बलि देवे ॥२०॥ वनस्पति के लिये दुग्ध मिला हुआ ओदन से अष्टोत्तर शत होम करे अनन्तर फरसा लेकर वृक्ष के जड़ में चतुर्दिश में क्रमण

आज्य संस्कृतदेशेषु आचार्यो मन्त्रमुच्चरन् ॥
किञ्चित् किञ्चिच्छेदयेद्वै चिन्तयन् गरुडध्वजम् ॥२२॥
नदत्सु तूर्य्यवाद्येषु गीतमङ्गलवादिषु ॥
नियोज्य वर्द्धकीन्तत्र आचार्यः स्वगृहं व्रजेत् ॥२३॥
अथवासन्नस्थान लब्धानि दारूणि रथकर्मणि ।
उक्त संस्कार विधिना संस्कुर्यात् कल्पितेऽनले ॥२४॥
आरभेत रथंकर्त्तुं विघ्नराज महोत्सवम् ॥
षोडशारैः षोडशभि श्चक्रैर्लौहमयं दृढैः ॥२५॥
युक्तं विष्णोरथं कुर्यात् दृढाक्षं दृढकूवरम् ॥
विचित्र घटनाकक्ष पुत्तल्लीपरि वेष्टितम् ॥२६॥

करावे ॥२१॥ आचार्य्य मन्त्र का उच्चारण करता जाय बढ़ई गरुडध्वज का ध्यान करता हुआ घृत से किया हुआ संस्कृत देश में किञ्चित् २ छेदन करे ॥२२॥ माङ्गलिक बाजा बजता हुआ तथा गीत मङ्गलस्तोत्रादिक पढ़ता हुआ जन समूहों के बीच में बढ़ई को वहाँ पर नियुक्त कर आचार्य्य स्वयं अपना घर आवे ॥२३॥

अथवा समीप वर्ती यदि रथ करने के योग्य काष्ठ मिले तो उसको उक्तसंस्कार के विधि से कल्पित अग्नि में संस्कृत कर ॥२४॥ रथ बनवाकर विघ्न राज का उत्सव करे षोडश चक्र से तथा षोडश लोह का कीला बनाकर दृढ़ रथ बनावे ॥२५॥ दृढ़ अक्ष तथा दृढ़ कूवर बनवाकर श्री विष्णु भगवान का रथ बनवावे विचित्र पुत्तली आदिसे रथको शोभित करे ॥२६॥

नाना विचित्र बहुल मिक्षुदण्ड विराजितम् ॥
चतुस्तोरण संयुक्तं चतुर्द्वारं शुशोभनम् ॥२७॥
नानाविचित्र बहुलं हेमवस्त्रविराजितम् ॥
द्वाविंशति कराच्छ्रायं पताकाभि रलङ्कृतम् ॥
गारुडञ्च ध्वजं कुर्यात् रक्तचन्दननिर्मितम् ॥२८॥
दीर्घनाशं स्थूलदेहं कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ॥
चञ्चग्रदंष्ट्र भुजग सर्वालङ्कार भूषितम् ॥२९॥
वितत्य पक्षतौ व्योम्नि उड्डियन्त मिवोदितम्॥३०॥
दैत्य दानव संघस्य बलदर्प विनाशनम् ॥
सर्वाङ्गं तस्य कनकै राच्छाद्य परिशोभयेत् ॥३१॥
रथस्यैव हरेः कुर्य्यात्स्वासन सुपरिष्कृतम् ॥
आषाढ़स्य शितिपक्षे दिनेविष्णोः शुभप्रदे ॥३२॥

नाना प्रकार से तथा इक्षुदण्ड से रथ को शोभित करे चार पताका देकर चार द्वार शोभित करे ॥२७॥ अनेका पट्ट वस्त्र से वेष्टित स्वर्ण दण्ड से भूषित पताका आदि से शोभित २२ हाथ की ऊंचा रथ होना चाहिये ॥२८॥ रक्त चन्दन से निर्मित लम्बा नासिका मोटी देह कुण्डलादिक से अलङ्कृत गरुड़ का ध्वजा बनावे ॥२९॥ चञ्चु के आगे सर्प देकर सब प्रकार के अलङ्कारों से अलङ्कृत कर पक्ष को फैलाते हुये आकाश में उड़ रहे हैं इस तरहका प्रतिमा होनीचाहिये ॥३०॥ दैत्य दानव आदिका दर्प तथा बल को नाश करने वाले गरुड़ के सर्वाङ्ग को स्वर्णादिक से आच्छादित कर शोभित

प्रतिष्ठाप्य समुद्रेन विधिना पूर्ववद्द्विजाः ॥
यथासंज्ञं यथा शास्त्रं विश्वसेद् ब्राह्मणेषु च ॥३३॥
ब्राह्मणा जगदीशस्य जङ्गमास्तनय स्मृता ॥
रक्षणार्थं रथं तत्र नारोहेद् कश्चनाशुभः ॥३४॥
पक्षीवा मानुषीवापि मार्ज्जार नकुलादयः ॥
ततो दिन त्रयात्पूर्वां प्रथानामुत्तरे क्षते ॥३५॥
मण्डपे चोत्सवाङ्गे वा प्रकुर्य्यादङ्कुरार्पणम् ॥
अद्भुतेष्वपि जातेषु शान्तिं कुर्य्याद्यथोचितम् ॥३६॥

करे ॥३१॥ इस प्रकार श्री विष्णु भगवान का रथ बनाकर सुन्दर परिस्कृत उसपर भगवान का आसन देवे। आषाढ़ मास शुक्ल पक्ष कल्याण को देने वाले श्री विष्णुभगवान का तिथि में ॥३२॥ पहिले देखा हुआ मार्ग से प्रचुर सम्भार से रथ की प्रतिष्ठा करे अथवा शास्त्र में जैसा जो लिखा है उस से वैसा ही करे ब्राह्मण में विश्वास करके ॥३३॥ ईश्वर का जङ्गम पुत्र ब्राह्मण ही शास्त्र कारों ने बतलाया है ॥ तथा रथ की रक्षा करे क्योंकि कोई अशुभ व्यक्ति आरोहण न करे ॥३४॥ पक्षी वा मनुष्य अथवा मार्ज्जार आदि नकुल प्रभृतिक ॥ तीन दिन पहिले ही मण्डप से उत्तर दिशा में रखे ॥३५॥ मण्डप अथवा उत्सवाङ्गन में अङ्कुरार्पण करे यदि किसी प्रकार का उत्पात होवे तो उसका शास्त्रोचित शान्ति करे ॥३६॥

शौनक उवाच
वदसूत महाभाग रथस्योत्पात लक्षणम् ॥
यं ज्ञात्वा मनुजाः सर्वे शान्तिर्विघ्नोपशान्तये ॥३७॥
करिष्यन्ति सुखं येन प्राप्नुवन्ति ततः परम् ॥
तत्सर्वं विस्तारब्रह्मन् कथयस्वानु कम्पया ॥३८॥
सूत उवाच
शृणुशौनक वक्ष्यामि रथस्योत्पात लक्षणम् ॥
यज्ञाज्ञात्वा नराविघ्नं प्राप्नुवन्ति पदे पदे ॥३९॥
ध्वजभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रिय क्षयम् ॥
तुलाभङ्गे वैश्यनाशः सम्पाशूद्र भयम्भवेत् ॥४०॥
धुराभङ्गे त्वनावृष्टिः पीठभङ्गे प्रजा भयम् ॥
परचक्रागमं विद्यात् चक्रभङ्गे रथस्य तु ॥४१॥

शौनक जी बोले हे सूत जी रथोत्पात का लक्षण कहिये जिसका जान ने से विघ्नशान्त्यर्थ प्राणीगण चेष्टा करेंगे ॥३७॥ और जैसा करने से प्राणी गण सुख पावेंगे सो सब कृपाकर सविस्तर कहिये ॥३८॥ सूत जी बोले हे शौनक जी सुनिये मैं रथोत्पात का लक्षण कहता हूं जिसको नहीं जानने से प्राणीगण पद पद में विघ्न पाते हैं ॥३९॥ ध्वजा भङ्ग होने से ब्राह्मण को भय अक्ष भङ्ग होने से क्षत्रिय का नाश तुलाभङ्ग होने से वैश्य का नाश सम्पात भङ्ग होने से शूद्र को भय ॥४०॥ धूरा भङ्ग होने से अनावृष्टि पीठ भङ्ग होने से प्रजा का नाश रथ का चक्र भङ्ग होने से दुसरा राजा का चक्र का आगमन ॥४१॥

ध्वजस्य पतने विप्रा नृपोऽन्यो जायते ध्रुवम् ।
प्रतिमा भङ्गता यान्तु राज्ञो मरण मादिशेत् ॥४२॥
पर्यस्तेतु रथे विप्राः सर्वजान पदक्षयः॥
उत्पन्नेष्वेव मार्गेषु उत्पातेष्वशुभेषु च ॥४३॥
बलिकर्म पुनःकुर्य्या च्छान्तिहोमं तथैवच ॥
ब्राह्मणान् भोजयेद्भूयो दद्याद्दानानि चैवहि ॥४४॥
पूर्वोत्तरेच दिग्भागे रथस्याग्निं प्रकल्पयेत् ॥
शमिद्भिः घृत मध्वाज्य मूलाद्यामिश्च होमयेत् ॥४५॥
पालाशाभि र्द्विज श्रेष्ठा मन्त्रराजेन दीक्षितः ॥
सोमायाग्नये प्रजाभ्यः प्रजानामपतये तथा ॥४६॥
ग्रहेभ्यश्च ब्रह्मणेच दिक्पालेभ्य स्ततदन्तरम् ॥
यत्र तत्र रथे दोषा स्तत्र तत्र च दीक्षितः ॥४७॥

ध्वजा का पतन होने से दूसरा राजा निश्चय होता है प्रतिमा भङ्ग होने से राजा का आक्रमण होता है ॥४२॥ समस्त रथ के भंग होने से सम्पूर्ण देश का नाश होता है इस प्रकार अशुभ होने से ॥४३॥ फिर बलि कर्म तथा शान्ति होम करना चाहिये और ब्रह्मण भोजन करावे तथा प्रचुर दान देवे ॥४४॥ रथ का ईशान कोण में अग्नि स्थापन करे पलाशादि लकड़ी से तथा घृत मधुर आदि से होम करे ॥४५॥ हे द्विज श्रेष्ठ शौनकादिक पालाश आदि लकड़ी को मन्त्रराज से संस्कृत कर सोम, अग्नि, प्रजा, प्रजापति ग्रह समूह ब्रह्मा जी का अनन्तर दिक् पाल आदि का प्रीत्यर्थ होम करे ॥४६॥ जहाँ २ पर रथ में दोष होय वहाँ२ पर मन्त्र

जुहुयात्प्रतिष्ठा मन्त्रेण विशेषः सवतो भवेत् ॥
ब्राह्मणैः सहितः कुर्य्याद्धोमान्ते शान्तिवाचनम् ॥४८॥
स्वस्ति भवतु विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञेऽस्तु नित्यशः ॥
गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यस्तु जगतः शान्तिरस्तु वै ॥४९॥
स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे ॥
शम प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शंस्तथात्मनि चास्तुनः ॥५०॥
शान्तिरस्तुच देवस्य भू र्भुवः स्वः शिवं तथा ॥
शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु सर्वतः शान्तिरस्तुनः ॥५१
त्वं देव जगतः स्रष्टा पोष्टाचैव त्वमेवहि ॥
प्रजाः पालय देवेश शान्ति कुरु जगत्पते ॥५२॥
यात्राकारण भूतस्य पुरुषस्य च भूपते ॥
दृष्टान् ग्रहांस्तु विज्ञाय ग्रहशान्तिं समाचरेत् ॥५३॥

से दीक्षित कर ॥४७॥ प्रतिष्ठा मन्त्र से होम करे तब सब तरह से अच्छा होय होम के अन्तमें ब्राह्मणादिक से शान्तिवाचन करावे । ब्राह्मणों के लिये कल्याण हो । राजाओं को नित्य शान्ति हो गौ समूहों को स्वस्ति हो प्रजागण को शान्ति हो तथा संसार का शान्ति हो ॥४९॥ द्विपद-जितने हैं उनका शान्ति हो तथा चतुष्पद को शान्ति हो तथा प्रजागण को नित्य शान्ति होय तथा हम लोगों की आत्मा को शान्ति हो ॥५०॥ देवता लोगों की शान्ति हो तथा भू भुर्वादिक शान्ति हो सब दिशाओं में हम लोगों को शान्ति तथा मङ्गल होवे ॥५१॥ हे देव आप जगतकी सृष्टि करने वाले हैं

सूत उवाच

इति ते कथितं साधो रथोत्पातस्य लक्षणम् ॥
शान्ति श्चापि यथातुल्यं कथिता ऋषिसत्तमः ॥५४॥
इदानीं कथयिष्यामि यात्रा विधि मनुत्तमाम् ॥
श्रूयतां द्विजशार्दूल सावधानतया शुना ॥५५॥

॥ सूत उवाच ॥

आषाढ़स्य शितेपक्षे द्वितीया पुष्य संयुता ॥
अरुणोदय वेलायां तस्यां देवं प्रपूजयेत् ॥१॥

तथा पालन करने वाले हैं हे जगतके पति प्रजाको पालन कीजिये तथा शान्ति कीजिये ॥५२॥ हे राजा यात्रा करने वाले प्राणी को उचित है कि इष्ट ग्रह देख कर ग्रह शान्ति करें ॥५३॥ सूत जी बोले हे शौनकादि ऋषि श्रेष्ठ पहले रथोत्पात का लक्षण तथा शान्ति प्रकार आप लोगों से मैं ने कहा ॥५४॥ सम्प्रति रथ यात्रा की विधि कहता हूं सो हे मुनियों में शार्दूल सावधान होकर सुनिये ॥५५॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे सूत शौनक सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये रथोत्पातस्य लक्षणम् तत् शान्ति प्रकार कथन न्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

सूत जी बोले हे शौनक आषाढ़ मास शुक्ल पक्ष ॥ पुष्य नक्षत्र से युक्त द्वितीया तिथि को सूर्योदय काल ॥

ब्राह्मणैर्वैष्णवैः सार्द्धं यतिभिश्च तपस्विभिः ॥
विज्ञापयेद्देवदेवं यात्रार्थे संस्कृताञ्जलिः ॥२॥
तवापाङ्ग विलोकेन प्रपुनन्तु दिशोदशः ॥
तदेहि भगवन् विष्णो प्रीत्याचरण मत्रवै ॥३॥
भूतले जगतान्नाथ कृतार्थं कुरु सत्पते ॥
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं माधवं मधुसूदनम् ॥४॥
रथस्योपरि संस्थाप्य यात्रार्थं च ऋषीश्वर ॥
पुरा भूमिः समाकुर्य्यान्निः पङ्का सुखचारणा ॥५॥
निर्म्मलाच सुगन्धाच्च सुदूरा दर्जितोत्करा ॥
सुमनस्तवकैर्माल्यै र्दुकूलैश्चामरै स्तथा ॥६॥
यथा सुपुष्पितारण्यं रथताद्रूक् सुशोभनम् ॥
कुर्य्याच्चैव महाराज मधुसूदन प्रीतये ॥७॥

श्री भगवान् को पूजा करें ॥१॥ वैष्णव ब्राह्मण तथा यति आदि फकीरों के साथ यात्रा के लिये हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करे ॥२॥ हे भगवान आपका निरीक्षण से मेरा दशो दिशा पवित्र होवे इस हेतु से आप इस रथ पर प्रेम पाद धरें ॥३॥ संसार में हे जगत के नाथ, हमलोगों को कृतार्थ करें, हे सात्विकों के पति इस प्रकार देवेश माधव श्री मधुसूदन का प्रार्थना कर रथ पर बैठावे ॥४॥ ॥ हे ऋषीश्वर पहिले भूमि समथल तथा निः पङ्क करे जिस में सुख पूर्वक रथ भ्रमण करे ॥५॥ निर्म्मल तथा सुगन्धित मार्ग कर यदि उखर भूमि होय तो उसको ठीक कर सुखसाध्य बनावे पुष्प तथा माला तथा

बहूनि ऋतुपुष्पाणि पुष्प वृष्ट्यर्थमेवहि ॥
चन्दनाम्भः परिक्षेपो मन्दपातोत्करस्तथा ॥८॥
वेश्या यौवन गर्वाढ्या रूपालङ्कार भूषिता ॥
मृदङ्गाः पणवाश्चैव भेरीढक्कादयस्तथा ॥९॥
चर्चरी झर्झरी वेणु वीणामधुरिकादयः ॥
ततः कर्पूर चूर्णश्च सुमनोऽभि र्वाकिरेत् ॥१०॥
पथि शाकुन शुक्तानि प्रपठन्ति द्विजातयः ॥
केचिन्मङ्गल गाथांश्च केचिज्जय जयेतिच ॥११॥
जितन्त इति मन्त्रश्च केचिदुच्चै र्जपन्ति च ॥
सूत मागधमुख्याश्च कीर्ति पुण्याममुता जगुः ॥१२॥

वस्त्रादिक चामर से भी ॥९॥ जिस प्रकार सुन्दर फुलाया हुआ वन होता है वैसाही रथ सुशोभित करें हे महाराज श्री मधुसूदन भगवान का प्रीत्यर्थ ॥७॥ तत्तत् ऋतु में उत्पन्न फूलों से पुष्पवृष्टि करता हुआ चन्दन मिलाया हुआ मन्द पूर्वक पुष्पादिक प्रक्षेप श्री मधूसूदन भगवान के उपर करे ॥८॥ रूपयौवन से युक्त वेश्या अलङ्कृत होकर मृदंग तथा पखाउज भेरी ढ़का आदि बाजा चर्चरी झर झरी वेणु वीणा माधुरीका आदि से युक्त होकर सुन्दर पुष्प वृष्टि करे ॥९,१०॥ मार्ग में सकुन सूक्त तथा मांगलिक शब्द और ब्राह्मणादिक के द्वारा जय शब्द करते हुये ॥११॥ जितन्त इस मन्त्र को उच्च स्वरसे पढ़ते हुये सूत मागधों में मुख्य भगवान का कीर्ति गान करते हुये स्वर्ण दण्ड से दोनों पार्श्व में

स्वर्णदण्ड प्रकीर्णानां श्रेणी चोभय पार्श्वयोः
लीलयान्दोलयन्तिस्म रणत्कङ्कण मञ्जुलम् ॥१३॥
स्वर्ण पात्र परिक्षिप्त कृष्णागुरु सुधूपितः ॥
सुरभी कृत सर्वाङ्ग मुखेव्योमाङ्गणे तथा ॥१४॥
शब्दायन्ते सुमधुरं गोविन्द वियान्तरे ॥
स्तम्भध्वजा हेमदण्डाः पार्श्वयो र्मुख वैरिणः ॥१५॥
राजा चतुर्विधा वर्णा अन्ये वैव पृथग् जनाः ॥
दीना महान्तश्चनरा समानास्तत्र भान्तिवै ॥१६॥
सलील चरणन्यासं तूलिकास्तरणेषु तान् ॥
चालयन्तः क्वचिच्छान्ता दैवास्ते रथमन्वयुः ॥१७॥
महोत्सवं समासाद्य गीत कोला हलानिव ॥
नातः परतरं विष्णो र्यात्रान्तर मवेक्षते ॥१८॥

श्रेणी बद्ध होकर कङ्कण आदि शब्द से शोभित मन्द २ लीलापूर्वक डोलावे ॥१२,१३॥ स्वर्ण पात्र में गुग्गुल आदि से धूप देते हुये समस्त अङ्ग तथा आकाशों को सुगन्धित करते हुये ॥१४॥ मध्य २ में जयगोविन्द ऐसा शब्द करते हुये और मधुसूदनभगवान के दोनों पार्श्व में स्वर्णदण्ड तथा ध्वजा ॥१५॥ चारों वर्ण राजा तथा अन्यान्य भी प्राणीगण महान या दीनगण उत्सव के साथ शोभित करें ॥१६॥ सलील चरणन्यास तूलिका स्तरण में देवता को चालित करते हुये शान्त चित्त होकर रथ के पीछे २ जाय ॥१७॥ यह महोत्सव को पाकर गीतमङ्गल वाद्यादिक से कोलाहल शब्द के साथ

यत्रस्वयं त्रिलोकेशः स्यन्दनेन कतूहलात् ॥
मानयन् पूर्णमाज्ञांतां वर्षेवर्षे व्रजेदसौ ॥१९॥
रथस्थितममनन्तं तं महावेदी महोत्सवे ॥
ये पश्यन्ति मुदाभक्तया वासस्तेषां हरेःपुरम् ॥२०॥
सत्यं सत्यं पुनःसत्यं प्रतिजाने द्विजोत्तमाः ॥
नातः श्रेयः परंविष्णो रुत्सवः शास्त्रसम्मतः ॥२१॥
यथारथ विहारोयं महावेदी महोत्सवः ॥
यत्रागत्य दिवोदेवाः स्वर्गं यान्त्यधिकारिणः ॥२२॥
किमत्रब्रुमि तस्यमाहात्म्यं ह्यु त्सवस्य मुरद्विषः ॥
यस्य संकीर्तनात्पापं नश्येज्जन्म शतोद्भवम् ॥२३॥

रथ ले जाय क्योंकि इस से बढ़कर भगवान का महोत्सव दूसरा नहीं है ॥१८॥ जिस यात्रा के महोत्सव में त्रिलोकेश श्री मधुसुदन भगवान स्वयं कुतूहल के साथ रथ के द्वारा पूर्ण प्रतिज्ञा को मानते हुये प्रति वर्ष में भ्रमण करते हैं ॥१९॥ रथपर स्थित महावेदी महोत्सव में भ्रमण करते हुये भक्ति पूर्वक जो कोई श्री मधुसुदन भगवान का दर्शन करता है वह भगवान का परम धाम गोलोक जाता है ॥२०॥ हे द्विजोत्तम आप निश्चय जानिये कि श्री विष्णु भगवान का इस से बढ़ कर और दूसरा शास्त्र सम्मत उत्सव नहीं है यह मैं सत्य कहता ॥२१॥ जैसा यह रथ विहार महावेदी महोत्सव है यहां पर देवता लोक आकर भगवान का महोत्सव देख कर फिर स्वर्ग जाते हैं ॥२२॥ तब मैं मुरारि भगवान के महोत्सव का माहात्म्य

महावेदी व्रजन्तं तं रथस्थं मधुसूदनम् ॥
जन्म कोट्यु द्भवं पापं दृष्ट्वा नश्येन्नसंशयः ॥२४॥
रथच्छायां समाक्रम्य ब्रह्महत्यामव्यपोहति ॥
तद्रेणु संशक्तवपु स्त्रिविधात्पाप संहतिम् ॥२५॥
नाशयेत्स्वर्ग गङ्गायाः स्नानजं फलमाप्नुयात् ।
घनाम्बु वृष्टियोगेन रथमार्गे तु पङ्किले ॥२६॥
दिव्यन्दृष्ट्वा च कृष्णस्य समस्त मलहारिणी ॥
तत्र ये प्रणिपातांस्तु कुर्वन्ति वैष्णवोत्तमाः ॥२७॥
अनादिसंभूत पापांस्ते हित्वा मोक्षमवाप्नुयुः ॥
गवां कोटि प्रदानस्य कन्याना मयुतस्य च ॥२८॥

वर्णन क्या करूं जिसका कीर्तन से सौ जन्म का पाप नाश होता है ॥२३॥ यह महावेदी महोत्सव में रथ पर भ्रमण करते मधुसूदन के दर्शन करने से कोटि जन्म का उपार्जित पाप नाश हो जाता है ॥२४॥ रथच्छाया को आक्रमण करने से ब्रह्म हत्या नाश होता है। उस रेणु से मिला हुआ शरीर तीनों प्रकार का सञ्चित पाप का नाश करता है ॥२५॥ जैसे स्वर्ग गङ्गा में स्नान करने से कायिक वाचिक मानसिक तीनों प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं वैसा ही उस रेणु से तीनों प्रकार का पाप नाश हो जाते हैं ॥ मेघ वृष्टि के योग में पङ्किल मार्ग होनेपर जो कोई श्री मधुसूदन भगवान का दर्शन करता है उसका समस्त पाप नाश हो जाता है ॥२६। उस अवस्था में जो कोई वैष्णव श्रेष्ठ प्रणाम

वाजिमेध सहस्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥
इति ते कथितं साधो यात्रोत्सव मनुत्तमम् ॥२६॥
मधुसूदनदेवस्य सर्वा श्रौत्र निवारणम् ॥
ये कुर्वन्ति मुदा भक्त्या यात्रोत्सव मनुत्तमम् ॥३०॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते गोलोक माव्रजेत् ॥
यावत्सूर्यश्च चन्द्रश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥३१॥
तावद्वै गोलोकवासः स्यात् सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

करता है वह अनादि के सञ्चित पाप नाश कर मोक्ष पाता है ॥२७॥ कोटि गौ दान से जो फल होता है दश हजार कन्या दान से जो फल प्राप्त होता है हजार अश्व मेध यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है सब महा वेदी महोत्सव में भक्ति भावसे श्री मधुसूदन भगवान का पूजन तथा दर्शन करने से प्राप्त होता है ॥२८॥ हे साधो यह मैं श्री मधुसूदन भगवान का सर्वश्रेष्ठ यात्राविधि समस्त पापको नाश करने वाली कही ॥२९॥ जो मनुष्य हर्ष से भक्ति पूर्वक यह यात्रा विधि करेगा वह इस लोक में नाना प्रकार का भोगादिक का अन्त में गोलोक जायगा ॥३०॥ जब तक सूर्य तथा चन्द्रमा और मेदिनी रहेंगे तावत काल पर्यन्त वह प्राणी गोलोक में वास करेंगे यह मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥३१॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे वैष्णवखण्डे सूत शौनक सम्वादे मन्दारमधुसूदन माहात्म्ये श्री मधुसूदनदेवस्य यात्रोत्सव कथनन्नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

शौनक उवाच

श्रुतश्च त्वन्मुखात्साधो यात्रा विधिमनुत्तमाम् ॥
मधुसूदन देवस्य सर्वपाप प्रणाशिनीम् ॥१॥
नतृप्तिमधिगच्छामि श्रुत्वा हरिकथामृतम् ॥
पिबन्तं काऽनुतृप्येत ऋते तद्विमुखात्प्रभो ॥२॥
पुराकेन कृताचैषा यात्राविधि रनुत्तमा ॥
कृत्वा किन्तत् फलमभू त्तन्नोवद् सविस्तरात् ॥३॥

सूत उवाच

शृणु शौनक वक्ष्यामि सेतिहासं पुरातनम् ॥
कथयामि समासेन सावधान मनाभव ॥४॥
आसीत्पुरा महाराज कुरुक्षेत्रे प्रतापवान् ॥
दुःखन्तोनाम राजर्षिः शत्रुपक्षविमर्दनः ॥५॥

शौनक जी बोले हे साधो श्री मधुसूदनदेव जी का सर्व श्रेष्ठ तथा सर्व पाप का नाश करने वाली यात्रा कि विधि आपके मुखसे मैंने सुना ॥१॥ भगवान की कथारूपी अमृत को पान करने से हमें तृप्ति नहीं हुआ कौन ऐसा अभागा होगा जिसको भगवान के कथा रूपी अमृत से तृप्ति होगा जो नास्तिक नहीं है ॥२॥ पूर्व समय में कौन यह सर्वश्रेष्ठ यात्राविधि किया और उसको क्या फल मिला सो सविस्तर हमें कहिये ॥३॥ सूतजी बोले हे शौनक जी इतिहास पूर्वक मैं कहता हूं आप सावधान मन से सुनिये ॥४॥ हे महाराज पूर्व समय में कुरुक्षेत्र में महा प्रतापी

तस्य पुत्रो महातेजा प्रताप तपनोपमः ॥
भरतोनाम राजाभूद्धार्म्मिकाणां शिरोमणिः ॥६॥
येनेदं शासितं वर्षं भारतं लोक विश्रुतम् ॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातं सर्वप्राणी सुखावहम् ॥७॥
सैकदा तीर्थयात्रायां वाराणस्यां महीपतिः ॥
आजगाम महाबाहु र्यत्रास्ते गिरिजापतिः ॥८॥
तत्र नानोपहारैश्च पूजयामास शङ्करम् ॥
अन्यानपि च देवादीन् सम्पूज्य जगतांपतिः ॥९॥
ततो राजगृहं गत्वा च्यवनाश्रम मुत्तमम् ॥
जगाम नृपति स्तत्र मुनिमण्डल मण्डितम् ॥१०॥

शत्रु पक्ष को मर्द न करने वाला दुष्यन्त नाम का राजर्षि हुआ ॥५॥ उनका पुत्र सूर्य सदृश प्रतापी महातेजस्वी धार्मिकों का शिरो-मणि भरत नाम से प्रसिद्ध हुये ॥६। जिन्होंने तीनोंलोक विख्यात समस्त प्राणीगण को सुखदेने वाला भारतवर्ष पर शासन किया ॥७॥ वह राजा एक समय में तीर्थ यात्राके प्रसङ्ग में वाराणसी आये जहाँ पर गिरिजा के पति श्री शंकर भगवान थे ।८। वहाँ पर श्री शंकर भगवान की नाना उपहार से पूजा की और अन्यान्य भी देवादिकों की पूजा कर जगत के पति राजा भरत ॥९। तब राज गृह गये यहाँ पर अत्यन्त श्रेष्ठ च्यवन मुनी का आश्रम था ॥ वहाँ पर मुनि मण्डल से मण्डित देख सम-स्त मुनिगण को अनेक प्रकार का भक्ष्य भोज्यादिक से भक्ति भाव पूर्वक तृप्ति कराई ॥१०,११॥ अनन्तर मेधावी राजर्षि भर

तत्रस्थ ऋषि संघांश्च भक्ष्य भोज्यादिके र्नृपः ॥
तर्पयामास मेधावी भक्ति भाव समन्वितः ॥११॥
ततो जगाम राजर्षि र्मुद्गलाश्रम मुत्तमम् ॥
जाह्नव्या दक्षिणेकूले बहशिष्यगणै र्युतम् ॥१२॥
दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूल प्रज्वलन्तञ्च तेजसा ॥
बद्धाञ्जलि पुटाभूत्वा ननाम नृपसत्तमः ॥१३॥
मुनिना सत्कृतस्तत्र तदाज्ञाम्प्राप्य भूपतिः ॥
जगाम नृपतिर्द्धिमन् मन्दारम्पर्वतोत्तमम् ॥१४॥
लता विटप संकीर्णं नाना पक्षिविराविनम् ॥
सजलं कन्दरं चारु मुनिमण्डल मण्डितम् ।
दृष्ट्वाति लुलुभे राजा कुण्डे मन्दार संज्ञके ॥
स्नात्वा विधि विधानेन नित्यकृत्य समाप्यच ॥१६॥

राजा भरत गङ्गा के दक्षिण तट पर बहुत शिष्यों से युक्त सर्व श्रेष्ठ मुद्गल मुनि के आश्रम गये ॥१२॥ वहाँ पर मुनियों में शार्दूल तेज से प्रज्वलित मुद्गल मुनि को हाथ जोड़ कर वह राजा भरत ने प्रणाम किये ॥१३॥ हे धीमन् वहाँ पर मुनि से सत्कार पाकर फिर उनकी आज्ञा पाकर पर्वतों में श्रेष्ठ मन्दार पर्वत पर राजा गये ॥१४॥ वहाँ पर लता वृक्षों से संकीर्ण नाना पक्षी से शब्दायमान सुन्दर जल युक्त कन्दरा आदि से शोभित मुनिमण्डलों से मण्डित ॥१५॥ देख कर राजा भरत मन्दार कुण्ड में स्नानादि कर विधि के अनुकूल नित्य-नैमित्तिक समाप्त कर ॥१६

प्रार्थयित्वा नगाधीशं मारुरोह ततः परम् ॥
मार्गे बहुविधान् देवान् प्रार्थयन्नृपसत्तमः ॥१७॥
चक्रावर्त्तं ततोगत्वा तत्र कृत्यं समाप्यच ॥
जगाम शङ्ख कुण्डञ्च शंखं सम्प्रार्थ्य बुद्धिमान ॥१८॥
ततः सौभाग्य कुण्डञ्च जगाम नृपसत्तमः ॥
यत्रास्तेऽष्टदलं पद्म ब्रह्मणो मुनिसत्तम ॥१९॥
यस्य दर्शन मात्रेण सौभाग्यं वर्द्धते भुवि ॥
पूजयित्वाथ तत्पद्मं विश्वनाथालयं नृप. ॥२०॥
जगाम चातिहर्षेण पूजयामास संकरम् ॥
ततो वाराह कुण्डञ्च यत्रास्ते भगवान् प्रभु ॥२१॥
धरण्या सहितो देवो लक्ष्मी युक्तः प्रसन्नधी. ॥
पूजयित्वाथ वाराहं प्रार्थयित्वा ततः परम् ॥२२॥

वहाँ पर पर्वत राज की प्रार्थना कर तब शिखर पर चढ़ गये। मार्ग में देवता आदिक की प्रार्थना आदि करते हुये राजा ॥१७॥ चक्रावर्त्त जाकर वहाँ का कर्त्तव्य समाप्त कर शंख कुण्ड गये ॥१८॥ वहाँ पर शंख की प्रार्थना कर बुद्धिमान राजा भरत सौभाग्य कुण्ड गये जहाँ पर ब्रह्मा जी का अष्टदल कमल है ॥१९॥ हे मुनि सत्तम जिसके दर्शन मात्र से संसार में सौभाग्य बढ़ता है उस कमल का पूजन कर राजा विश्वनाथ के मन्दिर गये ॥२०॥ वहाँ पर विश्वनाथ की पूजा हर्ष पूर्वक कर अनन्तर वराह कुण्ड गये जहाँ पर धरणी देवी तथा लक्ष्मी सहित श्री वाराह

आरुह्य शिखरं श्रीमान् त्रिपुरारीश्वरं शिवम् ॥
पूजयामास मेधावी प्रार्थयित्वा ततः परम् ॥२३॥
जगाम नृपतिस्तत्र यत्रास्ते मधुसूदनः ॥
ब्रह्मणा राधितः श्रीमान् चतुर्वर्ग फलप्रदः ॥२४॥
नीलजीमूत संकाशो विद्युत्पुञ्ज निभाम्बरः ॥
देव गन्धर्व यक्षाद्यै सेवितोऽप्सरसाङ्गणैः ॥२५॥
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं पीतकौशेयवाससम् ॥
शंख चक्र धरन्देवं वनमाला विभूषितम् ॥२६॥
ननाम दण्डवद् भूमौ परं हर्षं मुपागतः ॥
विरराम च तत्रैव बहुकालान्ततो नृपः ॥२७॥

भगवान हैं ॥२१॥ वहाँ पर प्रसन्न मन से राजा वाराह भगवान की पूजा कर तथा प्रार्थना कर शिखर पर आरोहण कर त्रिपुरेश्वर शंकर जी की पूजा कर तथा प्रार्थना कर ॥२२,२३॥ मेधावी राजा भरत वहाँ पर गये जहाँ ब्रह्म जी से आराधित चारों पदार्थ को देने वाले श्री मधुसूदन भगवान वर्त्तमान हैं ॥२४॥ श्याम वर्ण मेघ के ऐसा प्रकाशमान् विद्युल्लता समूह के ऐसा प्रकाशमान् पीत वस्त्र देव, गन्धर्व यक्ष किन्नरादिक से शोभायमान तथा अप्सरा गणों से सेवित ॥२५॥ वहाँ पर पीत कौशेय वस्त्र पहने हुये शंख, चक्र, को धारण किये हुये वन माला से भूषित ॥२६॥ ऐसे भगवान् को प्रणाम किये और परम हर्ष को प्राप्त कर और बहुतकाल तक वहाँ पर विश्राम किया ॥२७॥ और वहाँ पर भोग मोक्ष को देने वाले श्री मधुसूदन का महान प्रस्तर से मन्दिर बनवाया ॥२८॥ मणि मुक्ता प्रवाल आदि

मधुसूदन देवस्य मुक्ति मुक्ति प्रदस्य च ॥
निर्म्माय मन्दिरं राजा महाप्रस्तर सञ्युतः ॥२८॥
मणि मुक्ता प्रवालाद्यै रुचिरं सुमनोहरम् ॥
ततो न्यासयि देवादीन् स्थापयामास भूपतिः ॥२९॥
ऋद्धि सिद्धीश्वरन्देवं गणनाथं महाप्रभुम् ॥
भैरवञ्च ततः साधो महिषासुर मर्दिनीम् ॥३०॥
शैल संरक्षणार्थाय हनुमन्त मथार्पिया ॥
प्रतिष्ठां कारयामास मन्दारे सुमनोहरे ॥३१॥
उवास कतिचिन्मासान् मधुसूदन सन्निधौ ॥
आषाढस्या मलेपक्षे द्वितीया पुष्य सञ्युता ॥३२॥
अरुणोदयवेलायां तस्यां श्रीमधुसूदनम् ॥
सगणम्पूजयित्वा च प्रार्थयामास भूपतिः ॥३३॥
यतिभि ब्राह्मणैः साद्धं वैष्णवश्च तपस्विभिः ॥
प्रार्थयित्वा महाराजो माधवं मधुसूदनम् ॥३४॥

से सुशोभित किया अनन्त अन्यान्य भी देवता आदि की प्रतिष्ठा की ॥२९॥ ऋद्धि सिद्धीश्वर श्री गणेशजी की तथा भैरव की अनन्तर महिषासुर मर्दिनी श्री दुर्गाजी की ॥३०॥ तथा पर्वत रक्षार्थ हनुमान जी की प्रतिष्ठा की अनन्तर सुन्दर मन्दार क्षेत्र में मधुसूदन देव जी के समीप बहुत मास तक रहे ॥३१॥ अनन्तर आषाढ़ मास शुक्ल पक्ष पुष्य नक्षत्र से युक्त द्वितीया तिथि में ॥३२॥ सूर्योदय समकाल में सगण श्री मधुसूदन देवजीका पूजन कर उस राजा भरतने प्रार्थना की ॥३३॥ यती तथा

रथस्योपरि संस्थाप्य यात्रार्थञ्च नृपोत्तमः ॥
भ्रामयामास राजर्षि वैकुण्ठाधि पतिम्प्रभुम् ॥३५॥
तस्मिन् काले महाभागन् ब्रह्माद्या खिदिवौकसः ॥
स्वस्वविमान मास्थाय सस्त्रीकाः पुष्प मालिनः ॥३६॥
पुष्पवृष्टिञ्च कुर्वाणा स्तुष्टुवु र्मधुसूदनम् ॥
यत्र विद्याधराद्याश्च गन्धर्वा यक्ष किन्नराः ॥३७॥
स्वस्ववेषं समासाद्य ननृतुः प्रेमविह्वलाः ॥
प्रसंसन्ति मुदादेवा ह्युत्सवस्य ऋषीश्वराः ॥३८॥
अहोभाग्यञ्च राजर्षे रहोनैर्म्मल्य मानसम् ॥
यस्यैतादृक् पराभक्ति र्म्माधवे मधुसूदने ॥३९॥

ब्राह्मण गण और वैष्णवों के साथ तथा तपस्वियों के साथ महाराज भरत माधव श्री मधुसूदन की प्रार्थना कर ॥३४॥ यात्रा के लिये रथ पर बैठा कर तब राजर्षि भरत ने वैकुण्ठ के अधिपति श्री मधुसूदन भगवान को भ्रमण कराया ॥३५॥ हे महाभागन् उस काल में सस्त्रिक होकर ब्रह्मा आदि देवगण हाथ में पुष्पों की माला लेकर पुष्प वृष्टि करते हुये श्री मधुसूदन भगवान की प्रार्थना कर ने लगे ॥३६॥ यहां पर विद्याधर गण गन्धर्व गण यक्ष किन्नर आदिक अपना २ रूप बना कर प्रेम में विह्वल होकर नाचने लगे ॥३७॥ हे ऋषी श्वर देवता लोक उत्सवको देख प्रसंशा करने लगे ॥३८॥ अहो धन्य यह राजा भरत हैं और धन्य इनका निर्मल मन है। जिस की ऐसी अटल भक्ति माधव श्री मधुसूदन में है ॥३९॥

इत्येवं बहुधालापै र्माहात्म्यं तस्य भूपते ॥
देवानाम्पुरतो धीमन् जगुरप्सर सङ्गणाः ॥४०॥
किमत्रास्मि तस्यमाहात्म्यं ह्युत्सवस्य महामुने ॥
यस्यदेवाः प्रसंशन्ति ह्यद्यापि ऋषिसत्तमाः ॥४१॥
कृत्वा महोत्सवम्विष्णोः प्रासाद्य मधुसूदनम् ॥
कीर्त्ति लब्ध्वाच संसारे चान्ते सायुज्यमाप्नुयात् ॥४२॥

सूत उवाच

इति ते कथितं साधो महावेदी महोत्सवम् ॥
मधुसूदनदेवस्य पुराजेन कृतं मुने ॥४३॥
यत्फलं प्राप्तवान्सोऽपि तत्सर्वं कथितम्मया ॥
य इदं शृणुतेऽध्यायं श्रावयेद्वापि भक्तितः ॥४४॥

इस तरह बहुत प्रकार का माहात्म्य देवता लोगों के समक्ष आप्सरा गण प्रसंशा गान करने लगे ॥४०॥

हे महामुने उस उत्सव का माहात्म्य मैं क्या वर्णन करूं जिनका आज काल भी देवता लोक देवलोक में प्रसंशा किया करते हैं ॥४१॥ अनन्तर वह राजा भरत श्री मधुसूदन भगवान का महोत्सव कर श्री मधुसूदन भगवान को प्रसन्न कर संसार में अचल कीर्त्ति स्थापित कर अन्त में सायुज्य मोक्ष पाया ॥४२॥ सूत जी बोले हे साधो श्री मधुसूदन भगवान का यह मैं महा वेदी महोत्सव जिसने किया और उनको जो फल प्राप्त हुआ, सो मैं आप से कहा ॥४३॥ जो इस अध्याय को भक्ति पूर्वक सुनेगा या सुनावेगा वह सर्वपाप नाश करके और समस्त

माहात्म्यं सर्व पापघ्नं सर्वकाम फलप्रदम् ॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते विष्णु पुरम्व्रजेत् ॥४५॥

शौनक उवाच

वद सूत महाभाग त्रिलिङ्गस्य महामते ॥
माहात्म्यञ्चाविशेषेण श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥१॥

सूत उवाच

साधुपृष्टं त्वयातावो माहात्म्यं चातिपावनम् ॥
कथयामि समासेन सावधान मनामव ॥२॥
मन्दारान्नैऋतेभागे चतुर्योजन तोमुने ॥
हरिद्रापृष्ठमाश्रित्य वैद्यनाथो महाप्रभुः ॥३॥

कामनाओं प्राप्त करके अन्त में विष्णु लोक को प्राप्त होगा ।४४४५॥

इति श्री स्कन्दादि महा पुराणे सूतशौनक सम्वादे मन्दार मधुसूदन देवस्य रथयात्रा महात्म्यकथनन्नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३९॥

शौनक जी बोले हे महा भाग सूत जी त्रिलिङ्ग देश का माहात्य सविस्तर कहिये हमें सुनने को इच्छा है ॥१॥ सूत जी बोले साधो आप बहुत अच्छी बात पुछी यह परम पवित्र त्रिलिङ्ग देश का माहात्म्य मैं कहता हूं सावधान मन से सुनिये ॥२॥ मन्दार से नैऋर्त कोण में चारयोजन पर हरिद्रा पृष्ठ में वैद्यनाथ नाम का महाप्रभू ॥३॥ विष्णु भगवान् से

विष्णुनास्थापितः श्रीमान् रावणेन प्रतिष्ठितः ॥
भुक्तिमुक्ति प्रदानार्थं सदा तिष्ठति शंकरः ॥४॥
यत्र ब्रह्मादयो देवा नारदाद्या महर्षयः ॥
प्रच्छन्न भावमाश्रित्य पूजयन्ति च भक्तितः ॥५॥
वैद्यनाथात्परं प्राच्यां निषधे दारुकावने ॥
त्रियोजन मितेरम्ये सर्वप्राणि सुखावहे ॥६॥
ब्रह्मणा स्थापितः श्रीमान् नागनाथो महाप्रभुः ॥
भुक्तिमुक्ति प्रदानार्थं सदातिष्ठति शंकरः ॥७॥
नागनाथाच्च वायव्यां चतुर्योजन सम्मिते ॥
मन्दारं भुवि विख्यातं पावनानाञ्च पावनम् ॥८॥
यत्र विश्वेश्वरः श्रीमान् स्वनाम्ना सुप्रतिष्ठितम् ॥
विश्वनाथ इतिख्यातः भक्ताभीष्टप्रदायकः ॥९॥

स्थापीत रावण से प्रतिष्ठित भोग मोक्ष का देने वाले श्रीशंकर जी वर्त्तमान हैं ॥४॥ जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवता लोक तथा नारद आदि महर्षि गण गुप्त भाव से भक्ति पूर्वक पूजा किया करते हैं ॥५॥ वैद्यनाथ से पूर्व दिशा में निषध देश में दारुका वन में तीन योजन पर समस्त प्राणी गण को सुख देने वाले श्री नागनाथ से प्रसिद्ध श्री वासुकी नाथ शङ्कर जी भोग मोक्ष को देने वाले ब्रह्माजी से प्रतिष्ठित वर्त्तमान हैं ॥६,७॥ नागनाथ से वायुकोण में चार योजन पर पवित्रों में पवित्र संसारमें विख्यात मन्दार क्षेत्र है ॥८॥

ब्रह्मविष्णु महेशानां यत्रलिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥
त्रिलिङ्गं तद्बुधैः प्रोक्तं क्षेत्रं परमपावनम् ॥१०॥
एतत्त्रिलिङ्गं देशोऽयं त्रिलिङ्गैः समलङ्कृतः ॥
भुक्ति मुक्ति प्रदंनृणां मुमुक्षूणां सुखावहम् ॥११॥
न त्रिलिङ्ग समो देशः पृथिव्यामपावको मुने ॥
न त्रिलिङ्ग समं क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥१२॥
अत्रैवोदाहरामीम मितिहासं पुरातनम् ॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तोभवति मानवः ॥१३॥
आसीत्पुरा महाराज मध्यदेशेतु ब्राह्मणः ॥
वत्ससोनाम विख्यातः सदाचार विनिन्दकः ॥१४॥

यहाँ पर श्रीमान विश्वेश्वर अपना नाम से प्रसिद्ध भक्तों के अभीष्ट सिद्ध करने वाले विश्वनाथ शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा किया है ॥९॥ जिस देश में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन लोगों से तीन लिङ्ग प्रतिष्ठित है वह परम पावन क्षेत्र को पण्डित लोग त्रिलिङ्ग क्षेत्र कहते हैं ॥१०॥ इन तीनों लिङ्ग से अलङ्कृत यह त्रिलिङ्ग देश मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष को देने वाले हैं मोक्षार्थियों के लिये सुखा वह है ॥११॥ हे मुने पृथिवी मण्डल में त्रिलिङ्ग देश सदृश पवित्र दूसरा देश नहीं है न त्रिलिङ्ग क्षेत्र से बढ़ कर दूसरा क्षेत्र है तीनों लोक में ॥१२॥ इस विषय में मैं एक पुराना इतिहास उदाहरण देता हूं जिसको सुनने से प्राणीगण समस्त पाप से छूट जायगें ॥१३॥ हे महाराज मध्य देश में पुराने समय में सदाचार

योनिलम्पट दुष्टात्मा महापापी कुकर्म्म कृत् ॥
सदा वेश्यारतो नित्यं मद्यपान रतस्तथा ॥१५॥
स्वगृहोपार्जितं द्रव्यं पितुर्णायत्पुरा मुने
वेश्यास्वर्पितं तच्च मूढभावेन वै मुने ॥१६॥
चाण्डालीं वृत्ति मास्थाय रमते पशुवत्खलः ॥
दृष्ट्वा तस्य च दुर्वृत्तिं विनिन्दां तत्र बान्धवाः ॥१७॥
भर्त्सयन्ति सदा नित्यं ब्राह्मणास्तत्र सन्ति ये ॥
तद्दृष्ट्वा चाति दुःखेन बहुधा तर्जितोऽपिसः ॥१८॥
न तत्याज च दुर्वृत्तिं तदा तस्य पिताप्रभुः ॥
गृहान्निस्सारयामास शोकाकुलित मानसः ॥१९॥
सोऽपि रात्रौ महापापी समागत्य गृहस्पुनः ॥
चौरवेषं समासाद्य वल्लभो मुनिसत्तम ॥२०॥

का निन्दक वल्लभ नाम से विख्यात एक ब्राह्मण था ॥१४। योनि लम्पट दुष्टात्मा महा पापी कुकर्म करने वाला सदा मद्यादिक पी कर वेश्या में रत रहता था ॥१५॥ अपना पिता पितामहादिक का निरलज्जित द्रव्य अपना मूढ़ता से वेश्या को दे दिया ॥१६॥ वह खल चण्डालों की वृत्ति अवलम्बन कर पशु के ऐसा रमण करता था इस की वृत्ति देख उस के बन्धुवर्गादिक निन्दा करने लगे ॥१७॥ वहाँ पर जो ब्राह्मण लोग थे वे सब सदा निन्दा करने लगे उस को देख कर बारम्बार निन्दा करने पर भी इस दुर्वृत्ति को नहीं छोड़ा तब उसका पिता शोक से व्याकुल होकर उस को घर से निकाल दिया ॥१८,१९॥

निहत्य पितरम्पश्चा देशाद्देशान्तरं गतः ॥
दैवात्समागतश्चात्र त्रिलिङ्गे पावनोत्तमे ॥२१॥
मन्दारस्याति निकटे ह्युवास कतिचित्समाः ॥
तत्रापि चौर वृत्तिस्थो नित्यं वेश्यापति मुने ॥२२॥
मोहयित्वा कटाक्षेण काचित्तत्र वराङ्गना ॥
तद्गृहस्थाप्य दुष्टात्मा चौरवृत्याच तामपुनः ॥२३॥
पालयामास हर्षेण चिरराम तयासह ॥
एवं बहुतरे काले गते तस्मिन् दुरात्मने ॥२४॥
एकदा वल्लभोनाम राज्ञो गेहङ्गतो निशि ॥
शयानन्तत्र राजानं पर्यङ्के भवनोत्तमे ॥२५॥

वह भी पापी रात्रि में फिर चौरवेष से घर आकर पिता को मार कर उस देश को छोड़ कर दूसरा देश चला गया ॥२०॥ दैव वसात परम पवित्र त्रिलिङ्ग देश में आया मन्दार के अति निकट आकर बहुत दिन तक रहा ॥२१॥ हे मुनि वहाँ पर भी चौरवृत्ति को अवलम्बन कर नित्य वेश्या का पति बन कर रहा ॥२२॥ कटाक्ष दृष्टि से वहाँ पर किसी वेश्या को मोहन कर उस के घर जा दुष्टात्मा वह वल्लभ नाम का ब्राह्मण चोरी करके उसका ॥२३॥ बहुत हर्ष के साथ पालन करने लगा और उसी के साथ विशेष रूप से रमण करने लगा इस प्रकार उस दुरात्माको बहुत काल व्यतीत हो गया ॥२४॥ एकदिन वह वल्लभ नाम का चोर रात्रिमें राजा के घर गयो वह सुन्दर भवन में राजा को पलङ्ग पर सोया

दृष्ट्वाति मुमुदे चौरो हृतवान् प्रचुरं धनम् ॥
गृहीत्वा तद्धनं तत्र गतवान् गणिकागृहे ॥२६॥
दत्वा तस्यै धनं चौरो गृहे तस्यास्तया सह ॥
मुमोद परमप्रीत स्तामालिङ्ग्य ततो मुने ॥२७॥
सुष्वाप निर्भयः पापी वल्लभो मुनिसत्तम ॥
शयानं तत्र तं दृष्ट्वा वेश्या चाति भयान्विता ॥२८॥
चिन्तयामास सा तत्र बहुकालं ततो मुने ॥
अयं चौरोऽपि पापात्मा नीत्वा द्रव्यं नृपस्य च ॥२९॥
मद्गृहे स्थापयित्वा च सुष्वाप विगतज्वरः ॥
प्रभाते च यदा राजा प्रबुद्धश्च तदा धनम् ॥३०॥
नीत्वा हत्वा च मां चौरं नयिष्यति यमालयम् ॥
एवं चिन्तातुरा वेश्या गृहीत्वा तद्धनमुत्सुका ॥३१॥

हुआ देखकर वह चोर बहुत आनन्दित हुआ और बहुत धन का हरण किया, उस धन को लेकर वहाँ वेश्या के घर गया ॥२५,२६॥ वेश्या को धन देकर वह चोर उस के घर में वेश्या के साथ परम प्रसन्न से आनन्द कर ने लगा ॥२७॥ अनन्तर हे मुने वह चोर भय रहित हो कर वहाँ पर सो गया ॥२८॥ उस को सोया हुआ देखकर वेश्या अत्यन्त भय से युक्त होकर ॥५८॥ बहुत काल पर्य्यन्त वह वेश्या चिन्ता करने लगी यह पापात्मा चोर राजा का द्रव्य लेकर ॥२९॥ मेरे घर में रखकर निर्भय होकर सो रहा है। प्रातःकाल में जब राजा सोकर उठेगा तब धन ॥३०॥ लेकर हम को तथा इस चोर को मार कर यमपुरी

कपाटं शृङ्खलाबद्धं त्यक्त्वा चौरञ्च विस्तरे ॥
पावकञ्च गृहे क्षिप्त्वा रात्रावेव ततो मुने ॥३२॥
ययावन्यत्र सा दुष्टा पापिनी बहुभर्तृका ॥
ततो ददाह तद्गेहं पावको दुष्टघातकः ॥३३॥
भस्मीभूतोऽथ विप्रोऽसौ वल्लभस्तत्र वेश्मनि ॥
निज कर्म्मविपाकेन मृतोगच्छन् यमालयम् ॥३४॥
नीयमानश्च दूतेन यमस्य मुनिसत्तम ॥
रोरुद्यमानं तं दृष्ट्वा मार्गे विप्रञ्च वैष्णवाः ॥३५॥
चतुर्भुजा महोरस्का पीतकौशेय वाससः ॥
उत्तस्थुः सहसा तत्र शंख चक्रगदाभृतः ॥३६॥
वारयामासु स्थाने यमदूतान् महाबलाः ॥
निवर्त्तध्व मितोदूता त्यक्त्वा विप्रञ्च वैष्णवम् ॥३७॥

भेजेगा इस प्रकार वह वेश्या चिन्ता कर फिर उस धन को लेकर ॥३१॥ चोर को बिछावन पर सोया छोड़ कर कपाट बन्दकर फिर घर में आग लगा रात्रिही में ॥३२॥ वह पापिनी दुष्टा वेश्या दूसरे देश को चली गई। अनन्तर दुष्ट को भक्षण कर ने वाले अग्निदेव उस घर को दग्ध किया ॥३३॥ अनन्तर वह वल्लभ नाम का ब्राह्मण उस घर में भस्म हो गया अपने कर्म्म के प्रभाव से मरने पर यमपुरी जाने लगा।३४॥ हे मुनिसत्तम यमदूत से लेजाते हुये मार्ग में रोता हुआ ब्राह्मण को देखकर॥३५॥ चारभुजा वाले विशाल वक्षस्थल पीत पट्टवस्त्र को पहिने हुये शंख, चक्र, गदा को धारण किये

नहिशक्त इतो नेतु मपिवर्षशतैरपि ॥

सूत उवाच ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा वैष्णवानांमहामते ॥

यमदूतास्तदा प्रोचु र्मेघगम्भीरया गिरा ॥३८॥

यमदूता ऊचुः ॥

अयञ्चौरोति दुष्टात्मा पापकर्म्मरतः सदा ॥

वेद विद्या विहीनश्च सदाचारस्य दूषकः ॥३९॥

तेन कर्म्मविपाकेन पीड्यमानो यमालयम् ॥

नयिष्यामो वयन्त्वस्मा द्वार्यसे वैष्णवोत्तमाः ॥४०॥

विष्णुदूता ऊचुः ॥

अयद्विप्रोऽति धर्म्मात्मा शृणुध्वं यमकिङ्कराः ॥

नयिष्यामो वयञ्चैनं गोलोकन्धाम वैष्णवम् ॥४१॥

हुये हठात टूट पड़ा ॥३६॥ यह महाबलवान विष्णुदूत यम दूत को वारण करने लगा हे यमदूत यहाँ से भागिये २ वैष्णव ब्राह्मण को छोड़कर भागिये यहाँ से सौवर्ष में भी आप इस को नहीं ले जा सकते हैं ॥३७॥ सूत जी बोले हे शौनक हे महामतिमान् इस प्रकार विष्णुदूत का वचन सुन कर यमदूत मेघ के ऐसा गम्भीर उत्तर दिया ॥३८॥ यमदूत बोले यह वेद विद्या से विहीन सदाचार का निन्दक सर्व पाप कर्म में रत चोर को ॥३९॥ उस के कर्म के परिणाम में मैं इस को मार्ग में पीड़ा देते हुये यमालय ले जा रहे हैं हे श्रेष्ठ वैष्णवों के आप लोग क्यों वारण करते हैं ॥४०॥ विष्णुदूत बोले

पापीवा यदिवा दुःखी कूड़कर्म रतोऽपिवा ॥

त्रिलिङ्गे मरणात्सद्यः पूतोभवति तत्क्षणात् ॥४२॥

अयन्तु ब्राह्मणः शुद्धो मन्दारस्याति सान्निधौ ॥

त्रिलिङ्गे मृतवां स्त्यक्त्वा तस्मात्त्राणं करोम्यहम् ॥४३॥

इत्थं विवदमानाश्च यमदूताश्च वैष्णवाः ॥

यमदूतान् तिरस्कृत्य नीत्वा विप्रञ्च वल्लभम् ॥४४॥

जग्मु र्गोलोक मव्यग्रं वैष्णवा विष्णुकिङ्कराः ॥

अहो त्रिलिङ्गदेशस्य महिमानं न विद्महे ॥४५॥

मरणाद्यत्र गोलोकं प्राप्नुवन्ति नराभुवि ॥

अयद्विप्रोऽति पापात्मा वेश्यासङ्गरतः सदा ॥४६॥

हे यमकिङ्करों सुनते जाइये यह ब्राह्मण अत्यन्त धर्मात्मा है इस को श्री विष्णुभगवान का जो गोलोक धाम है वहाँ हमलोक ले जायगें ॥४१॥ पापी हो अथवा दुःखी हो अथवा कैसा ही कुकर्म्म में रत हो पर त्रिलिङ्ग देश में मरण होनेपर तत्काल पवित्र हो जाता है ॥४२॥ यह शुद्ध ब्राह्मण मन्दार का निकट त्रिलिङ्ग देश में प्राण त्याग किया है इस लिये इस को हम लोक अवश्य त्राण करेंगे ॥४३॥ इस प्रकार यमदूत से विष्णु दूत को परस्पर वादोपवाद होने पर विष्णुदूत यमदूत का तिरस्कार कर वल्लभ नाम को ब्राह्मण को पकर कर ॥४४॥ श्री विष्णु भगवान् का किङ्कर शीघ्र गोलोक ले गया। अहो यह त्रिलिङ्ग देश का महिमा कैसी है सो नहीं जानता हूं जिस देश में मरने से प्राणीगण साक्षात गोलोक जाता है। इस से

त्रिलिङ्गे मरणादस्यो गोलोकं धाम संश्रयौ ॥
त्रिगुन. सात्विका भावा मानुषा ब्रह्मणादयः ॥४७॥
त्रिलिङ्गे वसमानाश्च जीवन्मुक्ता न संशयः ॥
य इदं शृणुयादध्यायं श्रावयेद्वापि भक्तितः ॥४८॥
सयो गोलोक प्राप्नोति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

सूत उवाच

इति ते कथितं साधो त्रिलिङ्गस्य च वैभवम् ॥
शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥४९॥

बढ़कर पृथ्वीमण्डल में दूसरा स्थान नहीं है । यह वल्लभ नाम का ब्राह्मण महापापी सदा वेश्या के साथ रमण करने वाला ॥४६॥ केवल त्रिलिङ्ग देश में प्राणत्याग किया है इसी से गोलोक धाम चला गया तब जो कोई सात्विक भाव से रहने वाले ब्राह्मणादिक मनुष्य को त्रिलिङ्ग देश में बसने से क्या कहना चाहिये निश्चय वह जीवन मुक्त कहा सकता है ॥४७॥ जो इस अध्याय को भक्ति पूर्वक श्रवण करेगा या श्रवण करावेगा वह साक्षात गोलोक धाम को प्राप्त करेगा यह मैं निश्चय कहता हूं ॥४८॥ सूत जी बोले हे शौनक यह मैं त्रिलिङ्ग देश का माहात्म्य आप से कहा जो इसको भक्ति भाव से श्रवण करेगा या करावेगा वह निश्चय मुक्ति का भागी होगा ॥४९॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे सूत शौनक सम्वादे मन्दार मधुसूदन महात्म्ये त्रिलिङ्गदेशस्य माहात्म्य कथननामाष्ट-त्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

शौनक उवाच

वद सूत महाभाग सर्वलोक हितेरतः ॥
चीरचान्दनयोश्चैव माहात्म्यं चाति पावनम् ॥१॥
केनकर्म विपाकेन जातवन्तौ सरिद्वरौ ॥
तन्मे कथय विप्रर्षे परङ्कौतुहलं मम ॥२॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं त्वया साधो महात्म्य अतिपावनम् ॥
कथयामि विशेषेण सावधान मनाभव ॥३॥
पुरैकस्मिन् महाराज गोलोके विष्णु सन्निधौ ॥
नागिन्यो देवकन्याश्च यक्षगन्धर्व किन्नराः ॥४॥
सिद्धाः किम्पुरुषाश्चैव विद्याधर महोरगाः ॥
सस्त्रीका गीतनिपुणा नृत्य विद्याविशारदाः ॥५॥

शौनक बोले हे महाभाग सर्व लोक का हित करने में तत्पर सूत जी अत्यन्त पवित्र चीर तथा चान्दन नदी का माहात्म्य कहिये ॥१॥ हे विप्रर्षे किस कर्म के फल से यह दोनों नदी रूप हो गये सो सब कहिये हमें सुन ने की पूर्ण उत्कण्ठा है ॥२॥ सूत जी बोले हे साधो आप बहुत पवित्र माहात्म्य पूछा मैं अविकल पूर्वक कहता हूं सावधान मन से सुनो ॥३॥ हे महाराज पूर्व समय में गोलोक धाम में श्री कृष्ण भगवान के निकट नाग कन्या गण तथा देव कन्या यक्ष गन्धर्व किन्नरगण ॥४॥ सिद्धगण किम्पुरुष गण विद्याधरगण महान उरगण नृत्य विद्या में विशारद गीत में निपुण यह सब सस्त्रीक होकर ॥५॥ महा

प्रसन्नार्थं हरेस्तत्र समाजग्मुर्महोज्ज्वलाः ॥
तान्दृष्ट्वा तत्र गोलोके विष्णोः कारुण्यभाजनौ ॥६॥
पुण्यशील सुशीलौच पार्षदावूचतुस्तदा ॥
भो भो विद्याधराः सर्वे नागिन्योदेव कन्यकाः ॥७॥
तिष्ठध्वं तावदत्रैव यूयंगीत विशारदाः ॥
प्रभोराज्ञांविना केचित् प्रवेष्टुंनैव शक्नुयुः ॥८॥
इत्युक्त्वा पार्षदौविप्र पुण्यशील सुशीलकौ ॥
विष्णोः समीप मासाद्य प्रोचतुः परमादरात् ॥९॥

पार्षदावूचतुः

भगवन् द्वारि तिष्ठन्ति विद्याधर महोरगाः ॥
सिद्धाः किम्पुरुषा यक्षा नागिन्यो देव कन्यका ॥१०॥
प्रसन्नार्थं समाजग्मु स्तव प्रीत्यर्थं मेवच ॥
तेषां प्रवेशनार्थाय ह्याज्ञान्देहि रमापते ॥११॥

कान्तिमान ये लोक भगवान के प्रसन्नार्थ गोलोक आये उन सबको गोलोक में आये हुये देख कर श्रीविष्णु भगवान का परम करुणा के पात्र पुण्य शील तथा सुशील भगवान के पार्षद गण बोले॥६॥ हे विद्याधर गण तथा हे नाग स्त्रीगण तथा देव कन्या ॥७॥हे गीत विशारद जब तक आप लोग यहाँ पर ठहरिये बिना प्रभुकी आज्ञा पाकर कोई प्रवेश नहीं कर सकता है हे विप्र देव-गण से ऐसा कहकर भगवान् का पार्षद पुण्यशील तथा सुशील श्री विष्णुभगवान के पास जाकर परम प्रेम से बोले हे भगवान द्वारदेश में विद्या धरादिक तथा देव कन्या आदिक आप के प्रसन्नार्थ आये हैं हे रमापते उन लोगों के

श्रीविष्णुरुवाच ॥

शीघ्रमानय तांश्चात्र गायकान् तन्त्रिकोविदान् ॥
सश्लोकान् गीतनिपुणान् नृत्यविद्या विशारदान् ॥१२॥
विष्णोराज्ञां सिरोधार्य पुण्यशील सुशीलकौ ॥
द्वार देशंसमागत्य प्रोचतुस्तान् महोज्ज्वलान् ॥१३॥

तावूचतुः

प्रविशन्तु माहाभाग विष्णोः प्रतिविवर्द्धनाः ॥
युष्मानाहूयते देवो वैकुण्ठाधिपतिः प्रभु. ॥१४॥
ततो विद्याधराद्याश्च नागिन्योदेव कन्यकाः ॥
प्राविशन्तिस्म विष्णोश्च प्राप्याज्ञामति हर्षिताः ॥१५॥
प्रविश्य सदनंविष्णो र्गायन्त्यो विगतज्वराः ॥
नृत्यन्तिस्म ततो धीमन् स्तुतिभिर्मङ्गलैः पुनः ॥१६॥

प्रवेशार्थ आप आज्ञा दीजिये ॥१०,११॥ श्री विष्णुभगवान बोले हे पुण्यशील सुशील तन्त्रिताल में निपुण नृत्यविद्या विशारद सश्लोक उन सब को बोलाइये ॥१२॥ अनन्तर पुण्यशील सुशील भगवान की आज्ञा पाकर द्वारदेश में जाकर महान् उज्ज्वल कान्ति वाले विद्याधरादिक से परम आदर के साथ बोले हे महाभाग भगवान का आनन्द बढाने वाले आप लोगों को वैकुण्ठाधिपति श्री विष्णुभगवान बुलाते हैं ॥१४॥ अनन्तर श्री विष्णुभगवान की आज्ञा पाकर अत्यन्त हर्ष के साथ विद्याधर गण तथा नाग कन्या देव कन्या गण प्रवेश किये ॥१५॥ श्री विष्णु भगवान का स्थान पाकर विगत ज्वर होकर

तोषयामासु रथने माधवं मधुसूदनम् ॥
ततः प्रसन्नो भगवान् वैकुण्ठाधिपतिर्मुने ॥१७॥
उवाच परमप्रीतो गायकानृषिसत्तमः ॥

श्रीविष्णुरुवाच ॥

प्रसन्नोऽहं महाभागा गन्धर्वा यक्षकिन्नराः ॥१८॥
सिद्ध विद्याधराश्च नागिन्ये देवकन्यकाः ॥
वरं वृणुत शीघ्रं वो दास्यामो नात्रसंशयः ॥१९॥

देवकन्योवाच ॥

यदि प्रसन्नो भगवान् यदि ते ऽनुग्रहोमयि ॥
तदा ते ह्यचला भक्ति र्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥२०॥
अपरञ्च वरन्देव प्रार्थयामो रमापते ॥
देहि मे कमलाकान्त वयन्ते शरणागताः ॥२१॥

गान तथा नृत्य करते हुये स्तुति तथा मङ्गल ध्वनि आदि से ॥१६॥ ये सब माधव श्री मधुसूदन भगवान को सन्तुष्ट कीया ॥१७॥ अनन्तर श्री विष्णु भगवान बोले हे महा भाग गन्धर्वगण तथा यक्ष किन्नरगण तथा सिद्ध विद्याधर गण तथा नाग कन्या तथा देवकन्या गण आप लोक शीघ्र वर मागें मै निश्च दूंगा इस में संशय नहीं है ॥१८।१९॥ देव कन्या बोली भगवान यदि आप प्रसन्न हैं और यदि आपका अनुग्रह मेरे उपर है तो हम लोगों को आप की अचल भक्ति जन्म जन्म मे हो यही माँगता हूँ ॥२०॥ हे कमलकान्त हे रमा के पति दूसरा यह वर माङ्गता हुँ सो भी कृपा कर दीजिये ॥

यायामश्च यदादेव दर्शनार्थं भवत्पदम् ॥
तदाद्वौ बालिशौ स्तब्धौ प्रमत्तौ चातिदुर्म्मदौ ॥२२॥
पुण्यशील सुशीलौच पार्षदौ तव देव नः ॥
निषेध तान्न तौदेव कृपया ते रमापते ॥२३॥
श्रुत्वाचेदं वचस्तासां कन्यकानामृषीश्वरः ॥
वरन्ददौ महाविष्णु स्तथास्त्विति मुदान्वितः ॥२४॥
शापन्ददौ तयोर्धीमन् पुण्यशील सुशीलयोः ॥
युवाभ्यां यत्कृतंकर्म्म सुन्दरीणां निरोधनम् ॥२५॥
तस्माद्वाद्धु वान्नदौ स्वौ भवेताञ्च निरन्तरम् ॥
श्रुत्वा शापम्महाविष्णोः पुण्य शील सुशीलकौ ॥२६॥
शोकेन महता साधो विष्णोश्चरण पङ्कजम् ॥
पतन्तु पुरतो विष्णोः श्चक्रतुस्तुति मुरामाम् ॥२७॥

हम लोक आप का शरणागत हैं ॥२१॥ हे देव जब हम लोक आप का दर्शनार्थं आप के यहाँ आवे तब प्रमत्त तथा धृष्ट दुर्बुद्धि द्वार पाल आप का हम लोगों को निरोध न करे ॥२२॥ आप के कृपा से पुण्यशील तथा सुशील हम लोगों को निषेध न करे ॥२३॥ हे ऋषीश्वर इस प्रकार उन सबका वचन सुन कर महाविष्णु उन सब का एवमस्तु ऐसा कहकर प्रसन्न होकर ॥२४॥ हे धीमन् पुण्य शील तथा सुशील को शाप दिया आप दोनो ये सुन्दरी गणोका निरोध किया उस कर्मके बद ले में आप लोक निरन्तर नदी रूप हो जाइये वह पुण्य शील

पार्षदावूचतुः ॥

जयविष्णो दयासिन्धो जय भक्तार्तिनाशन ॥
जय विश्वम्भरेश सृष्टिस्थित्यन्तकारक ॥२८॥
जय भक्तप्रियनाथ दुष्ट दैत्य विमर्दनः ॥
सर्वा भीष्ट प्रदाताच भक्तानां भक्ति वर्द्धनः ॥२९॥
शरण्यः सर्वभूतानां शरणागत वत्सलः ॥
पाहि पाहि जगन्नाथ दुस्सहाच्छापतो विभो ॥३०॥
अज्ञान वसतो ह्यावां मपराधञ्च यत्प्रभो ॥
कृतवन्तौ च तत्सर्वं क्षम्यतां मधुसूदन ॥३१॥

तथा सुशील भगवान का वाक्य सुनकर ॥२६॥ हे साधो वे दोनों शोक से व्याकुल हो भगवान के ऊपर लोटने लगे तथा प्रणामकर आगे में खरा होकर स्तुति करने लगे ॥२७॥ पार्षद बोले हे विष्णो हे दयासिन्धो हे भक्त का दुःख नाश करने वाले आप का जय हो हे समस्त विश्व को रक्षा तथा भरण पोषण करनेवाले हे सृष्टि के स्थिति तथा प्रलय करनेवाले आपका जय हो ॥२८॥ हे भक्तों के प्रिय करने वाले हे दुष्ट दैत्य को मर्दन करने वाले तथा समस्त प्राणी का अभीष्ट सिद्ध करने वाले तथा भक्तों का भक्ति बढ़ाने वाले ॥२९॥हे समस्त प्राणी गणके शरण देनेवाले शरणागत वत्सल हैं हे जगन्नाथ दुस्सह संसार रूपी समुद्र से तथा आपा अपने दुस्सह सापसे हमें रक्षा कीजिये ॥३०॥ हे प्रभो अज्ञानवशात जो हम दोनों से अपराध हुआ उस को हे मधुसूदन क्षमा कीजिये ॥३१॥ हे रमापते आप के

भवत्पादम्परित्यज्य कगच्छावो रमापते ॥
जीवावश्च कथन्नाथ त्वामिना कमलापते ॥३२॥

सूत उवाच ॥

तयो र्वाक्यं समाकर्ण्य पुण्यशील सुशीलयोः ॥
सान्त्वयन्मधुरैर्वाक्यै रुवाच जगतांपतिः ॥३३॥

श्रीविष्णुरुवाच ॥

धैर्य्यमालम्ब्य वैवत्सौ नचिन्तां कर्तुमर्हथ ॥
उपायन्ते प्रवक्ष्यामि यथा न विच्युति भवेत् ॥३४॥
अहन्तिष्ठामि सर्वांशेन मन्दारेपर्वतोत्तमे ॥
तत्र मत्पार्षदौ भूत्वा नदीरुपौ भविष्यथः ॥३५॥
विष्णो र्वाक्यं समाकर्ण्य पुण्यशील सुशीलकौ ॥
बभूवतु र्नदीरुपौ त्रिलिङ्गे चाति सुन्दरौ ॥३६॥

चरण छोड़कर हम दोनों कहाँ जायँगे हे नाथ कमलापते आप के विना हमलोग कैसे जीवन धारण करेंगे ॥३२॥ सूतजी बोले हे शौनक वह पुण्यशील तथा सुशील का दीन वाक्य सूनकर जगत के मालिक श्री विष्णुभगवान मधुर वाक्य से शान्तिस्थापन करते हुये बोले ॥३३॥ श्री विष्णुभगवान बोले हे वत्स आप दोनों धैर्य्य को अवलम्बन कीजिये चिन्ता नहीं करो तुम दोनों को उपाय बतलाता हूं जिस से मेरा वियोग न हो ॥३४॥ मैं मन्दार पर्वत में अपना अंस से रहता हूं वहाँ तुम दोनों मेरा पार्षद होकर नदीरुप में रहो ॥३५॥ श्री विष्णुभगवान का वाक्य सुन

मन्दारात्पूर्वभागेच पुण्यशीलो मुनीश्वरः ॥
क्षीरनामा भव तत्र नदीरूपो महाबलः ॥३७॥
विख्यातश्चाङ्गदेशेच बहुपुण्य विवर्द्धनः ॥
तत्र ये स्नान्ति द्वादश्यां विष्णोर्ध्यानैकतत्पराः ॥३८॥
तेऽतीत्यभवपाथोधिं विष्णोः सायुज्य माप्नुयुः ॥
ततः सुशीलो भगवान् मन्दारात्पश्चिमे कूले ॥३९॥
चन्दनाख्यो नदीरूपो बभूव पुण्यवर्द्धनः ॥
एतयोश्चैव माहात्म्य नालम्वकं चतुर्मुख ॥४०॥
कोन्योवर्णयितुं शक्तो माहात्म्यं तस्य धीमतः ॥
ये स्नास्यन्ति तयोर्द्धीमन् चीर चान्दनयोर्मुने ॥४१॥

कर पुण्यशील तथा सुशील मन्दार के समीप त्रिलिङ्ग देश में अत्यन्त सुन्दर नदीरूप हो गये ॥३६॥ हे मुनीश्वर मन्दार से पूर्वदिशा में पुण्यशील चीरनाम से विख्यात महान् बलवती नदीरूप होकर बहने लगे ॥३७॥

वहुपुण्य को बढ़ाने वाला अङ्गदेश में विख्यात हुये उस नदी में श्री विष्णुभगवान का ध्यान कर के द्वादशी तिथि में जो कोई स्नान करता है वह संसार रूपी समुद्र को पार कर श्री विष्णुभगवान का सायुज्य मोक्ष लाभ करता है ॥३८। अनन्तर सुशीलनाम का पार्षद मन्दार से पश्चिम दिशा में ॥३९॥ वहुपुण्य को बढ़ाने वाले चान्दन नाम से प्रसिद्ध नदी रूप होकर बहने लगी ॥०॥ इन दोनों का माहात्म्य पूर्णतया से चतुर्मुख ब्रह्मा जी भी वर्णन नहीं कर सकते हैं ॥४०॥

ते यान्ति भवनंविष्णो र्नात्र कार्य्या विचारणा ॥
एकादश्याञ्च ये चात्र स्नात्वा मन्दारपर्वते ॥४२॥
पूजयन्ति रमानाथं माधवं मधुसूदनम् ॥
ते गमिष्यन्ति गोलोके विष्णुना सहमोदते ॥४३॥

सूत उवाच

अथाहं संप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं चान्दनस्य च ॥
विख्यातञ्च यथामर्त्ये पवित्रपुण्य वर्द्धनम् ॥१॥

अन्यव्यक्ति दूसरा कौन वर्णन कर सकता है हे मुने जो कोई चिर तथा चान्दन में भक्तिभाव से स्नान करेगा ॥४१॥ वह श्री विष्णु भगवान का भवन गोलोक जाता है इस में विचार ना नहीं है ॥ जो कोई एकादशी तिथि को इन दोनों नदी में स्नान कर के मन्दारपर्वत पर जा कर तथा वहाँ पर माधव श्री मधुसूदन भगवान का भक्तिभाव से पूजा करेगा वह गोलोक जायगा और श्री विष्णुभगवान के साथ आनन्द करेगा ॥४२।४३॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे सूत शौनक सम्वादे मन्दा मधुसूदन माहात्म्ये चीरचान्दनयो रूपाख्यानन्नामेन चत्वारिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सूत जी बोले सम्प्रति मैं चान्दन का माहात्म्य कहता हूँ किस प्रकार पवित्र तथा पुण्य वर्द्धक यह संसार में विख्यात

आसीत्पुरा महाघोरा राक्षसी भीमदर्शना ॥
देवात्समागता चात्र चान्दनस्य तटे शुभे ॥२॥
पिपासा कुलिता चात्र जलपानु समुत्सुका ॥
अथ तामपापिनीन्दृष्ट्वा विरूपां घोरदर्शनाम् ॥३॥
वारयामासु रथते जलपानाच्च तान्पुनः ॥
किङ्कराश्च हरेर्धीमन् ततो देशान्तरङ्गता ॥४॥
जेष्ठगौरस्य निकटे चान्दनस्य तटे शुभे ॥
सञ्जाता च पुनर्घोरा पापिनी भर्तृ घातिनी ॥५॥
तत्र कश्चिद्द्विजन्दृष्ट्वा तपश्यन्तं नदीतटे ॥
तपसा खिन्नगात्रञ्च विष्णुध्याने क तत्परम् ॥६॥
भक्षणार्थञ्च सा तत्र धावन्ती विप्र सन्निधौ ॥
जगाम मुनिशार्दूल वेपमाना क्षुधार्दिता ॥७॥

हुआ ॥१॥ पूर्व समय में महा भयङ्करी राक्षसी थी वह दैव बलात सुन्दर चान्दन नदी के तट पर आई ॥२॥ उसने प्यास से व्याकुल हो यह चान्दन नदी में पानी पीने की इच्छा की । अनन्तर विरूप तथा घोराकृति इसको देख कर विष्णु दूत जल पीने से वारण किया ॥३॥ अनन्तर देशान्तर गई ज्येष्ठ गौर के निकट सुन्दर चान्दन नदी के तट पर फिर वह घोर पापिनी स्वामी को हनन करने वाली राक्षसी प्राप्त हुई ॥४,५॥ वहाँ पर विष्णु भगवान के ध्यानमें निमग्न तपस्या से खिन्न शरीर नदी के तट पर तपस्या करते हुये किसी ब्राह्मण को देखी ॥६॥ वहाँ पर भूख से व्याकुल काँपती हुई भोजन के

दृष्ट्वा तामविकृताङ्गीरां मैथिलो ब्राह्मणोत्तमः ॥
कमण्डलु गतन्तोऽयं चान्दनस्य शुभन्तत. ॥८॥
चिक्षेप चातिवेगेन तस्यादेहे त्वरान्वितः ॥
तज्जलस्य प्रभावेण विशुद्धा चाभवत्क्षणात् ॥९॥
बभूव कन्यका रामा सुन्दरी लोक सुन्दरी ॥
विमानावरमारुह्य गोलोकाख्यं हरेः पुरम् ॥१०॥
गत्वा च पार्षदैः सार्कं विष्णुना च मुमोदह ॥
गच्छन्तीं तां समालोक्य मैथिलो ब्रह्मणोत्तमः ॥११॥
उवाच परमप्रीतो विष्णुदूतान् ततो मुने ॥

ब्राह्मण उवाच ॥

शृणुध्वं भो महाभाग पीतकौशेय वाससः ॥१२॥

लिये ब्राह्मण के समीप दौड़ कर आई ॥७॥ हे मुनि शार्दूल उसके भयङ्कर तथा विकृत रूप देख कर ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण कमण्डलु में रखा हुआ चान्दनका जल ले कर उसके उपर प्रक्षेप किया ॥८॥ बहुत वेग से उसका देह पर जल पड़ने के साथ के वह तत्काल विशुद्ध हो गई ॥९॥ अनन्तर वह सुन्दरी कन्या होकर श्रेष्ठ विमान पर चढ़ कर भगवान की पुरी गो लोक विष्णुदूत के साथ जा कर ॥१०॥ विष्णुभगवान के साथ आनन्द करने लगी । उसको जाती हुई देख कर मैथिल ब्राह्मण ॥११॥ हे मुने परम प्रसन्नता के साथ विष्णु दूत

चतुर्भुजा महोरस्का स्फीताश्च सौम्यदर्शनाः ॥
के यूयं राक्षसीं नीत्वा विमानाम्बरगोऽधुना ॥१३॥
गच्छन्ति चातिवेगेन भासमाना मुदान्विताः ॥
केन कर्म्म विपाकेन राक्षसी घोरदर्शना ॥१४॥
सौम्य रूपं समालाद्य स्वर्गं गच्छत्यसौ पुनः ॥

सूत उवाच

इति विप्रवचः श्रुत्वा प्रोचु र्दूतास्तु सादरम् ॥
चाण्डाल्याः पूर्ववृत्तान्तं माहात्म्यं चान्दनस्य च ॥१६॥

विष्णुदूता ऊचुः ॥

आसीत्पुरा च सौराष्ट्रे सौवीरो ब्राह्मणोत्तमः ॥
तस्य भार्य्याति पापिष्ठा पुंश्चली कटुभाषिणी ॥१६॥

से वाले । ब्राह्मण बोले हे पीताम्बर धारण करने वाले महा भाग, आपलोग सुनिये ॥१२॥ चार भुजा वाले विशाल वक्षस्थल अत्यन्त रूप वान आपलोग कौन हैं सम्प्रति राक्षसी को श्रेष्ठ विमान पर चढ़ा कर ॥१३॥ दिशाओं को प्रकाशमान करते हुये अत्यन्त वेगसे प्रसन्न पूर्वक जारहे हैं । किसकर्म के फल से घोर दर्शना राक्षसी १४॥ सुन्दर रूप धारण कर स्वर्ग जार ही है सो इसको विस्तार पूर्वक कहिये आप लोक ज्ञान विशा रद हैं॥१५॥ सूत जी बोले यह ब्राह्मण का वाक्य सुनकर चाण्डा लीक वृत्तान्त तथा चान्दन का महात्म्य विष्णु दूतो ने ब्राह्मण को सुनाने लगा ॥१६॥ विष्णुदूत बोले सौराष्ट्र देश मे पहिले सौवीर

सदा पापरता नित्यं भर्तृ विद्वेष कारिणी ॥
सा मिष्टान्नं भुञ्जमाना नित्यं कलह कारिणी ॥१७॥
वाक्येनापि न सा दुष्टा तोषिता स्वामिनं क्वचित् ॥
एकदा स्वामिना तस्या चरित्रञ्चाति गर्हितम् ॥१८॥
दृष्ट्वा च ताड़िता रोषात् बहुभि र्वाक्य भर्त्सिता ॥
ततः सा ब्राह्मणी दुष्टा स्वात्यर्थे गरलम्पुनः ॥२०॥
भक्षितः त्यातिरोषेण मृता यमपुरीं गता ॥
तान्दृष्ट्वा पापिनीं घोरां चित्रगुप्तं यमस्तदा ॥२१॥
उवाच परम प्रीत स्त्विदमुक्तस्ततो मुने ॥

यम उवाच ॥

चित्रगुप्त महाबाहो पश्यास्याः कर्म्मभिः कृतिम् ॥२२॥

नामका ब्राह्मण श्रेष्ठ वास करता था उसकी स्त्री अत्यन्त पापिनी भ्रष्टा तथा कटुभाषिणी थी ॥१७ सदा पापमें रत स्वामी को दुखित करने वाली मिष्ठान्न भोजन करने वाली नित्य कलह करने वाली थी ॥१८॥ वह दुष्टा वाक्य से भी स्वामी को सन्तोष कभी नहीं करती थी ॥ एक दिन उसका स्वामी उस का निन्द- नीय चरित्र देखकर ॥१९॥ रोष से ताड़न कर वाक्य सभर्त्सना की ॥ अनन्तर दुष्टा वह ब्राह्मणी स्वामी के समक्ष में विष ॥२०॥ अत्यन्त रोष से पीकर अनन्तर यम पुरी गई ॥ उस बार पापनी को देखकर चित्र गुप्त के प्रति यम राज बोले ॥२१॥ हे चित्रगुप्त महा बाहो, इस पापिनी का कर्म्म

अनया किं कृतं कर्म्म शुभञ्चाप्यशुभञ्च किम् ॥
इत्युक्त्वा धर्म्म राजश्च मौनमास्थाय तस्थिवान् ॥२३॥
चित्र गुप्तस्तदेशाच्च चाण्डाल्या यत्कृतम्पुरा ॥
श्रुत्वा तद्वचनन्तस्य चित्रगुप्तस्य धर्म्मराट् ॥२४॥
समाहूय स्वकान् दूतान् देशकाल विभागवित् ॥

धर्म्मराज उवाच ॥

शृणुध्वं मामकाः सर्वे चाण्डाल्या निष्कृतिं यथा ॥२५॥
इयञ्च राक्षसी घोरा भर्त्तुराज्ञा करी सदा ॥
मिष्टान्नं भोक्तु कामासा नित्यं कलह कारिणी ॥२६॥
वाक्येनापि न सन्तुष्टा भर्त्ताऽस्य कथिञ्चित्सा ॥
स्वाम्यग्रे गरलम्पीत्वा मृताचात्र समागता ॥२७॥
क्षिपध्वं नरके घोरे कुम्भीपाके च दुस्तरे ॥
षष्टि वर्ष सहस्त्राणि कुम्भीपाके च पापिनी ॥२८॥

देखो ॥२२॥ इसने क्या शुभ तथा अशुभ कर्म्म किये हैं सो देखिये ऐसा कह कर धर्म्म राज चुप होकर स्थिर रहगये॥२३॥ चित्रगुप्त ने चाण्डाली का वृत्तान्त सुनाया जैसा पहिले यह कर चुकी थी चित्र गुप्त का वचन सुनकर धर्म्मराज ॥२४॥ देश काल को जानने वाले अपना दूत को बोला कर धर्म्मराज बोले हे मेरे दूतगण इस चाण्डाली का कृत कर्म को सुनिये ॥२५ ॥२५॥ यह घोड़ राक्षसी सदा स्वामी की आज्ञा उलङ्घन करने वाली मिष्टान्न भोजन करने वाली नित्य कलह करने वाली ॥२६॥ वाक्य से भी कभी स्वामी को सन्तोष नहीं किया

भुक्त्वा बहुविधान् क्लेशाम्मार्ज्जारीं य्योनि माप्नुयत् ॥

सूत उवाच ॥

धर्म्मराज वचः श्रुत्वा याम्य दूता स्ततो मुने ॥२९॥
चिक्षिपु र्नरके घोरे कुम्भीपाके च दारुणे ॥
ततो बहुविधान् क्लेशान् भुक्त्वा तत्र च पापिनी ॥३०॥
मार्ज्जारी च ततो भूत्वा राक्षसी च ततोऽभवत् ॥
सदा तिष्ठति सा तत्र ज्येष्ठगौरे च पर्वते ॥३१॥
दैवात्त्वान्तिकं प्राप्ता पिपासा कुलिताभृशा ॥
चान्दनोदक संस्पर्शात् कृपया ते द्विजोत्तम ॥३२॥
इदानीं राक्षसीं य्योनि त्यक्त्वा चातीवसुन्दरी ॥
भूत्वा विमान मारुह्य गोलोकञ्च व्रजत्यसौ ॥३३॥

तथा स्वामीके समक्ष विष भक्षण कर मरने पर यहाँ आई है ॥२७॥ इस को दुस्तर कुम्भीपाक नाम के नरक में फेक दो साठ हजार वर्ष यह पापिनी कुम्भी पाक नाम के नरक में अनेक प्रकार के क्लेश भोग कर बिड़ाल योनि को प्राप्त करे ॥२८॥ सूत जी बोले धर्म्मराज का वाक्य सुनकर यम दूत दुस्तर कुम्भीपाक नाम के नरक में फेक दिया ।२९। अनन्तर यह दुस्तर कुम्भीपाक नामके नरक में पापिनी अनेक प्रकार के दुःखों को भोगकर ।३०। मार्ज्जारी हुई फिर राक्षसी योनि को प्राप्त किया ॥ और सदा ज्येष्ठ गौर पर्वत के समीप में रह ने लगी ॥३१॥ दैव वशात् पिपासा से व्याकुल हो आप के पास आई सम्प्रति आपकी कृपा से चान्दन का जल का स्पर्श होनेके कारण ॥३२॥

त्वमपि श्रद्धया वत्स चान्दनस्य तटे शुभे ॥
निवसस्व सुखेनात्र तपसा हत किल्बिषः ॥३४॥
एतत्प्रारब्ध देहान्ते चान्दनस्य प्रभावतः ॥
गोलोकञ्च हरेः स्थानं गमिष्यति न संशयः ॥३५॥

सूत उवाच ॥

इत्युक्त्वा विष्णुदूतास्ते गता वैकुण्ठ मन्दिरम् ॥
ब्राह्मणश्चापि तत्रैव चान्दनस्य तटे शुभे ॥३६॥
तपस्तप्त्वाति धैर्येण बहुकालान्तरा मुने ॥
दिव्यं स्यन्दन मारुह्य गोलोकञ्च जगाम ह ॥३७॥
इति ते कथितं साधो माहात्म्यं चान्दनस्य च ॥
शृणुयाच्छ्रावयेद्यस्तु भुक्ति मुक्तिञ्च विन्दति ॥३८॥

राक्षसी योनि को छोड़कर अत्यन्त सुन्दरी होकर विमानपर चढ़कर गोलोक जा रही है ॥३३॥ हे वत्स तुम भी यह सुन्दर चान्दन के तट पर वास करो तपस्या से पाप रहित होकर ॥३४॥ इस देह का प्रारब्धान्त में चान्दन के प्रभाव से भगवान का स्थान जो गोलोक है वहाँपर निश्चय जा येगा ॥३५॥ सूत जी बोले हे शौनक ऐसा कहकर विष्णुदूत वैकुण्ठ मन्दिर को गये ब्राह्मण भी वहाँपर चान्दन के तट पर ॥३६॥ बहुतकाल पर्यन्त धैर्य के साथ तपस्या कर दिव्य विमानपर चढ़कर गोलोक गये ॥३७॥ हे साधो यह मैं चान्दन नदी का माहात्म्य कहा जो इस को सुनेगा या सुनावेगा वह मुक्ति भागी होगा ॥३८॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे सूतशौनक सम्वादे मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये चान्दनस्य महात्म्य कथनन्नाम चत्वारिंशो ऽध्यायः ॥४०॥

सूत उवाच

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि चौलराजेन यत्कृतम् ॥
चरित्रं तन्महाश्चर्यं श्रुत्वा नन्द महाप्नुयात् ॥१॥
अस्ति कार्णाटकेदेशे काञ्ची नाम्नी महापुरी ॥
देवगन्धर्व सेव्या सा भोग मोक्ष प्रदायिनी ॥२॥
तत्रासीद्धार्मिको राजा क्षत्रियाणां कुलोद्भवः ॥
चौलनामाति विख्यातो शत्रुपक्ष विमर्दनः ॥३॥
सैकदा प्राक्तनै र्दोषैः कुष्ठत्व मगमन्नृपः ॥
चिकित्सकान् समाहूय नाना देशोद्भवानपि ॥४॥
सम्यक् चिकित्सिते नापि नारोग्य मलभत्तदा ॥
तदा वैराग्य मास्थाय मन्त्रीनाहूय यत्नतः ॥५॥

सूत जी बोले हे शौनक सम्प्रति मैं चौलराज का चरित्र कहता हूं जिस के श्रवणसे प्राणीगण आनन्द प्राप्त करेंगे ॥१॥ कार्णाटक देश में देवतादिक तथा गन्धर्वादिक से सेवित भोगमोक्ष को देनेवाली काञ्ची नामकी नगरी है ॥२॥ वहांपर क्षत्रिय वंशोद्भव एवम धार्मिक शत्रुपक्ष का मर्दन करने वाला चौलनाम का प्रसिद्ध राजा था ॥३॥ उस राजा को पूर्वजन्म के दोष से कुष्ठ हो गया अनन्तर अनेक देशों से चिकित्सकों को बुलाकर ॥४॥ उन लोगों से सम्यक रूप से चिकित्सा कराने पर भी जब आरोग्य लाभ नहीं हुआ तब वैराग्य अवलम्बन कर मन्त्री गण को बुलाकर यत्नपूर्वक ॥५॥ महामति धर्मात्मा चौलराज

कथयामास धर्मात्मा चौलराजो महामतिः ॥
शृणुध्वं मन्त्रिणः सर्वे कथयामि मनोगतम् ॥६॥
वृत्तान्त श्चातिगोप्यं मे रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥
इदानीं राज्यभार श्च ज्येष्ठपुत्राय धीमते ॥७॥
दत्वाहं पालनीयश्च युष्माभि र्मन्त्रिकोविदैः ॥
गच्छामि कमलाकान्त दर्शनार्थं मितोऽधुना ॥८॥
इत्युक्त्वा च ततोराजा ज्येष्ठ पुत्राय धीमते ॥
राज्यभारं समारोप्य सम्प्राप्तो नृपसत्तमः ॥९॥
तीर्थयात्रा प्रसङ्गेन देशा द्देशान्तरं ययौ ॥
ततो वङ्गाल मासाद्य नानातीर्थेषु वै नृप ॥ १० ॥
अवगाह्य ततोधीमान् चौलराजो महामतिः ॥
दैवात् समागत श्चात्र मन्दारे पर्वतोत्तमे ॥११॥

मा कह ने लगे हे मन्त्रीगण आपलोक मेरे मनोगत वृत्तान्तको सुनिये मैं कहता हूं ॥६॥ यह वृत्तान्त अत्यन्त गोपनीय है इस को आपलोक यत्नपूर्वक रक्षा करें सम्प्रति मैं बुद्धिमान् ज्येष्ठपुत्र को राज्यभार देकर ॥७॥ कमला कान्त श्री विष्णु भगवान के दर्शनार्थ सम्प्रति जाता हूं आप लोग इस राज्य को यत्न पूर्वक रक्षा करें ॥८॥ ऐसा कहकर बुद्धिमान ज्येष्ठ पुत्र को राज भार देकर के सस्त्रिक स्वयं राजा ॥९॥ तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से एक देश से दुसरे को देश गये इस प्रकार जाते जाते बङ्गाल जाकर अनेक तीर्थों में ॥१०॥ अवगाहन अर्थात स्नानादिक

सदारो गहनेऽरण्ये तीर्थार्थी तीर्थपण्डितैः ॥
श्रुत्वा धर्मंश्च कुण्डस्य मन्दारस्य नृपोत्तमः ॥१२॥
अवगाह्य विधानेन माघे मकर सङ्क्रमे ॥
नैरुज्य मलभद्राजा ह्यवगाहन मात्रतः ॥१३॥
इत्यलौकिक मालोक्य माहात्म्यञ्चाति पावनम् ॥
सानन्दो राजशार्दूल तीर्थाधीशं मनोहरम् ॥१४॥
मन्दारेशं परात्मानं माधवं मधुसूदनम् ॥
पूजनं कृतवान् राजा परमानन्द माप्तवान् ॥१५॥
लुप्तप्रायस्य कुण्डस्य मन्दारस्य नृपोत्तमः ॥
जीर्णोद्धार श्चकाराशु नामान्तर मितोगतः ॥१६॥

कर अनन्तर महामतिमान चौलराजा दैववशात् यह पर्वतोत्तम मन्दार क्षेत्र आये ॥११॥ यह परम निबिड़ महावन में तीर्थार्थी चौल राजा स्त्रीसहित तीर्थ पण्डितों से मन्दार कुण्डका पुण्य श्रवण कर ॥१२॥ माघमास मकर संक्रान्ति में विधि पूर्वक मन्दार कुण्ड में अव गाहन अर्थात स्नान किया ॥ वहाँपर तत्काल स्नान मात्र से आरोगय लाभकिया ॥१३॥ यह अलौकिक परम पवित्र मन्दार कुण्ड का माहात्म्य देखकर परमानन्दित होकर राजाओं में सिंह चौलराजा तीर्थाधीश मन को हरण कर ने वाले ॥१४॥ परमात्मा मन्दारेश लक्ष्मीपति श्री मधुसूदन भगवान का पूजन कर राजा ने परम आनन्द प्राप्त किया ॥१५॥ अनन्तर राजाओं में श्रेष्ठ चौल राजा लुप्तप्राय मन्दार कुण्डका अति शीघ्र जिर्णोद्धार

पापहारिणी नाम लोके ख्याता शारिद्वरा ।
दर्शनात्पाप हारिणी स्पर्शनात्पुण्य वर्द्धिनी ॥१७॥
स्नानाद् भोगञ्च मोक्षञ्च दायिनी पापहारिणी
यत्राद्यापि नरा श्रीमन् माघे मकर संक्रमे ॥१८॥
प्रतिसम्वत्सरे तत्र माधवं मधुसूदनम् ॥
वालिशायाः समानीय स्नापयित्वा च तज्जले ॥१९॥
वस्त्रैः सम्पोंछ्य यत्नेन तत्प्रान्ते मण्डपे शुभे ॥
रत्नसिंहासने रम्ये स्थापयित्वा जगद्गुरुम् ॥२०॥
पूजयन्ति नरास्तत्र भक्तिभाव समन्विताः ॥
महोत्सवं प्रकुर्वन्ति तस्मिन् काले च हर्षिताः ॥२१॥
नाना देशोद्भवास्तत्र गायका नट नर्त्तकाः ॥
वीणा वाद्यादिकैं श्रीशं तोषयन्ति च माधवम् ॥२२॥

किया उस दीन से उस कुण्ड का नाम पाप हारिणी लोक में विख्यात हुआ जिसका दर्शन से पाप नाश होता है स्पर्शसे पुण्य बढ़ता है ॥१६, १७॥ और उस में स्नान करने से भोग तथा मोक्ष लाभ होता है ऐसी पापहारणी है। हे श्रीमन जिस पाप हारिणी में आज कल भी माघ मास मकर संक्रान्ति में ॥१८॥ प्रत्येक वर्ष में वालिशा नगर से श्री मधुसुदन भगवान को लाकर पाप हारणी के जल से स्नान कराकर ॥१९॥ वस्त्र से पोछ कर वहीं पर उत्तम मण्डप में लाकर मनोहर रत्न जड़ित सिंहासन पर बैठाकर जगद्गुरु को ॥२०॥ प्राणीगण भक्ति भाव से पूजन किया करते हैं और उसीकाल में महोत्सव भी हर्ष

क्वचिद्वाराङ्गना स्तत्र नृत्यन्ति प्रेमविह्वलाः ॥
क्वचिद् गाथाप्रगायन्ति गायका देवकिंकराः ॥२३॥
सामगास्तत्र गायन्ति संस्तुवन्ति च पाठकाः ॥
तस्मिनकाले महाराज नारदाद्या महर्षयः ॥२४॥
विमानाम्बर मासाद्य पुष्पवृष्टिभि राकिरन् ।
प्रच्छन्न भावमाश्रित्य पूजयन्ति रमापतिम् ॥२५॥
पुनःसायाह्न मासाद्य बहुवाद्य पुरस्सरम् ॥
वालिशानगरे देवं माधवं मधुसूदनम् ॥२६॥
आनयन्ति जनास्तत्र कौतूहल समन्विताः ॥
अहो धन्यापुरीचेयं वालिशा लोकविश्रुता ॥२७॥

पूर्वक किया करते है ॥२१॥ फिर वहाँ पर अनेकानेक देशों से गवैये लोक आकर तथा नटगण नर्त्तक अर्थात् नाचनेवाले वीणा आदि बाजाओं से माधव श्री मधुसूदन भगवान को प्रसन्न करतेहैं ॥२२॥ कहीं तो प्रेम से विह्वल हो वेश्यागण नाच रही है कहींपर देवपूजक लोक गानकर रहे हैं ॥ ३॥ सामवेदी वैदिक समूह सामवेद गानकर रहे हैं। पाठ करने वाले कहीं पर श्री भगवाकी स्तुति कर रहे हैं। हे महाराज परीक्षित उसकाल में नारदादिक महर्षिगण श्रेष्ठ विमानपर चढ़ २ कर पुष्पवृष्टि करते हैं और छिप छिप कर श्री मधुसूदनभगवान का पूजन किया करते हैं ॥२४॥२५॥ फिर संध्याकाल में बहुत बाजाओं के साथ श्री मधुसूदन भगवान को वालिशानगर में प्राणीगण बहुत कुतूहल के साथ लाते

यत्राद्यापि रमानाथो माधवो मधुसूदनः ॥
प्राणिना श्रेयोपकाराय सदातिष्ठति वै विभुः ॥२८॥
अहोऽतिधन्या खलु वालिशापुरी ।
यस्यां सदावासकारः श्रियः पतिः ।
नृणां चतुर्वर्ग फलप्रद प्रभु–
विराजते श्री मधुसूदनस्वयम् ॥२९॥
यस्याः पुरः श्रीकमलशरः सदा ।
मनोहरैश्चारु सुपङ्कजै र्मुदा ॥
विभान्ति लोकस्यसुखाय साम्प्रतं
विराजते श्रीमधुसूदनः स्वयम् ॥३०॥

हैं ॥२६॥ अहो लोक में विख्यात धन्य यह वालिशापुरी है जिस वालिशापुरी में आजकल भी श्री मधुसूदन भगवान प्राणीगण के उपकारार्थ वर्त्तमान है ॥२७,२८॥ अहो धन्य यह पुरी है जहाँपर प्राणीगण को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, देने वाले लक्ष्मी के पति श्री मधुसूदन भगवान् स्वयं निवास करते हैं ॥२९॥ जिस वालिशापुरी के पूर्व दिशा में सुन्दर तथा मन को हरण कर ने वाला कमल का फुल लोक सुखार्थ शोभा बढ़ा रहीं है ऐसी कमलाशर पूर्व दिशा में वर्त्तमान है उसी वालिशानगरी में श्री मधुसूदन भगवान स्वयं विराजमान हो रहे हैं इस से अधिक धन्य कौन हो सकता है ॥३०॥

षडत्र वः श्रीपुरुषोत्तमाज्ञया ।
विभान्ति यस्याः खलु वालिशायाम् ।
गन्धर्व विद्याधर सिद्ध चारणै-
र्विराजते श्री मधुसूदनः स्वयम् ॥३१॥
यस्याङ्घ्रि युग्मं कमला ह्यहर्निशं
करारविन्देन सुसेवितं सदा ॥
शेषाधिरूढ़ो जगता मधीशो
विराजते श्री मधुसूदनःस्वयम् ॥३२॥
यस्यानुकम्पा मधिगम्य सास्वतं
विसृज्यते विश्वमिदं चतुर्मुखः ।
तस्यैव देवस्य निवास भूमिः
श्री वालिशक्षेत्र मनुत्तमं भुवि ॥३३॥

जहाँ पर पुरुषोत्तम श्री मधुसूदन भगवान के आज्ञा से छवो ऋतु अपनी २ शोभा बढ़ा रहे हैं उसी वालिशापुरी में गन्धर्वगण, विद्याधरगण, सिद्धगण, चारण गणों के साथ श्री मधुसूदन भगवान स्वयं विराजमान हैं इस से अधिक दुसरा कौन हो सकता है ॥३१॥ जिस वालिशापुरी में श्री मधुसूदन भगवान के युगल चरणरुपी कमल को रात दिन कर कमल से श्री कमलादेवी सदा सेवा कर रही हैं ऐसे शेषशायी जगत के स्वामी श्री मधुसूदन भगवान स्वयं विराजमान हैं ॥३२॥ जिनकी कृपा पाकर चतुर्मुख ब्रह्मा जी सब काल में इस संसार की रचना किया करते हैं उनहीं देव की निवास भूमि यह श्रेष्ट वालिशा क्षेत्र है ॥३३॥

यस्यां पुनर्जन्म इतिप्रथा जग-
च्छिनश्यते श्री मधुसूदनाज्ञया
तस्याः प्रभावान्नहि वर्णितुम्पुरा
चतुर्मुखाद्या खलुदेवता गणाः ॥३४॥

सूत उवाच

इति ते कथितं साधो पापापहारिणी यथा ॥
विख्याता भुवि मर्त्यानां भोगमोक्ष प्रदायिनी ॥३५॥
वालिशायाश्च माहात्म्यं संक्षेपेण मया मुने ॥
कथितन्ते महाभाग वहु पुण्य विवर्द्धनम् ॥३६॥
य इदं श्रृणुतेऽध्यायं श्रावये द्वापि भक्तितः ॥
सर्वान् का मानवाप्नोति चान्ते विष्णु पुरीम्व्रजेत् ॥३६॥

जिस वालिशापुरी में श्री मधुसूदन भगवान् की आज्ञा से संसार में विख्यात जो पुनर्जन्म है सो विनाश हो जाता है उस वालिशा पुरी का ब्रह्मादिक देव भी पूर्व समय में वर्णन नहीं कर सके तो दूसरा कौन कर सकता है ॥३४॥ सूत जी बोले हे शौनक जिस प्रकार पापहरिणी संसार में विख्यात हुई सो मैं आपसे कहा ॥३५॥ और वालिशा का भी माहात्म्य संक्षेप से आपको मैंने कहा ॥३६॥ जो इस अध्यायको भक्ति भाव से सुनेगा या सुनावेगा वह इस संसार में सम्पूर्ण मनोरथ से पूर्ण हो कर अन्तमें गोलोक जायगा ॥३७॥

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे सूतशौनक सम्वादे मन्दारमधुसूदन महात्म्ये पापहरिणी मात्म्य कथनं वालिशाया वर्णन श्च कथनन्नामैक चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

सूत उवाच

अथा स्तोत्र म्प्रवक्ष्यामि शुकदेवेन यत्कृतम् ॥
मधुसूदनदेवस्य भोगमोक्ष प्रदायकम् ॥१॥
* ओंसित ज्ञानमात्रेण रागाजीर्णेन जर्जरः ॥
कालनिद्रां प्रपन्नोऽस्मि त्राहिमां मधुसूदन ॥२॥
न गतिर्विद्यते नाथ त्वमेव शरणं मम ॥
पाप पङ्के निमग्नोऽस्मि त्राहिमां मधुसूदन ॥३॥
मोहितो मोहजालेन पुत्रदार गृहादिषु ॥
तृष्णया पीड्यमानोऽस्मि त्राहिमां मधुसूदन ॥४॥

सूत जी बोले हे शौनक सम्प्रति शुकदेव जी ने जो मधुसूदन भगवान की स्तुति की थी भोग मोक्षको देने वाला वहस्तोत्र मैं आप से कहता हूं ॥१॥ ओम् तीन अक्षर से बनता है अ, उ, म, तीनो अक्षरों से तीनगुण लिया गया सत्व गुण रजो गुण तमो गुण इन तीनो गुणों की जो साम्या अवस्था उसी को प्रकृति कहते हैं तन्मात्रिक जो ज्ञान अर्थात् साधारण सांसारिक ज्ञान उस से युक्त फिर रागशब्द का अर्थ हुआ रञ्जन अर्थात् स्त्री पुत्र परि वारिक जो रञ्जन लालन पालन उस से जीर्ण अर्थात् अस्त व्यस्त फिर काल रुपि नीद्रा में निमग्न हमको हे मधुसूदन त्राण कीजिये ॥२॥ हे नाथ बिना आपकी शरण दूसरी कोई गति मेरी नहीं है। पापरुपी पङ्कमें मैं निमग्न हूं हे मधुसूदन, हमें त्राण किजीये ॥३॥ स्त्री पुत्र परिवारादिक जो मोहरुपी जाल उस से मोहित फिर

* ओंहितोऽज्ञानवश्मेण ऐसा क्वचित्पाठ है ॥

भक्तिहीनश्च दीनश्च दुःखशोकातुरस्प्रभो ॥
अनाश्रय सनाथश्च त्राहिमां मधुसूदन ॥५॥
गतागतेन श्रान्तोऽस्मि दीर्घसंसार वर्त्मसु ॥
येन भूयोन गच्छामि त्राहिमां मधुसूदन ॥६॥
बहु वाहि मयादृष्टो योनिद्वार पृथक् पृथक् ॥
गर्भवासे महादुःखं त्राहिमां मधुसूदन ॥७॥
तेन देव प्रपन्नोऽस्मि त्राणार्थं त्वत्परायणः ॥
दुःखार्णव परित्राण त्राहिमां मधुसूदन ॥८॥
वाचायच्च प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् ॥
तत्पापार्जित मग्नोऽस्मि त्राहिमां मधुसूदन ॥९॥

तृष्णा से पीड़ित हमारा हे मधुसूदन त्राण कीजिये ॥४॥ भक्तिसे रहित दीना अवस्था में प्राप्त दुःख तथा शोक से आतुर आश्रय रहित अनाथ हमको हे प्रभो मधुसूदन त्राण कीजिये ॥५॥ बहुत विस्तृत जो सांसारिक मार्ग उसमें अनेकोंवार आने जाने सेश्रान्त हूं हे भगवन् जिस से फिर सांसारिक मार्ग में नहीं आना जाना पड़े ऐसा उपाय कीजिये इस क्लेश से हे मधुसूदन हमको त्राण कीजिये ॥६॥ मैंने अनेक प्रकार के योनि द्वार को अनेकों वार देखा गर्भ निवास जन्य महा दुःख को भी अनुभव किया जिस से अब यह दुःख न होय इस प्रकार हे मधुसूदन हमें त्राण कीजिये ॥७॥ हे देव मैं उसी दुःख के भय से आपका शरण आया हूं ॥ उस दुःखरूपी समुद्र से हम को हे मधुसूदन त्राण कीजिये ॥८॥

सुकृतन्न कृतंकिञ्चित् दुःकृतञ्च कृतम्मया ।
संसार घोरे मग्नोऽस्मि त्राहिमां मधुसूदन ॥१०॥
देहान्तर सहस्रेषु वान्योऽन्यं भ्रामितो मया ॥
तिर्य्यक्त्वं मानुषत्वं च त्राहिमां मधुसूदन ॥११॥
वाचयामि यथोन्मत्तः प्रलपामि तवाग्रतः ॥
जरामृण भीतोऽस्मि त्राहिमां मधुसूदन ॥१२॥
यत्र यत्र च यातोऽस्मि स्त्रीषु वा पुरुषेषु च ।
तत्र तत्राचला भक्ति स्त्राहिमां मधुसूदन ॥१३॥

मैंने वाणी से जो प्रतिज्ञा कीथी सो कर्म से उस प्रतिज्ञा को पूरा नहीं किया उस पाप जन्योपार्जन से दुःख में अभी निमग्न हूं हे मधुसूदन, हमें त्राण कीजिये ॥९॥ मैंने उत्तम कर्म कुछ भी नहीं किया और दुष्कर्म बहुत किया इसी के चलते घोर संसार में निमग्न हूं हे मधुसूदन हमारा त्राण कीजिये ॥१०॥ हजारों योनि में बारम्बार मैंने भ्रमण किया इस दुःख से हे मधुसूदन हमें त्राण कीजिये ॥११॥ हे भगवन् मैं वाणी भी उन्मत्त के ऐसा बोलता हूं और आपके आगे प्रलाप करता हूं जरा अर्थात् वृद्धावस्था से तथा मरण के भय से भीत हूं ऐसी अवस्थामें हमारा त्राण कीजिये ॥१२॥ जिस जिस योनि में स्त्री या पुरुष होऊं उस उस योनि में आपकी अचला भक्ति हमें होवे यही मैं मांगता हूं हे मधुसूदन हमें त्राण कीजिये ॥१३॥ चन्द्रसूर्य्यादिकग्रह भी परम पद पार कर फिर निवृत्त हो गये पर द्वादशाक्षर मन्त्र की चिन्ता

गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्र सूर्यादयोग्रहाः ॥
अद्यापि न निवर्त्तन्ते द्वादशाक्षर चिन्तकाः ॥१४॥
ऊर्ध्व पाताल मर्त्येषु व्याप्तं लोकं चराचरम् ॥
द्वादशाक्षरकं मन्त्रं नास्ति ब्रह्माण्ड गोलके ॥१५॥
द्वादशाक्षरकं मन्त्र गर्भस्तोत्र सुदृढ म् ॥
गर्भवास निवासेन शुकेन परिभाषितम् ॥१६॥
द्वादश्याञ्च निराहारो भक्ति भाव समन्वितः ॥
ध्यायन् श्री परमात्मानं माधवं मधुसूदनम् ॥१७॥
मन्त्र गर्भमिदं स्तोत्रं यः पठन्तु समाहितः ॥
सगच्छे द्वैष्णवं धाम विष्णुना सहमोदते ॥१८॥

करनेवाले अबतक भी परमपदसे च्युत नहीं हुये ॥१४॥ आकाश या पाताल मर्त्यलोक में द्वादशाक्षर मन्त्र से बढ़ कर दूसरा मन्त्र ब्रह्माण्ड गोलोक मे भी नहीं है ॥१५॥ यह द्वादशाक्षर मन्त्र गर्भस्तोत्र गर्भवासमे निवास करते हुए श्रीशुकदेव मुनिने उदाहरण स्तोत्र किया था ॥१६॥ द्वादशी तिथीमे निराहार होकर श्री मधुसूदन भगवान के हृदयरुपी कमल का ध्यानकर जो कोई पाठ करेगा वह श्रीविष्णु भगवान के धाम गोलोक जाकर श्रीविष्णु भगवान के साथ आनन्द करेगा ।

इति श्री स्कन्दादि महापुराणे बृहद्विष्णु पुराणान्तर्गते मन्दार मधुसूदन माहात्म्ये सूतशौनक सम्वादात्मक शुकदेव मुनिकृत मधुसूदन स्तोत्र नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

तीरभुक्तौ शुभे ग्रामे वीरजे क्षात्रमण्डिते ॥
पालीयं शाण्डिल्यः श्रीमान् सन्तलालो महामतिः ॥१॥
समालोक्य पुराणानि समाश्राय मनांसि च ॥
माहात्म्यं रचयामास मन्दारमधुसूदनम् ॥२॥
कार्त्तिके च शिते पक्षे चैकादश्याञ्च भार्गवे ॥
माहात्म्यं पूर्णतामेत्य मधुसूदन सन्निधौ ॥३॥
मधुसूदन देवाय भुक्ति मुक्तिप्रदाय च ॥
भक्त्या समर्पयामास मधुसूदन प्रीतये ॥४॥
सम्वत् १९८८ कार्त्तिक शुक्ल ११ शुक्रवासरे ॥

ग्रन्थकर्तुं वंशावली

पलिवार समौलाख्ये मूलग्रामे सुविस्तृते ॥
मैथिलानां कुलेजातः श्री शोसेमिश्र संज्ञकः ॥१॥
महा महापाध्यायः पण्डितानां सुदिग्गजाः ॥
चत्वारस्तनयाः स्तस्य बभूवुर्लोक विश्रुताः ॥२॥
उमापतिः पशुपतिः गोष्पति श्च रत्नोः पतिः ॥
चत्वारोऽमर तुल्यास्ते सर्वशास्त्र विशारदाः ॥३॥
आसीत्तेषां गिरिपतिसुतः पण्डितानां धुरीणो ॥
मीमांसा न्याय सांख्यैः खलु कलुषदलंनाशयन् सज्जनानां ॥
मर्य्यादां वेदमूलां दिशि दिशि जगति स्थापयन् कर्मनिष्ठः ॥
पाथान्मे सुप्रसिद्धं कुल ममलमलं मिश्र वाचस्पति श्च ॥४॥